Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PARAGYA

VOL 14 1969 G.K.U.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

41485

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

For exchange

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रज्ञा

111485

गान्धी जन्मशती विशेषांक

111485

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका

क १४ भाग (२) मार्च १९६९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Subscription Rates (per issue) :—

U.S.A.	...	...	...		$ 1
U.K.	...	...	...	sh.	10
India	...	...	...	Rs.	5.00
B.H.U.	...	...	...	Rs.	3.00

RULES

(1) The "Prajñā", shall, so far as possible, be published twice a year : one issue immediately after the Dipawali, the other immediately before the Holi.

(2) All subscriptions should be sent to the Assistant Editor, "Prajñā", B.H.U. Journal, Varanasi-5.

(3) Articles intended for publication in this Journal by B.H.U. scholars should be submitted to the Faculty Editor before July 20 for the first issue and November 20 for the next issue and should reach the Editorial Board on July 30 and Nov. 30 respectively.

(4) Articles should ordinarily be type-written on foolscap paper on one side only and should not ordinarily cover more than 10 pages. Teacher-authors contributing original articles to the Journal are entitled to receive 50 off-prints gratis and the students will get 25 off-prints.

(5) Article of a highly technical nature will not be entertained.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपा

गान्धी जन्मशती विशेषांक

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका

अंक १४ भाग (२) मार्च १९६९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक-मण्डल

डॉ० नन्दलाल सिंह
विभागाध्यक्ष, स्पेक्ट्रास्कापी (संयोजक)

डॉ० अवध किशोर नारायण
विभागाध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्व

डॉ० श्रीकृष्णराज भण्डारी
विभागाध्यक्ष, वाणिज्य

सकाय सम्पादक

१. **मीमांसारत्नम् अ० सुब्रह्मण्यम्**—रीडर, मीमांसा, प्राच्य विद्या एवं धर्मशास्त्र संकाय

२. **डॉ० तुलसीनारायण सिंह**—रीडर, अंग्रेजी विभाग, कला संकाय

३. **डॉ० महाराजनारायण मेहरोत्रा**—रीडर, भौमिकी विभाग, विज्ञान संकाय

४. **कुमारी वी० एस० देवधर**—महिला महाविद्यालय

५. **पं० रमापति शुक्ल**—रीडर, शिक्षा-शास्त्र संकाय

६. **श्री श्याममोहन तिवारी**—रीडर, वाणिज्य संकाय

७. **डॉ० लालमणि मिश्र**—प्रो० वाद्य संगीत, श्री कला संगीत भारती संकाय

सह-सम्पादक

गिरिजाशंकर सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूज्य महामना

हिताय सर्वलोकानां निग्रहाय च दुष्कृतां
धर्मसंस्थापनार्थाय प्रणम्य परमेश्वरम् ।
प्रसादाद्विश्वनाथस्य काश्यां भागीरथीतटे
विश्वविद्यालयः श्रेष्ठः हिन्दूनां मानवर्धनः ॥
हिन्दूराज्याधिपतिभिर्धनिकैर्धार्मिकैस्तथा
मिलित्वा स्थापितः सद्भिर्विद्याधर्मविवृद्धये ॥

जन्म :—वि० सं० १९१८ पौषकृष्ण ८ (२५-१२-१८६१)

मोक्ष :—वि० सं० २००३ मार्गशीर्षकृष्ण ४ (१२-११-१९४६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

१. श्रीगांधीशतकम्
पं० रतिनाथ झा १-१३

२. महात्मा गांधी का दीक्षान्त भाषण १४-१९

३. भारतीय शिक्षा पद्धति के संबंध में गांधी जी के विचार
पं० रमापति शुक्ल २०-२५

४. मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रेक्ष इत्याहाऽहिंसायै
मीमांसारत्नम् सुब्रह्मण्यम् शास्त्री ... २६-३५

५. गांधी जी की आर्थिक नीति
डॉ० अयोध्या सिंह एवं डॉ० इन्द्रदेव गुप्त ... ३६-४०

६. गांधी जी का इतिहास में स्थान
भगवती प्रसाद पांथरी ४१-४३

७. महात्मा गांधी के गुरु ग्रंथ
डॉ० भी० गो० देशपाण्डे ४४-४६

८. गांधी-युग में उ० प्र० की राजनीति (१९२० से नेहरू रिपोर्ट तक)
केदारनाथ सिंह ४७-५३

९. आधुनिकता और गांधी
चन्द्रभाल द्विवेदी ५४-५७

१०. गांधी की समन्वयवादी दृष्टि
सुरेशप्रसाद नारायण सिंह ५८-६२

११. गांधी जी की औद्योगिक नीति
डॉ० पी० के० भार्गव ६३-६६

१२. महात्मा गांधी
बी० वी० सूर्यनारायण ६७-७४

13. Gandhi's Concept of Art & Aesthetic
Sushila Pant 75-76

14. Gandhi—A Statesman-Saint
Anjani Kumar Srivastava ... 77-80

15. Gandhian Approach to Population Problem
Rishi Mani Dubey 81-84

16. Gandhi's Principle of Trusteeship
Anil Kumar Jain 85-89

17. A Short Introduction to Gandhian Philosophy
Dr. B. N. Sinha 90-96

१८. बुनियादी शिक्षा और गांधी जी
सुश्री प्रेमकुमारी ९७-१०१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९. राष्ट्रनायकः गांधी महात्मा !
पं० विश्वनाथ शास्त्री १०२
२०. आस्तिक पुरुष महात्मा गांधी
डॉ० जयशंकर द्विवेदी १०३-१०५
२१. महात्मा गांधी और राष्ट्रभाषा हिन्दी
सरस्वतीकान्त पाण्डेय १०६-१०८
२२. बुनियादी शिक्षा, पश्चिमी दर्शन व शिक्षा विचारक—गांधी जी के शैक्षणिक विचारों का एक विवेचनात्मक अध्ययन
डॉ० सुदर्शनपाल अहलुवालिया ... १०९-११६
२३. गांधी जी की अहिंसा शक्ति
भगवती प्रसाद राय ११७-१२३
२४. राजनीति में सत्य का प्रयोग
कुमारी चित्रलेखा चौहान १२४-१२६
25. Gandhiji on Education 127-138
26. Non-Violence as an Ethical Principle
Unto Tahtinen 139-142
२७. गांधी दर्शन में सत्य और अहिंसा का व्यावहारिक रूप
हृदयनारायण त्रिपाठी १४३-१४९
२८. महामानव : गांधी
डॉ० नन्दलाल सिंह १५०-१५६
२९. गांधी जी और बकरी का दूध
डॉ० देवनारायण पाण्डेय १५७-१५८
30. Gandhiji Contribution to Indian Culture
Dr. T. R. Sharma ... 159-167
३१. गांधी जी का समाज दर्शन
प्रो० मुकुट बिहारी लाल १६८-१७३
32. Mahatma Gandhi as Incarnation
Prem Shanknr Dubey ... 174-175
३३. महात्मनः गान्धिनोऽहिंसादर्शनम्
उदयचन्द्रो जैनः १७६-१७८
३४. महात्मा गांधी : भारतीय क्रांति का परिवर्तित स्वरूप
महेन्द्र प्रताप सिंह १७९-१८४
35. Socio-Religious Basis of Gandhian Social Order
K. L. Srivastava 185-200
36. Select Bibliography on Gandhian Thought
S. K. Pandey & Badri Prasad ... 201-212

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो युगपुरुष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्माजी का अभिवादन

(मूल पत्र)

मैंने मालवीयजी महाराज को पूजारी हु
पूजारी कैसे स्तुती के वचन लिख
सके? जो कुछ लिखेगा उसे अपूर्ण सा
प्रतीत होगा। मालवीयजी के दर्शन मैंने
सन १८९० की साल में चित्र द्वारा
किया था। वह चित्र विलायत में इंडिया
पत्र जो मी. डिगबी निकालते थे उसमें
था। माना गया कि यही छबी मैं आज
भी देख रहा हुं जैसे उनके लिबास में
ऐसे ही उनके विचार में ऐक्य चला
आया है और इस ऐक्य में मैंने माधुर्य
और भक्ति पाये हैं। आज मालवीयजी के
साथ देशभक्ति में कौन मुकाबला
कर सकता है? पौषन काल से आरंभ
करके आजतक उनकी देशभक्ति का
प्रवाह अविच्छिन्न चलता आया है।
काशी विश्वविद्यालय के मालवीयजी
प्राण है, का. वि. विद्यालय मालवीयजी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्माजी का अभिवादन

(२)

२

प्राण है यह नरवीर हमारे लिये
दीर्घायु हो
विलायत जाते हुए मोहनदास गांधी
७-९-'३१

मैं तो मालवीजी महाराज का पुजारी हूँ। पुजारी कैसे स्तुति के वचन लिख सके? जो कुछ लिखेगा उसे अपूर्ण सा प्रतीत होगा। मालवीजी के दर्शन मैंने सन् १८९० की साल में चित्र द्वारा किया था। वह चित्र विलायत में इंडिया पत्र जो मी० डिगबी निकालते थे उसमें था। माना जाय कि वही छवि मैं आज भी देख रहा हूँ। जैसे उनके लिवास में ऐसे ही उनके विचार में ऐक्य चला आया है और इस ऐक्य में मैंने माधुर्य और भक्ति पाये हैं। आज मालवीजी के साथ देशभक्ति में कौन मुकाबला कर सकता है? यौवन काल से आरम्भ करके आज तक उनकी देश-भक्ति का प्रवाह अविच्छिन्न चलता आया है। काशी विश्वविद्यालय के मालवीजी प्राण हैं, काशी विश्वविद्यालय मालवीजी का प्राण है। यह नरवीर हमारे लिये दीर्घायु हो।

विलायत जाते हुए
७—९—३१

मोहनदास गांधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीगांधी*शतकम्

रतिनाथ झाः

व्याख्याता, प्राच्यविद्या एवं धर्मशास्त्र संकाय, का० हि० वि० वि०

रत्नाकरैर्वलयितां, गिरिराजशृङ्गैः
सम्भावितां, नदनदीभिरलङ्कृताङ्गीम् ।
शस्यैः प्रशस्यसुषमामसमामरण्यै-
र्वन्दामहे सपदि भारतमातरं त्वाम् ॥१॥

यस्या रजोविजयशालिरजोव्रजेषु
क्रीडापराः शिशुवरा मुदिता लुठन्तः ।
सन्तो भवन्ति जनजीवनपावनाय
धन्यामनन्यसदृशीं धरणीं नुमस्ताम् ॥२॥

सद्बन्धुता च समता च सुशीलता च
रोहन्ति यत्र भुवि कल्पलताभिरामाः ।
सा भारतावनिरनर्घमणिप्रसूति-
र्भूनिं तनोतु जगतो ज्वलतो जवेन ॥३॥

यन्त्राणि सन्तु विविधानि समृद्धदेशे
शस्त्राणि नूतनतमानि तथा स्फुरन्तु ।
किन्तूच्चताप्रसविमानवतालताया
मूलाभिषेचनसुधा वहते त्विहैव ॥४॥

सन्तोषकोषपतयो ऽपरपोषसक्ताः
सेवाव्रताः सुकृतिनो विमलान्तरङ्गाः ।
दीने दयार्द्रहृदया विपदि प्रसन्नाः
सन्तो जयन्ति जनतार्चितनायकास्ते ॥५॥

सत्यानुरक्तहृदयो विजयाभिवन्द्यो
गीताप्रियो नरपराभवनाशहेतुः ।
प्रेमप्रकर्षनिरतो विनतो नयज्ञैः
श्रीमोहनो जयति भारतभाग्यमूलम् ॥६॥

दुःशासनापनयनिर्दलनैकचित्तो
दीनानुकम्पनपरो ऽखिललोकनम्यः ।
श्रीमोहनः सततचालितचारुचक्रः
शक्रावलेपशमनो जयतीह शश्वत् ॥७॥

---

* अव्युत्पन्नं प्रातिपदिकं मत्वात्र दीर्घः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिशिकप्रबलशासनपाशबद्धे
सर्वार्थशोषणवशाद्दलिते ऽत्रदेशे ।
श्रीकर्मचन्द्रपितुरङ्कमणिर्मनोज्ञः
प्रादुर्बभूव भुवि मोहनदासगाँधी ॥८॥

बाल्येऽपि यस्य न कदापि मनो विलोलं
नो यौवनेऽपि हृदयं तरलं बभूव ।
नैवानृतं वचसि चेतसि नाभिमानो
नान्तर्भयं निविशतेस्म, तमर्चयामः ॥९॥

मातुर्निसर्गमधुरां करुणामुदारां
स्तन्यामृतेन सहितं परिपीय कामम् ।
हिंसामलीकमवलेपकथां व्यलीकं
सर्वात्मना विजितवान् नितरामजेयम् ॥१०॥

लक्ष्मीमिव प्रणयिनीं परिणीय मुग्धः
कस्तूरबां पतिपरायणचितवृत्तिम् ।
रेमे चिराय परिहाय पितुर्मुमूर्षो-
रप्यन्तिकं मदनमोहितचेतनोऽयम् ॥११॥

दाम्पत्यरागमदिरारसलम्पटोऽपि
स्वायुश्चतुर्थदशकादपि पूर्वमेव ।
दुर्जेयकामविजयाय मतिं दधानो
मातृत्वमन्वभवदेष युवैव पत्न्याम् ॥१२॥

मुग्धो विशुद्धचरितो नवनीतचित्तः
कृत्ये दृढो मितवचा रुचिरस्वभावः ।
कौटिल्यकुण्ठितमतिर्गृहमार्जवस्य
छात्रो जगाम विधिबोधधिया विदेशम् ॥१३॥

स्थित्वा ब्रिटेनभुवि बुद्धतदीयवृत्ति-
स्तद्बन्धनाद् द्रुतमुमुक्षुतया तितिक्षुः ॥
स्वप्रज्ञया समनुचिन्त्य च तन्निरासो-
पायानपायविमुखानवलम्बतेस्म ॥१४॥

प्रागफ्रिकासु कृतवर्णविभेदरीति-
माश्रित्य सीदितजनान द्रुतमुद्दिधीर्षुः ।
आन्दोलयन्नभिनवैर्विधिभिर्विचित्रै-
श्चित्तं विजित्य नृपतेः फलवान् बभूव ॥१५॥

आंग्लाधिपप्रबलदुर्मदतन्त्रदान्ते
स्वातन्त्र्यविस्मरणजन्यनितान्तशान्ते ।
देशेऽत्र शासनविरोधविधिष्वनल्प-
जल्पप्रकल्पनपरा न्यवसन्नयज्ञाः ॥१६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केचिन्निहन्तुमखिलान् दमनैकचित्तान्
क्रूरान् प्रशासनजनान् विहितप्रतिज्ञाः ।
व्यस्फोटयन्निह कदाचिदहो क्वचिच्च
'वम्' नामकास्त्रमतिदुर्घटसाध्यलाभम् ॥१७॥

अन्ये विरोधमनुभावयितुं बहूनिः
पत्राणि लार्डभवने प्रहितान्यकार्षुः ।
मोघं श्रमं विदधतेस्म परेऽपि सिद्धि-
प्राप्तेरुपायमपरं परिचिन्तयन्तः ॥१८॥

नो गोखले र्न तिलको न च मालवीयो
नान्येऽपि विश्रुतमहामहिमान एव ।
कुण्ठां निरोद्धुमशकन्निह भारतीय-
स्वतन्त्र्यसङ्गरविधावुदितां तदानीम् ॥१९॥

स्वाधीनतासमरनायकलोचनानि-
व्याप्नोद् यदातिविकटो निविडन्धकारः ।
आशास्तदा विशदयन् सहसाविरासीद्
भास्वानिवेह भुवि मोहनदास गाँधी ॥२०॥

साम्राज्यभक्तजनमर्दितभावनाया
अस्पृश्यतोन्मिषितमानवताव्यथायाः ।
पूर्णं श्रमं विदधतामपि दीनताया
उच्छ्वासराशिरिव राजति लब्धदेहः ॥२१॥

शीतातपाद्यसहदुःखहतोत्सवानां
दुष्पूरणीयजठरानलतापितानाम् ।
आवासशून्यजनुषां दलिताशयाना-
मापद्विमोचनविधिर्विधिना कृतोऽयम् ॥२२॥

आजानुबाहुमनिशं स्मितशोभिवक्त्र-
मात्मप्रणीतपटमण्डितगात्रयष्टिम् ।
बद्धाञ्जलिं सततचिन्तनशीलचित्तं
वित्तं समस्तजगतो मनसा स्मरामः ॥२३॥

प्रौढेऽपि पण्डितवरे ऽपि च देशभक्त-
व्राते व्रती च सुकृती च पदं दधे ऽयम् ।
नेतृत्वमस्य सकलैरपि नीतिनिष्ठै-
रङ्गीकृतं फलवदाशु विलोक्य मुग्धैः ॥२४॥

योगाः श्रुतास्तु बहवो ऽधिगमाय मुक्ते-
र्मोघास्तु देशमखिला अपि ते विमोक्तुम् ।
इत्याकलय्य मनसा परिचिन्त्य शश्वद्-
उद्भावितोऽस्त्यसदृयोग इतीह नव्यः ॥२५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशान्तरे ऽप्यसहयोगविधि प्रयोगे
दुष्प्राप्यसिद्धिमुपलभ्य विवृद्धकीर्त्तिः ।
आन्दोलनक्रममिहापि तथैव कर्त्तु-
मुद्योगमन्वहमुपाश्रितवानुदारम् ॥२६॥

ग्रामाधिके प्रचलिताधिकधर्मतत्त्वे
भाषाधिके विषमताधिकवाधितेऽस्मिन् ।
देशे विशालवपुषि भ्रमणेन शश्वत
कष्टां दशां नयनयोः पथिसोनयद् द्रोक् ॥२७॥

आभ्यन्तरान् गुणगणानवमत्य कृष्णा-
कारे जने विषमतामुपपादयत्सु ।
गौराङ्गशासकनयेषु विरोधवृत्ति
प्राचीकटद् गतभयो नितरामशक्याम् ॥२८॥

राज्याधिकारपरिवर्धनलोलुपानां
मुग्धप्रजाधनहरांग्लनराधि पानाम् ।
ज्वालावलीमिव जनान् ग्रस्नितुं कुनीतिं
रोद्धुं महात्मघन एव समर्थ आसीत् ॥२९॥

यानादिसाधनविहीनतयाऽत्यगम्ये
ग्रामे पदातिरपि यो भ्रमणं विधाय ।
सुप्तान् जनान् झटिति जागरयन् वचोभिः
सज्जं चकार निजसैनिकसङ्गमिद्धम् ॥३०॥

गतश्चम्पारण्यं कृषिरतशरण्यं गुणनिधिः
समुच्छेत्तुं नीलप्रवपनसमातङ्कलहरीम् ।
जनस्वान्ते शान्ते शयितधृतिमुत्थाप्य वचसा
गताशङ्कं लोकं प्रथितपरितोषं विहितवान् ॥३१॥

न चर्खां नो खादीं नहि हरिजनं नाप्यनशनं
न गां हिन्दुस्तानीं सविनयमवज्ञामपि न ताम् ।
न चाहिंसाशस्त्रं न च नवनवान्दोलनविधिं
समर्थो विज्ञातुं जन इह न गाँधी यदि भवेत् ॥३२॥

आन्दोलनं प्रथमविश्वविशालयुद्धात्
क्षीणप्रभे प्रभुवरे विहितं हिताय ।
आपत्ययोधिविपुलोर्भिशताहतेऽरौ
शंसन्ति सङ्गरमरं हि जयाय विज्ञाः ॥३३॥

हिंसापराङ्मुखहृदं दृढनिश्चयं च
सेवाव्रतं युवकसङ्कुल मुल्लसन्तम् ।
उत्साहसाहसनिधिं नितरां सहिष्णुं
सैन्ये न्यवेशयदयं सदयोऽपि योद्धुम् ॥३४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदेशिकापनयमाशु निहन्तुकामे
व्यग्रे जने निजपराक्रमबोधनार्थम् ।
आन्दोलनं प्रबलमाद्य मवद्यहीनं
प्रारब्धवान् क्षपयितुं परतन्त्रतां ताम् ॥३५॥

अन्यप्रशासनविनाशनदीक्षितोऽयं
देशो भृशं भयमपास्य बभूव लिग्मः ।
त्रैवर्णिकध्वजविभूषितपाणिपद्मो
लोकः स्वनायकमुरवं प्रसमीक्षतेस्म ॥३६॥

श्रोतुः श्रवोग्रहणपेशलवेणुनादा-
न्नीता यथा युवजना यमुनातटेषु ।
सर्वे तथात्वसहयोगमहाध्वरेऽस्मिन्
आह्वानतः समुदिता इह मोहनस्य ॥३७॥

कार्यं समं स्वजनजीवनमूलभूतं
त्यक्त्वा सपद्युपगते ऽमितभारतीये ।
ग्रामेषु सर्वनगरेषु ततो गरीयान्
आन्दोलनक्रम इहोपचितो विचित्रैः ॥३८॥

त्यक्त्वोन्नतेः प्रथमकारणभूतशिक्षां
छात्राः स्वपाठभवनाद्बहिराययुर्द्राक् ।
क्रान्तिश्चिरं जयतु सञ्जयतान्महात्मो
गाँधीति तीव्रवचसाभृशमुन्नदन्तः ॥३९॥

केचित् प्रशासनवितीर्णनिजैकवृत्तिं
सद्योऽपहाय बहिरीयुरपारहर्षाः ।
कारागृहेषु गमनाय मतिं दधाना
दुर्यातनां बहुविधां वरयाम्बभूवुः ॥४०॥

देशेऽशीलनिलया विनयप्रधाना
ये कल्पिता मृदुलशीतलधूलिकल्पाः ।
प्राप्ते परन्त्ववसरे पुरुषैरशेषै-
र्ज्ञातास्त एव दहनोज्ज्वलचण्डपिण्डाः ॥४१॥

एकस्य सैन्यनिकरः करनीतशस्त्रः
पक्षान्तरस्य पृतनाध्वजमात्रहस्ता ।
अन्योऽन्यसञ्जयनतत्परभूरिवीरो
लोकोत्तरोऽयमभवत्समरस्त्वपूर्वः ॥४२॥

शारीरिकं परपराभवमेव सिद्धि-
मेके सदैव गणयन्ति गृहीतशस्त्राः ।
अन्ये मनोविजयमेव जयं ब्रुवाणा
हिंसां विहाय रणकर्मणि संप्रवृत्ताः ॥४३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं चलत्यनुपमें समरेऽथ चौरी-
चौराभिधे जनपदे जनता प्रमत्ता ।
हत्वाऽऽततायिनमपि प्रथितामहिंसा-
नीतिं समापयदहो ! प्रतिशोधवृत्त्या ॥४४॥

हिंसात्मके युधि पराजयलाभमेव
मत्वाऽऽत्मनो दमनचक्रवशादुदग्रात् ।
आन्दोलनं द्रुतमवारुणदात्मशक्त्यो
क्रोधोद्धतान् समवलोक्य जनान् स धीरः ॥४५॥

आन्दोलनं यदपि पूर्णतया स्वतन्त्रं
कर्त्तुं स्वदेशमशकन्नहि वाञ्छनीयम् ।
किन्तु प्रसुप्तजनजागरणोत्सवं तु
सर्वासु दिक्षु युगपद्रचयाञ्चकार ॥४६॥

अन्तर्बहिर्विमलतां नितरां विधातु-
माधातुमात्मनि परात्मपदानुरागम् ।
सत्यं सुखैकशरणाभरणं प्रवेदे
वव्रे प्रतीतिजननीं प्रथितामहिंसाम् ॥४७॥

अध्यात्मयोगगुरुतानुगतामहिंसां
यो राजनीतिविषमे पथि वाहयित्वा ।
स्वस्यानुचिन्तनमनन्यसमानमेवं
विज्ञापयन् जयति मौलिकतत्त्वबोधः ॥४८॥

सम्राट्सभाभिमतलब्धनिमन्त्रणेन
कर्त्तुं स्वदेशविषये शुभमन्त्रणानि ।
सम्प्रस्थितः सपदि भारतनायकानां
सङ्घो महात्ममहिमाञ्चितनायकत्वे ॥४९॥

प्रत्यूषसि प्रबलशीतविकम्पिताङ्गा
आंग्लाधिपप्रमुखशासकनायकास्तम् ।
नग्नार्धदेहमवलोक्य मुदा हसन्तं
पोतेऽभ्युपेतवति ते चकिता बभूवुः ॥५०॥

निःसम्बलं धवलवस्त्रविभातकायं
निर्मायमुज्ज्वलचरित्रमनल्पकीर्त्तिम् ।
प्रीतिप्रसादितमुखं विमुखं च भीत्या
भृत्या विलोक्य नृपतेरभवन् विमुग्धाः ॥५१॥

पूर्णोन्नतोऽपि नितरां विनतो, नितान्त-
दीनोऽप्यदीनहृदयो मृदुरप्युदग्रः ।
क्रान्तिप्रियोऽपि परिपोषितशान्तिशक्ति-
श्चण्डोऽपि कोमलतमो विललास शश्वत् ॥५२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदेशिकं सुबहुमल्यमतीव रम्यं
वस्त्रं विहातुमचिरं रुचिरानुबन्धः ।
सम्पश्यतोऽमितजनस्य पुरः समन्ताद्
दाहं चकार जगरीषु गरीयसीषु ॥५३॥

यः स्वावलम्बनविधिं विदधद् विधिज्ञः
कर्मण्यताप्रणयवान् जनतानुरक्तः ।
विख्यातसाबरमतीपुलिनाश्रमस्थः
स्वातन्त्र्यमन्त्रजपसिद्धिमुरीचकार ॥५४॥

दुग्धं दुहन्ति सकलं विकलेऽपि वत्से
गोपा गवां कुल मलं नहि पालयन्ति ।
गोदुग्धमेव परिवर्जयतिस्म तस्माद्
गोवत्सकेषु करुणाकलितान्तरङ्गः ॥५५॥

यश्चानुसायमनुवासरमीश्वरस्य-
सम्प्रार्थनार्थविहितासु सभासु गत्वा ।
स्तुत्वा हरिं सह जनै रुदितां समस्या-
मादाय किञ्चिदपि चिन्तयतिस्म शश्वत् ॥५६॥

यो भारतीयशुभसंस्कृतिरक्तचित्तो-
ऽध्येतुं जनानुपदिदेश निलिम्पवाचम् ।
अध्यात्मतत्त्वपरिचिन्तनजातबोधो
नो भौतिकेषु विषयेषुमतिं बबन्ध ॥५७॥

येनार्यजीवनपरिष्करणाय कार्यं
सर्वासु दिक्षु युगपत् कृतमत्युदारम् ।
आत्मानुरूपमभिरूपकुलं विशाल-
मुल्लासितं च ललितं जननायकानाम् ॥५८॥

सामन्तमन्तुनवतन्तुविनिर्मितेन
जालेन दुर्यवनविग्रहदुर्ग्रहेण ।
एतस्य देशसरसो धनमीनमाप्तु-
मांग्ले प्रयत्ननिरतेऽभवदेष विघ्नः ॥५९॥

शान्तिप्रियोऽपि परपीडननिः स्पृहोऽपि
शाठ्यादपेतहृदयोऽपि दयान्वितोऽपि ।
अन्यायतः सपदि योद्धुममोघशस्त्रं
योद्धुः करेर्ऽपयितु मुद्यत एव सोऽभूत् ॥६०॥

लोकस्य चेतसि चिरन्तनभीतिरीति-
मुत्सारयन्नभयपोषकसत्क्रियाभिः ।
दुर्नीतिशक्तिदमनाय विवृद्धरागा-
मुत्साहसाहसधनां जनतां चकार ॥६१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आन्दोलनैर्नवनवैरसकृत् प्रयुक्तै-
मुक्तां दशां सपदि चेतसि भावयन्तम् ।
लोकं विशोकविधिना परतन्त्रतायाः
पाशं विनाशयितुमन्वरुणन्महात्मा ॥६२॥
भेदं विधाय जनतासु सदैव राज्यं
कर्त्तुं प्रयत्ननिरतं दृढशासनं तत् ।
उच्छेत्तुमाशु जनजागरणं वितेने
प्रेम्णा विवेकविनयोर्जितवाग्गरिम्णा ॥६३॥
धर्मान्तराणि भजतां वदतामनेक-
भाषां च संस्कृतिमुपाश्रयतां विभिन्नाम् ।
सङ्घं दृढं घटयतोऽस्य महाप्रयासा-
ज्जातैकता जगति विस्मयदायिनीह ॥६४॥
दुःशासनस्य भवनं भुवनाभिनन्द्यं
त्यक्त्वाऽवसद्विदुरसद्मनि मोहनोऽसौ ।
हित्वा तथायमपि धाम समृद्धिभाजां
भेज सदा हरिजनावसथं प्रसन्नः ॥६५॥
सर्वार्थसिद्धिजनके जननायकेऽस्मिन्
सेवारते महति सन्ततजागरूके ।
वैदेशिकापनयरञ्जितचित्तवृत्ति-
रेको बभूव यवनः प्रतिकूलशीलः ॥६६॥
शास्तुः कुमन्त्रपरिजल्पनजातरोषात्
सर्वात्मना मृदुनिसर्गविपर्ययाद्वा ।
हिन्दूजनाज्जवनशात्रवदीप्तमन्यु-
र्देशं विभङ्क्तुमुरुधा यवनः प्रयेते ॥६७॥
अङ्गीकृतेऽपि यवनीयहितानुबन्धे
सन्धिं विधातुमनिशं यतमानचित्ते ।
दुर्मन्त्रणाहितहठो विटकान्तरात्मा
जिन्ना महात्मवचनं न कदापि मेने ॥६८॥
अन्नैर्जलैर्निवसनैर्वसनैरजस्त्र-
मामोकतोऽपि यदि मातृभुवं विभङ्क्तम् ।
सङ्कल्पमेव न जहौ सुजनानुनीत-
स्तद्रोचते न हठिने हितकारि कार्यम् ॥६९॥
दुर्मन्त्रणाहितदुराग्रहिणी तदीय-
बुद्धिः सुतेव नृपतेरथ केकयानाम् ।
प्राज्यस्वराज्यविलसत्कमलामकाले
प्राकल्पयद्विकलताकलितां विपन्नाम् ॥७०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केचिद् विचाररुचिरा निजदेशभक्तः
सक्ताः सदा समुचिताचरणेऽनुरक्ताः ।
सद्राष्ट्रियानुरतिरञ्जितचेतसोऽत्र
भूताः प्रभूतयशसो यवनास्तदानीम् ॥७१॥
एके नितान्तकुशला अपि शब्दशिल्पे
कार्यक्रमेऽपि रुचिरे शुचितामुपेताः ।
नैवानुयायिनिवहैः परिपोषमाप्ता
आप्ता अपि प्रतिहत्ता इव संभवन्ति ॥७२॥
यस्यानुगो मतिमतां निवहो, वरेण्यः
कर्मण्यतैकदयितः, सुकृतानुरक्तः ।
सेवाव्रती, समुदयोन्मुखशक्तिपुञ्जो
यूनां गणः, स्थविरवर्य, उदारचेताः ॥७३॥
यस्मिन् स्वकर्मनिरते पुरुषोत्तमानां
माला श्रिया भरतभूमिमलञ्चकार ।
सेषु स्फुरत्स्वपि महामहिमायमेषु
सम्पूजितो निखिलनायकनेयवृन्दैः ॥७४॥
धन्यः सकोऽपि विबुधै, र्धनिभिर्दरिद्रैः
पुंभिः, पुरन्ध्रिभिरथो तरुणैरनल्पैः ।
सर्वात्मनार्पितबलः सबलः सुनेता
जेताऽसतां विजयते परिपूजनीयः ॥७५॥
देवाङ्गनाहृदयहारिविहाररङ्गे
दीप्तद्विजालिकुलकेलिलसत्तरङ्गे ।
राजीवराजिपरिराजितकान्तकाये
को मानसे सरसि राजटि हंसतुल्यः ? ॥७६॥
दुंष्ट्राकरालवदनेन जगञ्जिघत्सौ
काले द्वितीयमिह विश्वविशालयुद्धम् ।
आचार्यकैर्हिटलरैः प्रथितं समिद्ध-
मातङ्कविस्मयविधायि समन्ततोऽभूत् ॥७७॥
ज्वलाकरालदहनेन रणेन नून-
मूनीबभूव जगतो महतोऽवलेपः ।
तत्राप्यनारतमजेयतया स्फुरन्ती
दृप्ता ब्रिटेनपृतना पतितोन्नतापि ॥७८॥
कालानलप्रसरदुत्कटतीव्रतीव्र-
ज्वालावलीकवलितांग्लनरेन्द्रलक्ष्मीः ।
स्थैर्यं स्वधैर्यमचिरेण परित्यजन्ती
क्षीणा मृतेव च भृशं सहसा बभूव ॥७९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शस्त्रस्फुलिङ्गचयदग्धविदाधवीरे
धीरे परन्तु समरे जयिनि ब्रिटेने ।
स्वातन्त्र्यमाप्तुमखिलं खलु जन्मसिद्धं
प्रास्तौन्नृपप्रतिनिधेर्धुरि धुर्यनेता ॥८०॥
क्षीणोऽप्युपार्जितपराभवमर्दितोऽपि
शास्तुर्गणो गणयतिस्य न भारतीयान् ।
दर्पान्धतामुपगतोऽपितु नेतृवर्गं
वन्दीचकार विपरीतमतिप्रभावात् ॥८१॥
कारागृहे नियमिते निजनेतृवृन्दे
मर्माहतेव जनता जनतापशान्त्यै ।
आन्दोलनं परमतीव्रमभूतपूर्वं
गर्वापहं नरपते रचयाञ्चकार ॥८२॥
उद्दण्डराजपुरुषापकृतिप्रचण्डः
कल्लोलिनीहृदयवल्लभकल्पलोकः ।
उल्लंघ्य बन्धनतटं विसरत्प्रवाहः
कल्पान्तकाल इव संप्लवतेस्म भूमौ ॥८३॥
न्यायालयेषु नृपतेर्भवनान्तरेषु
विद्यालयेषु निलयेषु च शासकानाम् ।
राष्ट्रध्वजं सपदि रोपयितुं प्रवृत्तो
लोकोऽन्तकस्य शिरसि स्वपदं निधाय ॥८४॥
उत्साहसाहससमेधितदीधितीउचो
मर्यादया विरहितः सहितो हितेन ।
लोको विशाल भरतावनिमण्डलस्य
बन्धं द्रुतं श्लथितवान् परतन्त्रतायाः ॥८५॥
मुक्तेषु तन्निखिलभारतनायकेषु
सन्धेः कथातिकुटिलेन पथा प्रवृत्ता ।
प्रज्ज्वालिते यवनजातिविमन्युवन्हौ
बङ्गाभृशं ददहुरेव पतङ्गितास्ते ॥८६॥
तदा नोआखालीमनलकलनाभिः कवलय-
न्नसिप्रासैर्हिन्दूजनमनपराधं विकलयन् ।
शिशूनां नारीणां स्थविरतरुणानामपि मुदो
हरन् प्राणान् मत्तो यवनजन आसीद् यम इव ॥८७॥
अन्योऽन्यमारणपरायणमत्तलोके
सद्भावनां स्थिरयितुं गतभीर्गतो यः ।
नित्यं भ्रमन् प्रतिगृहं भयभीतचित्त-
माश्वासयन् जनयितुं हृदि सौमनस्यम् ॥८८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रिप्सोपनीतमभिनीतमिवातिछद्म-
नाट्यं विरुद्धघटनाहितसन्धिपत्रम् ।
सम्यङ्निरीक्ष्य सुधियो नृपनीतिनिष्ठा-
स्त्याज्यं तदेकमतयो जुघुषु स्तदानीम् ॥८९॥

राष्ट्रं विखराउचितुमुधममाचरन्तं
दुर्नीतिदूषितविचारमनुव्रजन्तम् ।
तारस्वरेण मिलिता जननायकास्तं
शास्तारमाहुरवमान्यमतं तदीयम् ॥९०॥

यावन्न मे भवति पूर्णतयाऽङ्गभङ्ग-
स्तावत्कुतो भवितु मर्हति देशभङ्गः ?
उद्घोषयन्नपि परं परतन्त्रतायाः
पाशाद्विमुक्तिमपि शीघ्रमियेष लब्धुम् ॥९१॥

आंग्लाः प्रशासनपदे निवसन्ति यावत्
तावन्न शाम्यति मिथः कलहः कदापि ।
इत्याकलप्य हृदि तानपनेतुमेव
शान्तेर्निदानमवधारितवानमोघम् ॥९२॥

कालाद्बहोरपहृतामिव वल्लभां तां
स्वातन्त्र्यपद्मनिलयामचिरादुपेतुम् ।
भङ्गं विधातुमपि भारतमातुरङ्ग-
मङ्गीचकार नितरामनभीप्सितं सः ॥९३॥

आकस्मिकेन विहितेन विनिर्णयेन
येनाभवन्नियतिनिष्ठुरनाट्यलीलाः ।
यस्मादलोकिषत हन्त ! विषण्णलोका
निःसारिताः स्वसदनादपनीतवत्ताः ॥९४॥

यात्रास्वसह्यपरिदेवनवेदनाभिः
कौटुम्बिकप्रणयवञ्चितचेतनाभिः ।
व्यग्रा विपद्भिरभितो जनताऽतिदीना
हीनां दशामनुबभूव परैरचिन्तयाम् ॥९५॥

पासूत्करैः परमधूसरिताङ्गवल्ली
दिल्ली मुपागतवती जनता विशाला ।
शालार्थिनी स्वजनपालनयोग्यवृत्ति-
माप्तुं नितान्तविकला भ्रमतिस्म देशे ॥९६॥

उत्पातकेतुकृतताण्डवलीलयैव
राज्याधिकारपरिवर्तनजातकायाम ।
मायामयीं बहुविधामुदितां समस्यां
येते समाधिविधिभिर्नितरां विजेतुम् ॥९७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशे तदा प्रचुरविप्लवशालि वृत्त-
मुत्पन्नमुन्नतविचारवतां शिरांसि ।
नीचैरचीकरदथापि शतप्रयत्नै-
र्भूयोऽपि सुस्थितिमिह प्रणिनाय बापूः ॥९८॥
हिन्दूजने परिभवं गमितेऽपि भूयः
पाकाय भूरिधनमर्पयितुं प्रयस्यन् ।
तोषाय हन्त यवनस्य वृथाऽऽत्मनीन-
माक्रोशमाशु निजबन्धुजनेष्वतानीत् ॥९९॥
क्षुब्धे विपन्नजनचेतसि तूच्चभाव-
सम्भावना भवति न प्रतिबिम्बिता यत् ।
क्रुद्धस्ततोऽभवदतीव विमूढचित्तौ
वित्तप्रदानशनमस्य निशम्य लोकः ॥१००॥
सम्प्रार्थनास्थलमितोऽन्तकदूत एव
क्रूरः करालकुमतिः कुटिलो जघन्यः ।
श्रीरामनन्म जपतोऽस्य वपुष्यनेकां
प्राणापहारगुलिकां विससर्ज नीचः ॥१०१॥
रामं स्मरन्नपि वदन्नपि रामनाम
शान्तः स्वधाम स जगाम महात्मवर्मः ।
यो जीवनेऽपि मरणेऽपि च मोहनस्य
दिव्यात्मतामनुचकार विकारहीनः ॥१०२॥
अन्यैरसाध्यमपि साध्यमिह प्रसाध्य
भक्तव्रजे रुदति निष्करुणो गतो यः ।
सङ्कोचयन् विततविश्वजनीनलीलां
कीलालकल्पमधुरां विरसीचकार ॥१०३॥
आमृत्युं नित्यमुचितां जनताहितार्थं
कुर्वन् क्रियामित विहाय फलाभिसन्धिम् ।
सिद्धोऽधुनातनयुगेऽपि स कर्मयोगी
भोगैषणाविरहितोऽलभत प्रशस्तिम् ॥१०४॥
देशोऽतिदुस्सहविपत्पदमर्दितोऽपि
शोकोच्छलत्तरलवाष्पसमाकुलोऽपि ।
श्रद्धानिबद्धहृदयेन विलापपूर्ण-
मन्त्येष्टिकर्म कृतवान् परितप्यमानः ॥१०५॥
स्वातन्त्र्यरत्नमपराश्रितमाप्य यत्नात्
प्रेम्णार्पयन्त्रथ जवाहरलालहस्ते ।
हिन्दूजने च यवने च चिराय मैत्री
सन्धातुमेव शमनातिथिरेष जातः ॥१०६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बापू, वदान्य, भवदुज्ज्वलजीवनेन
सिक्तः स्वराज्यसुतरुः शतशाख आस्ते ।
एषा त्वदीयबलिदानकथापि लोके
कर्मण्यतां च शुचितां च तनोतु शश्वत् ॥१०७॥
यस्यामुखे गतवती न कदापि भीति-
र्नीतिर्न कापुरुषगा यमुपाश्रिताभूत् ।
तस्यैव शुभ्रयशसो वचनं 'कुरुष्व-
किं वा म्रियस्व' खलु चुम्बति नोऽधकर्णम् ॥१०८॥
अद्यपि राष्ट्रियसभा भुवि भाति सैव
स्फूर्ति र्नसा परमिहास्ति न सा विशुद्धिः ।
सेवाव्रतं नहि तदीयसदस्यसङ्घे
किन्तु प्रशासनशुभासनमेव काम्यम् ॥१०९॥
नावातरिष्यदिह चेदतुलक्रियावान्
गाँधी गुरुर्नयवतामतुलप्रकाशः ।
नो शृंखलानिजटिला परतन्त्रताया
श्छिन्नाऽभविष्यदिति तिश्चितधारणा नः ॥११०॥
लोकोपकारनिरतोऽल्पपरिग्रहोऽपि
त्रिंशत्समाप्रमितविश्वनयेतिहासे ।
साश्चर्यचर्चितगुणोऽनुपक्रियाभिः
क्रान्तेर्मृदुश्च कठिनश्च मतोऽग्रदूतः ॥१११॥
सन्तापितापि तपनेन, विकम्पितापि
वात्यानित्येन मलिनीकृतमल्लिकापि ।
आमोदमञ्जुमकरन्दकरम्बिताङ्गं
शुभ्रं प्रसूनमतुलं नहि किं प्रसूते ? ॥११२॥
रत्नानि राजमुकुटेषु परिस्फुरन्तु
दिव्याङ्गनाङ्गसुषमामपि वर्धयन्तु ।
यस्यान्तिके गतमयोऽपि भवेत्सुवर्णं
तं स्पर्शमात्रकृतदिव्यमणिं नमामः ॥११३॥
उत्कोचवृत्तिरचिराल्लयमेतु, लोक-
चित्तं पुनर्विशतु सा शुचितै, कतापि-
प्राप्नोतु सुस्थिति, यथ प्रथतां स्वधर्मः,
श्रेयस्करो विजयतां गणतन्त्रं एषः ॥११४॥
श्रीमालवीयशतकार्जितकीर्तिरेखः
सम्प्रेरितः शतकमाशु विरच्य चैतत् ।
प्रज्ञोत्सवाय रतिनाथकविर्विनम्रः
शक्तिप्रदं नमति सद्गुरुपादपद्मम् ॥११५॥

इति श्रीगांधीशतकम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीक्षांत समारोह १९४२

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

महात्मा गांधी का दीक्षांत भाषण

पूज्य मालवीयजी, सर राधाकृष्णन्, भाइयों और बहनों,

आप सब जानते हैं कि आजकल मुझमें न तो सफर करने की ताकत है और न इच्छा ही, लेकिन जब मैंने इस विश्वविद्यालय के रजत महोत्सव की बात सुनी और मुझे सर राधाकृष्णन् का निमंत्रण मिला तो मैं इनकार न कर सका।

आप जानते हैं कि मालवीय जी महाराज के साथ मेरा कितना गाढ़ संबंध है। अगर उनका कोई काम मुझसे हो सकता है तो मुझे उसका अभिमान रहता है, और अगर मैं उसे कर सकूँ तो अपने को कृतार्थ समझता हूँ। इसलिए जब सर राधाकृष्णन् का पत्र मुझे मिला तो मैंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया। यहाँ आना मेरे लिए तो एक तीर्थ में आने के समान है।

यह विश्वविद्यालय मालवीय जी महाराज का सबसे बड़ा और प्राणप्रिय कार्य ह। उन्होंने हिन्दुस्तान की बहुत-बहुत सेवायें की हैं, इससे आज कोई इनकार नहीं कर सकता। लेकिन मेरा अपना खयाल यह है कि उनके महान् कार्यों में इस कार्य का महत्व सबसे ज्यादा रहेगा। २५ साल पहले, जब इस विश्वविद्यालय की नींव डाली गई थी, तब भी मालवीय जी महाराज के आग्रह और खिंचाव से मैं यहाँ आ पहुँचा था। उस समय तो मैं यह सोच भी न सकता था कि जहाँ बड़े-बड़े राजा, महाराजा और खुद वाइसराय आनेवाले है, वहाँ मुझ-जैसे फकीर की क्या जरूरत हो सकती है। तब तो मैं "महात्मा" भी नहीं बना था। अगर कोई मुझे "महात्मा" के नाम से पुकारते भी थे तो मैं यही सोच लेता था कि महात्मा मुंशीराम जी के बदले भूल से मुझे किसी ने पुकार लिया होगा। उनकी कीर्ति तो मैंने दक्षिण अफ्रीका में ही सुन ली थी। हिन्दुस्तान से धन्यवाद और सहानुभूति का संदेश भेजनेवालों में एक वे भी थे; और मैं जानता था कि हिन्दुस्तान की जनता ने उन्हें उनकी देशसेवाओं के लिए महात्मा की उपाधि दी थी। उस समय भी मालवीय जी महाराज की कृपादृष्टि मुझ पर थी। कहीं भी कोई सेवक हो, वे उसे ढूँढ़ निकालते हैं, और किसी-न-किसी तरह अपने पास खींच ही लाते हैं। यह उनका सदा का धन्धा है।

"भिक्षां देहि"

लोग मालवीय जी महाराज की बड़ी प्रशंसा करते हैं। आज भी आपने उनकी कुछ प्रशंसा सुनी है, वे सब तरह उसके लायक हैं। मैं जानता हूँ कि हिन्दू विश्वविद्यालय कितना बड़ा विस्तार है। संसार में मालवीय जी से बढ़कर कोई भिक्षुक नहीं। जो काम उनके सामने आ जाता है, उसके लिए—अपने लिए नहीं—उनकी भिक्षा की झोली का मुँह हमेशा खुला रहता है,—वे हमेशा माँगा ही करते हैं। और परमात्मा की भी उन पर बड़ी दया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि जहाँ जाते हैं, उन्हें पैसे मिल ही जाते हैं, तिस पर भी उनकी भूख कभी नहीं बुझती। उनका भिक्षा-पात्र सदा खाली रहता है। उन्होंने विश्वविद्यालय के लिए एक करोड़ इकट्ठा करने की प्रतिज्ञा की थी। एक करोड़ की जगह डेढ़ करोड़ दस लाख रुपया इकट्ठा हो गया, मगर उनका पेट नहीं भरा। अभी-अभी उन्होंने मुझसे कान में कहा है कि आज के हमारे सभापति महाराजा साहब दरभंगा ने उनको एक खासी बड़ी रकम दान में और दी है।

तीर्थस्वरूप मालवीयजी

मैं जानता हूँ कि मालवीय जी महाराज स्वयं किस तरह रहते हैं। यह मेरा सौभाग्य है कि उनके जीवन का कोई पहलू मुझसे छिपा नहीं। उनकी सादगी, उनकी पवित्रता और उनकी मुहब्बत से मैं भलीभाँति परिचित हूँ। उनके इन गुणों में से आप जितना कुछ ले सकें, जरूर लें। विद्यार्थियों के लिए तो उनके जीवन की बहुतेरी बातें सीखने लायक हैं। मगर मुझे डर है कि उन्होंने जितना सीखना चाहिए, सीखा नहीं है। यह आपका और हमारा दुर्भाग्य है। इसमें उनका कोई कसूर नहीं। धूप में रहकर भी कोई सूरज का तेज न पा सके तो उसमें सूरज बेचारे का क्या दोष? वह तो अपनी तरफ से सबको गर्मी पहुँचाता रहता है, पर अगर कोई उसे लेना ही न चाहे, और ठण्ड में रहकर ठिठुरता फिरे तो सूरज भी उसके लिए क्या करे? मालवीय जी महाराज के इतने निकट रहकर भी अगर आपने उनके जीवन से सादगी, त्याग, देशभक्ति, उदारता और विश्वव्यापी प्रेम आदि सद्गुणों का अपने जीवन में अनुकरण न कर सके तो कहिये, आपसे बढ़कर अभागा और कौन होगा?

कैसी गुलामी

अब मैं विद्यार्थियों और अध्यापकों से दो शब्द कहा चाहता हूँ।

मैंने तो सर राधाकृष्णन् से पहले ही कह दिया था कि मुझे क्यों बुलाते हैं? मैं वहाँ पहुँचकर क्या कहूँगा? जब बड़े-बड़े विद्वान् मेरे सामने आ जाते हैं, तो मैं हार जाता हूँ, जब से हिन्दुस्तान आया हूँ, मेरा सारा समय कांग्रेस में और गरीबों, किसानों और मजदूरों वगैरा में बीता है। मैंने उन्हीं का काम किया है। उनके बीच मेरी जबान अपने आप खुल जाती है। मगर विद्वानों के सामने कुछ कहते हुए मुझे बड़ी झिझक मालूम होती है। श्री राधाकृष्णन् ने मुझे लिखा कि मैं अपना लिखा हुआ भाषण उन्हें भेज दूँ। पर मेरे पास उतना समय कहाँ था? मैंने उन्हें जवाब दिया कि वक्त पर जैसी प्रेरणा मुझे मिल जायगी, उसी के अनुसार मैं कुछ कह सकूँगा। मुझे प्रेरणा मिल गई है। मैं जो कुछ कहूँगा, मुमकिन है, वह आपको अच्छा न लगे। उसके लिए आप मुझे माफ कीजिएगा। यहाँ आकर जो कुछ मैंने देखा, और देख कर मन में जो चीज पैदा हुई, वह शायद आपको चुभेगी। खयाल था कि कम से कम यहाँ तो सारी कार्रवाई अंग्रेजी में नहीं, बल्कि राष्ट्रभाषा में ही होगी। मैं यहाँ बैठा यही इन्तजार कर रहा था कि कोई न कोई तो आखिर हिन्दी या उर्दू न सही, कम-से-कम मराठी या संस्कृत में ही कोई कुछ कहता। लेकिन मेरी सब आशायें निष्फल हुईं।

अंग्रेजों को हम गालियाँ देते हैं कि उन्होंने हिन्दुस्तान को गुलाम बना रखा है, लेकिन अंग्रेजी के तो हम खुद गुलाम बन गये हैं। अंग्रेजी ने हिन्दुस्तान को काफी पामाल किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसके लिए मैंने उनकी कड़ी-से-कड़ी टीका भी की है। परन्तु अंग्रेजी की अपनी इस गुलामी के लिए मैं उनको जिम्मेदार नहीं समझता। खुद अंग्रेजी सीखने और अपने बच्चों को अंग्रेजी सिखाने के लिए हम कितनी-कितनी मेहनत करते हैं? अगर कोई हमें कह देता है कि हम अंग्रेजों की तरह अंग्रेजी बोल लेते हैं, तो मारे खुशी के फूले नहीं समाते। इससे बढ़कर दयनीय गुलामी और क्या हो सकती है? इसकी वजह से हमारे बच्चों पर कितना जुल्म होता है? अंग्रेजी के प्रति हमारे इस मोह के कारण देश की कितनी शक्ति और कितना श्रम बरबाद होता है? इसका पूरा हिसाब तो हमें तभी मिल सकता है, जब गणित का कोई विद्वान् इसमें दिलचस्पी ले। कोई दूसरी जगह होती, तो शायद यह सब बरदास्त कर लिया जाता, मगर यह तो हिन्दू विश्वविद्यालय है। जो बातें इसकी तारीफ में अभी कही गई हैं, उनमें सहज ही एक आशा यह भी प्रकट की गई है कि यहाँ के अध्यापक और विद्यार्थी इस देश की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के जीते-जागते नमूने होंगे। मालवीय जी ने तो मुँह-माँगी तनख्वाहें देकर अच्छे-से-अच्छे अध्यापक यहाँ आप लोगों के लिए जुटा रखे हैं। अब उनका दोष तो कोई कैसे निकाल सकता है? दोष जमाने का है। आज हवा ही कुछ ऐसी बन गई है कि हमारे लिए उसके असर से बच निकलना मुश्किल हो गया है। लेकिन अब वह जमाना भी नहीं रहा, जब विद्यार्थी जो कुछ मिलता था, उसी में सतुष्ट रह लिया करते थे। अब तो वे बड़े-बड़े तूफान भी खड़े कर लिया करते हैं। छोटी-छोटी बातों के लिए भूख हड़ताल तक कर देते हैं। अगर ईश्वर उन्हें बुद्धि दे, तो वे कह सकते हैं, "हमें अपनी मातृभाषा में पढ़ाओ।" मुझे यह जानकर खुशी हुई कि यहाँ आन्ध्र के २५० विद्यार्थी हैं। क्यों न वे सर राधाकृष्णन् के पास जांय और उनसे कहें कि यहाँ हमारे लिए एक आन्ध्र विभाग खोल दीजिए और तेलगू में हमारी सारी पढ़ाई का प्रबन्ध करा दीजिए? और अगर वे मेरी अक्ल से काम करें, तब तो उन्हें कहना चाहिए कि हम हिन्दुस्तानी है, हमें ऐसी जबान में पढ़ाइए, जो सारे हिन्दुस्तान में समझी जा सके। और, ऐसी जबान तो हिन्दुस्तानी हो सकती है।

कहाँ जापान, कहाँ हम?

जापान आज अमेरिका और इंग्लैंड से लोहा ले रहा है। लोग इसके लिए उसकी तारीफ करते हैं। मैं नहीं करता। फिर भी जापान की कुछ बातें सचमुच हमारे लिए अनुकरणीय हैं। जापान के लड़कों और लड़कियों ने यूरोपवालों से जो कुछ पाया है, अपनी मातृभाषा जापानी के जरिये ही पाया है, अंग्रेजी के जरिये नहीं। जापानी लिपि बड़ी कठिन है, फिर भी जापानियों ने रोमन लिपि को कभी नहीं अपनाया। उनकी सारी तालीम जापानी लिपि और जापानी जबान के जरिये ही होती है। जो चुने हुए जापानी पश्चिमी देशों में खास किस्म की तालीम के लिए भेजे जाते हैं, वे भी जब आवश्यक ज्ञान पाकर लौटते हैं, तो अपना सारा ज्ञान अपने देशवासियों को जापानी भाषा के जरिये ही देते हैं। अगर वे ऐसा न करते और देश में आकर दूसरे देशों के जैसे स्कूल और कालेज अपने यहाँ भी बना लेते, और अपनी भाषा को तिलांजलि देकर अंग्रेजी में सब कुछ पढ़ाने लगते तो उससे बढ़कर बेवकूफी और क्या होती? इस तरीके से जापान वाले नई भाषा तो सीखते, लेकिन नया ज्ञान न सीख पाते। हिन्दुस्तान में तो आज हमारी महत्वाकांक्षा ही यह रहती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि हमें किसी तरह कोई सरकारी नौकरी मिल जाय, या हम वकील, बैरिस्टर, जज, वगैरा बन जायें। अंग्रेजी सीखने में हम बरसों बिता देते हैं, तो भी सर राधाकृष्णन् या मालवीय जी महाराज के समान अंग्रेजी जानने वाले हमने कितने पैदा किये हैं ? आखिर वह एक पराई भाषा ही न है ? इतनी कोशिश करने पर भी हम उसे अच्छी तरह सीख नहीं पाते। मेरे पास सैकड़ों खत आते रहते हैं। इनमें कई एम०ए० पास लोगों के भी होते हैं, परन्तु चूँकि वे अपनी जबान में नहीं लिखते, इसलिए अंग्रेजी में अपने खयाल अच्छी तरह जाहिर नहीं कर पाते।

चुनांचे यहाँ बैठे-बैठे मैंने जो कुछ देखा, उसे देखकर मैं तो हैरान रह गया। जो कार्रवाई अभी यहाँ हुई, जो कुछ कहा या पढ़ा गया, उसे जनता तो कुछ समझ ही नहीं सकी। फिर भी हमारी जनता में इतनी उदारता और धीरज है कि चुपचाप सभा में बैठी रहती है और खाक समझ में न आने पर भी यह सोचकर संतोष कर लेती है कि आखिर हमारे नेता ही न है ? कुछ अच्छी ही बात कहते होंगे। लेकिन इससे उसे लाभ क्या ? वह तो जैसी आई थी, वैसी ही लौट जाती है। अगर आपको शक हो तो मैं अभी हाथ उठवाकर लोगों से पूछूँ कि यहाँ की कार्रवाई में वे कितना कुछ समझे हैं ? आप देखियेगा कि वे सब "कुछ नहीं", "कुछ नहीं" कह उठेंगे। यह तो हुई आम जनता की बात। अब अगर आप यह सोचते हों कि विद्यार्थियों में से हर एक ने हर बात को समझा है, तो वह दूसरी बड़ी गलती है।

आज से पच्चीस साल पहले जब मैं यहाँ आया था, तब भी मैंने यही सब बातें कही थीं। आज यहाँ आने पर जो हालत मैंने देखी, उसने उन्हीं चीजों को दोहराने के लिए मुझे मजबूर कर दिया।

शारीरिक ह्रास

दूसरी बात जो मेरे देखने में आई, उसको तो मुझे जरा भी उम्मीद न थी। आज सुबह मैं मालवीय जी महाराज के दर्शनों को गया था। वसन्तपंचमी का अवसर था, इसलिए सब विद्यार्थी भी वहाँ उनके दर्शनों के आये थे। मैंने उस वक्त भी देखा कि विद्यार्थियों को जो तालीम मिलनी चाहिये, वह उन्हें नहीं मिलती। जिस सभ्यता, खामोशी और तरतीब के साथ उन्हें चलते आना चाहिये, उस तरह चलना उन्होंने सीखा ही नहीं था। यह कोई मुश्किल काम नहीं, कुछ ही समय में सीखा जा सकता है। सिपाही जब चलते हैं, तो सिर उठाये, सीना ताने, तीर की तरह सीधे चलते हैं, लेकिन विद्यार्थी तो उस वक्त आड़े-टेढ़े आगे-पीछे, जैसा जिसका दिल चाहता था, चलते थे। उनके उस "चलने" को चलना कहना भी शायद मुनासिब न हो, मेरी समझ में तो इसका कारण भी यही है कि हमारे विद्यार्थियों पर अंग्रेजी जबान का बोझ इतना पड़ जाता है कि उन्हें दूसरी तरफ सर उठाकर देखने की फुरसत नहीं मिलती। यही वजह है कि दरअसल उन्हें जो सीखना चाहिये, वे सीख नहीं पाते।

बौद्धिक थकान

एक और बात मैंने देखी। आज सुबह हम श्री शिवप्रसाद गुप्त के घरसे लौट रहे थे। रास्ते में विश्वविद्यालय का विशाल प्रवेशद्वार पड़ा। उस पर नजर गई तो देखा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरी लिपि में "हिन्दू विश्वविद्यालय" इतने छोटे हरुफों में लिखा है कि ऐनक लगाने पर भी नहीं पढ़ पाते पर अंग्रेजी Benares Hindu University ने तीन चौथाई से भी ज्यादा जगह घेर रखी थी। मैं हैरान हुआ कि यह क्या मामला है ? इसमें मालवीय जी महाराज का कोई कसूर नहीं। यह तो किसी इंजीनियर का काम होगा। लेकिन सवाल तो यह है कि अंग्रेजी की वहाँ जरूरत ही क्या थी ? क्या हिन्दी या फारसी में कुछ नहीं लिखा जा सकता था ? क्या मालवीय जी, और क्या सर राधाकृष्णन्, सभी हिन्दू-मुस्लिम एकता चाहते हैं। फारसी मुसलमानों की अपनी खास लिपि मानी जाने लगी है। उर्दू का देश में अपना खास स्थान है। इसलिए अगर दरवाजे पर फारसी में, नागरी में या हिन्दुस्तान की दूसरी किसी लिपि में कुछ लिखा जाता, तो मैं उसे समझ सकता था। लेकिन अंग्रेजी में उसका वहाँ लिखा जाना भी हम पर जमे हुए अंग्रेजी जबान के साम्राज्य का एक सूबत है। किसी नई लिपि या जबान को सीखने से हम घबराते हैं, जब कि सच तो यह है कि हिन्दुस्तान की किसी जबान या लिपि को सीखना हमारे लिए बायें हाथ का खेल होना चाहिए। जिसे हिन्दी या हिन्दुस्तानी आती है, उसे मराठी, गुजराती, बँगाली वगैरा सीखने में तकलीफ ही क्या हो सकती है ? कन्नड़, तेलुगू और मलयालम का भी मेरा तो यही तजुरबा है। इनमें भी संस्कृत से निकले हुए काफ़ी शब्द भरे पड़े हैं। जब हममें अपनी मादरी जबान या मातृभाषा के लिए सच्ची मुहब्बत पैदा हो जायगी तो हम इन तमाम भाषाओं को बड़ी आसानी से सीख सकेंगे। रही बात उर्दू की, सो वह भी आसानी के साथ सीखी जा सकती है। लेकिन बदकिस्मती से उर्दू के आलिम यानी विद्वान् इधर उसमें अरबी और फारसी के शब्द ठूँस-ठूँस कर भरने लगे हैं—उसी तरह, जिस तरह हिन्दी के विद्वान्, हिन्दी में संस्कृत शब्द भर रहे हैं। नतीजा इसका यह होता है कि जब मुझ जैसे आदमी के सामने कोई लखनवी तर्ज को उर्दू बोलने लगता है, तो सिवा बोलने वालों का मुँह ताकने के और कोई चारा नहीं रह जाता।

अपनी विशेषता चाहिए

एक बात और। पश्चिम के हर एक विश्वविद्यालय की अपनी एक-न-एक विशेषता होती है। कैम्ब्रिज और ऑक्सफर्ड को ही लीजिए। इन विश्वविद्यालयों को इस बात का नाज है कि इनके हर एक विद्यार्थी पर इनकी अपनी विशेषता की छाप इस तरह लगी रहती है कि वे फौरन पहचाने जा सकते हैं। हमारे देश के विश्वविद्यालयों की अपनी ऐसी कोई विशेषता होती नहीं। वे तो पश्चिमी विश्वविद्यालयों की एक निस्तेज और निष्प्राण नकल-भर है। अगर हम उनको पश्चिमी सभ्यता का सिर्फ सोख्ता या स्याही सोख कहें, तो शायद बेजा न होगा। आपके इस विश्वविद्यालय के बारे में अकसर यह कहा जाता है कि यहाँ शिल्प-शिक्षा और यंत्र-शिक्षा का यानी इंजीनियरिंग और टेक्नालाजी का देश भर में सबसे ज्यादा विकास हुआ है और इनकी शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध है। लेकिन इसे मैं यहाँ की विशेषता मानने को तैयार नहीं। तो फिर इसकी विशेषता क्या हो ? मैं इसको एक मिसाल आपके सामने रक्खा चाहता हूँ। यहाँ जो इतने हिन्दू विद्यार्थी हैं, उनमें से कितनों ने मुसलमान विद्यार्थियों को अपनाया है ? अलीगढ़ के कितने छात्रों को आप अपनी ओर खींच सके हैं ? दर असल आपके दिल में चाह तो यह पैदा होनी चाहिए कि आप तमाम मुसलमान विद्यार्थियों को यहाँ बुलायेंगे, और उन्हें अपनायेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुस्तान की पुरानी संस्कृति का संदेश

इसमें शक नहीं कि आपके विद्यालय को काफी धन मिल गया है, और जब तक मालवीय जी महाराज हैं, आगे भी मिलता रहेगा, लेकिन मैंने जो कुछ कहा है, वह रुपये का खेल नहीं। अकेला रुपया सब काम नहीं कर सकता। हिन्दू विश्वविद्यालय से मैं विशेष आशा तो इस बात की रखूँगा कि यहाँ वाले इस देश में बसे हुए सभी लोगों को हिन्दुस्तानी समझें, और अपने मुसलमान भाइयों को अपनाने में किसी से पीछे न रहें। अगर वे आपके पास न आयें, तो आप उनके पास जाकर उन्हें अपनाइये। अगर इसमें हम नाकामयाब भी हुए तो क्या हुआ ? लोकमान्य तिलक के हिसाब से हमारी सभ्यता दस हजार बरस पुरानी है। बाद के कई पुरातत्वशास्त्रियों ने उसे इससे भी पुरानी बताया है। इस सभ्यता में अहिंसा को परम धर्म माना गया है। चुनांचे इसका कम से कम एक नतीजा तो यह होना चाहिए कि हम किसी को अपना दुश्मन न समझें। वेदों के समय से हमारी यह सभ्यता चली आ रही है। जिस तरह गंगा जी में अनेक नदियाँ आकर मिली हैं, उसी तरह इस देशी संस्कृति-गंगा में भी अनेक संस्कृतिरूपी सहायक नदियाँ आकर मिली हैं। यदि इन सबका कोई संदेश या पैगाम हमारे लिए हो सकता है तो यही कि हम सारी दुनिया को अपनायें और किसी को अपना दुश्मन न समझें। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह हिन्दू विश्वविद्यालय को यह सब करने की शक्ति दे। यही इसकी विशेषता हो सकती है। सिर्फ अंग्रेजी सीखने से यह काम नहीं हो पायेगा। इसके लिए तो हमें अपने प्राचीन ग्रंथों और धर्मशास्त्रों का श्रद्धापूर्वक यथार्थ अध्ययन करना होगा, और यह अध्ययन हम मूल ग्रंथों के सहारे ही कर सकते हैं।

आखिरी बात

अन्त में एक बात मुझे और कहनी है। आप लोग रहते तो महलों में हैं, क्योंकि मालवीय जी महाराज ने आपके लिए ये महलों जैसे छात्रालय वगैरा बनवा दिये हैं, पर इसका वह मतलब नहीं कि आप महलों में रहने के आदी बन जांय। आप मालवीय जी महाराज के घर जाइये और देखिये वहाँ आपको इनमें से कोई चीज न मिलेगी—न ठाठ-बाट होगा, न साजो-सामान और न किसी तरह का कोई दिखावा। उनसे आप सादगी और गरीबी का पाठ सीखिये। आप यह कभी न भूलिये कि हिन्दुस्तान एक गरीब देश है और आप गरीब माँ-बाप की सन्तान हैं। उनकी मेहनत पैसा यों ऐशो-आराम में बरबाद करने का आपको क्या हक है ? ईश्वर आपको चिरंजीवी करे और सद्बुद्धि दे कि जिससे आप मालवीय जी महाराज की त्याग-शीलता, आध्यात्मिकता और सादगी से अपने जीवन को रंग सकें और आज जो कुछ मैंने आपसे कहा है, उस पर समझदारी के साथ अमल करें।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय शिक्षा पद्धति के संबंध में गांधी जी के विचार

पं० रमापति शुक्ल, शिक्षा संकाय, का० हि० वि०

शिक्षा के संबंध में किसी व्यक्ति के विचार उसके जीवन दर्शन से व्यक्त होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का अपना जीवन दर्शन होता है अर्थात् जीवन के प्रति उसका अपना एक दृष्टिकोण होता है। उसी के अनुसार वह अपना जीवन व्यतीत करता है और उसी के अनुसार वह भावी पीढ़ी को भी ढालना चाहता है। भावी पीढ़ी के निर्माण के लिए वह जो भी प्रक्रिया अपनाना चाहता है वे ही उसके शैक्षिक विचार होते हैं। अतः शिक्षा के संबंध में गांधी जी के विचारों को जानने के पूर्व उनका जीवन दर्शन समझ लेना आवश्यक है।

गांधी जी दृढ़ ईश्वरवादी थे। वे बचपन से ही ऐसे संस्कारों में पले थे कि ईश्वर पर दृढ़ विश्वास रखना उनके स्वभाव का अंग बन गया था। बड़े होने पर उनके संस्कारों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुए, वरन् उनकी आस्तिकता और भी पुष्ट होती गई जिससे वे अधिकाधिक अद्वैतवादी हो गए। वे सभी प्राणियों में एक ही ब्रह्म का निवास मानने लगे। अतः वे अपने अंतःकरण में भी परमात्मा की उपस्थिति पर विश्वास करने लगे। उन्हें कालिदास की निम्नांकित सूक्ति पर दृढ़विश्वास था।

सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः।

अर्थात् सज्जनों को किसी बात में संदेह उत्पन्न होने पर आत्मा की आवाज ही उनका मार्गदर्शन करती है।

यही कारण है कि गांधी जी के सामने कोई द्वन्द्व आता था तो कहते थे कि मैं अपनी आत्मा से पूछ लूँ, तब निर्णय करूँगा। और सचमुच उन्हें आत्मा की आवाज से जो संकेत मिलता, उसी के अनुसार वे चलते थे।

गांधी जी की आस्तिकता के दो प्रबल स्तंभ थे—सत्य और अहिंसा। सत्य को वे ईश्वर का ही स्वरूप मानते थे। उनके लिए सत्य ईश्वर था और ईश्वर सत्य। दोनों में कोई अन्तर नहीं था। अतः सत्याचरण को वे ईश्वर की इच्छा के अनुकूल आचरण मानते थे। उनके लिए सत्याचरण ईश्वर प्राप्ति का साधन था। इसी से उन्होंने आत्मकथा का नाम रखा 'सत्य के प्रयोग'। सचमुच ही उनका जीवन बचपन से ही सत्य का प्रयोग करनेमें बीता और अंत तक वे सत्य के प्रयोग से विरत नहीं हुए। वे जो कुछ करते थे उसे सत्य की कसौटी पर कस कर देख लेते थे। यदि वह खरा उतरता था तो उसका आचरण करते थे, अन्यथा नहीं।

सत्याचरण के लिए अहिंसा का पालन गांधी जी अनिवार्य मानते थे। जो सब प्राणियों में ईश्वर का निवास मान कर सबके प्रति दया, प्रेम एवं सहानुभूतिपूर्वक आचरण कर सकता है वही तो अहिंसा का वास्तविक पुजारी है। मन, वचन और कर्म से किसी को कष्ट न देना ही सच्ची अहिंसा है। अतः वे अहिंसा को भी सत्य के प्रयोग का एक आवश्यक अंग मानते थे।

सत्य, अहिंसा, प्रेम, दया आदि के निर्वाह के लिए गांधी जी धर्म को मानव जीवन का आवश्यक अंग मानते थे। परन्तु धर्म का वे व्यापक अर्थ लगाते थे। धर्म उनके लिए संकीर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांप्रदायिकता से बहुत ऊपर उठाकर मानव को देवतुल्य बनाने वाला आचरण था। अतः जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वे धर्म को आवश्यक समझते थे। अपने जीवन में धर्म नीति को उन्होंने कभी नहीं छोड़ा, चाहे वह राजनीति का क्षेत्र हो, चाहे समाज सुधार का या शिक्षा का। यहाँ तक कि उनकी आर्थिक नीति भी धर्माचरण पर आधारित थी। वे अधर्म से कमाये हुए धन को पाप का धन मानते थे। इसी कारण मादक द्रव्यों से प्राप्त राजस्व को वे शिक्षा के पुण्य कार्य में लगाने के पक्ष में नहीं थे। जब उनसे कहा गया कि मादक द्रव्य निषेध आन्दोलन का शिक्षा प्रसार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा और उसके लिए धन का अभाव हो जाएगा तब उन्होंने कहा कि मैं पाप की कमाई को शिक्षा पर लगाना उचित नहीं समझता। इस प्रकार गांधी जी की धर्म में सच्ची आस्था थी। वे दृढ़ विश्वास रखते थे कि

111485

जो हठ राखे धर्म को तेहि राखे करतार।

गांधी जी जब भारतीय राजनीति में आये तब उनके सम्मुख सबसे बड़ी समस्या थी देश को स्वतंत्र करने की। अंग्रेजी राज्य की बुराइयों को उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में भली-भाँति देख लिया था। वहाँ पर उन्होंने सत्याग्रह आन्दोलन के द्वारा शासकों पर विजय प्राप्त की थी। अतः यहाँ पर भी उन्होंने उसी का प्रयोग करने का निश्चय किया। परन्तु असहयोग आन्दोलन के दो ही वर्षों के अनुभव से उन्हें पता चल गया कि देश इसके लिए प्रस्तुत नहीं है। उन्हें विश्वास हो गया कि जब तक समाज में जागृति नहीं होती तब तक राजनीतिक चेतना का विकास नहीं हो सकता। अतः उन्होंने राजनीतिक क्रांति के लिए सामाजिक क्रांति को आवश्यक माना। इसी से उन्होंने राजनीतिक आन्दोलन को स्थगित करके सामाजिक संगठन का कार्य आरंभ किया। लेकिन गांधी जी यह समझ चुके थे कि समाज की प्रगति शिक्षा के ऊपर निर्भर है। इसी से उन्होंने सामाजिक संगठन के साथ-साथ शिक्षा-सुधार का भी कार्य हाथ में लिया और स्थान-स्थान पर राष्ट्रीय विद्यालय या विद्यापीठ स्थापित कराए। यद्यपि गांधी जी अंग्रेजी शिक्षा के कट्टर विरोधी थे और अपने 'यंग इंडिया' नामक पत्र में और बाद में 'हरिजन' में तत्कालीन शिक्षा की कटु आलोचना करते रहते थे फिर भी उनके सम्मुख शिक्षा की कोई मौलिक योजना न थी। उनके द्वारा स्थापित विद्यालयों का ढाँचा बहुत कुछ परंपरागत विद्यालयों के समान ही था, केवल शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी के स्थान पर मातृभाषा थी। हाँ, थोड़ा बहुत शारीरिक श्रम भी पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लिया गया था। परन्तु इतने से ही वह देश के लिए आवश्यक शिक्षा प्रणाली नहीं मानी जा सकती थी।

इस अपूर्णता के दो कारण थे। एक तो शिक्षा के विषय में भारतीयों के हाथ में बहुत सीमित अधिकार थे। यद्यपि शिक्षा को हस्तांतरित विषय बना दिया गया था फिर भी वित्त के संबंध में शिक्षा मंत्री सरकार के मुखापेक्षी थे। अतः अपने आप वे कोई योजना चलाने अथवा शिक्षा पद्धति में मौलिक परिवर्तन करने में असमर्थ थे। फलतः गांधी जी ने शिक्षा में आमूल परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं समझी।

दूसरा कारण यह था कि उस समय तक देश में बेकारी नहीं फैली थी। प्रथम महायुद्ध के बाद देश में कुछ नये उद्योग धंधे खुल गये थे और पढ़े-लिखे लोगों को उनमें काम मिल जाता था। अतः शिक्षितों की बेकारी की समस्या उस भीषण रूप में सामने नहीं आई थी जिस रूप में १९३० के बाद आई, जिससे शिक्षा प्रणाली को आमूल परिवर्तन करने की आवश्यकता हो।

111485 गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९२९–३० की संसारव्यापी मंदी के बाद देश में शिक्षितों की बेकारी ऐसे भयंकर रूप में बढ़ी कि देश के नेताओं को ही नहीं, वरन् विदेशी शासकों को भी उपाय सोचने के लिए बाध्य होना पड़ा और शिक्षा में कुछ मौलिक परिवर्तन आवश्यक जान पड़े। एक ओर तो सरकार ने सप्रू कमेटी जैसी समितियाँ नियुक्त करके बेकारी के कारणों को जानने और उन्हें दूर करने का उपाय करने की ओर ध्यान दिया, दूसरी ओर शिक्षा में परिवर्तन करने की चर्चा होने लगी, जिसमें हायर सेकेंडरी तथा त्रिवर्षीय डिग्री कोर्स लागू करने की योजना बनी। उधर सविनय अवज्ञा आन्दोलन बंद हो जाने के बाद गांधी जी का ध्यान फिर शिक्षा की ओर गया। इस समय देश में शिक्षितों की बेकारी प्रमुख समस्या हो गई थी। गांधी जी ने देखा कि इसका मुख्य कारण है शिक्षा में शारीरिक श्रम का अभाव, जिसके बिना युवकों में उसके प्रति रुचि नहीं होती। शारीरिक श्रम का महत्व न जानने के कारण युवक शिक्षा प्राप्त करके 'बाबूगीरी' की नौकरी के लिए भटकते फिरते थे। अतः शिक्षा में ऐसे परिवर्तन की आवश्यकता थी जिससे 'बाबूगीरी' की मनोवृत्ति समाप्त हो।

उसी समय देश के संविधान में परिवर्तन के फलस्वरूप प्रान्तों को स्वराज्य मिला। नवीन संविधान के अनुसार १९३७ में विभिन्न प्रान्तों को गवर्नरों की अधीनता में कार्य करने की स्वतंत्रता प्राप्त हुई। चुनाव में कांग्रेस का अधिकांश प्रान्तों में बहुमत हुआ और कुछ संघर्ष के उपरान्त आठ प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रिमंडल बने। इन मंत्रिमंडलों के सम्मुख शिक्षा की समस्या तथा बेकारी को दूर करने की समस्या भी आई। अतः उन्होंने गांधीजी की ओर देखा। अब गांधी जी को अपनी कोई मौलिक योजना उपस्थित करने की आवश्यकता जान पड़ी। इसी के फलस्वरूप 'वर्धा योजना' का जन्म हुआ, जो बाद में 'बेसिक शिक्षा' के नाम से विख्यात हुई।

गांधी जी न तो दार्शनिक थे और न शिक्षा शास्त्री। परन्तु वे चिंतक अवश्य थे। उन्होंने देश की मौलिक आवश्यकता को ठीक-ठीक समझा था। इसलिए उन्होंने जो योजना प्रस्तुत की, वह देश की आवश्यकता को देखते हुए सबसे उपयोगी शिक्षा-योजना थी। यद्यपि गांधी जी अमेरिकी शिक्षा-शास्त्री ड्यूई की उपयोगितावादी शिक्षा पद्धति से परिचित नहीं थे फिर भी उनकी बेसिक शिक्षा के सिद्धांत ड्यूई के सिद्धांतों से बहुत कुछ मेल खाते हैं। वास्तव में देखा जाए तो जहाँ ड्यूई का शिक्षा सिद्धान्त समाप्त होता है वहीं से बेसिक शिक्षा आरंभ होती है।

आरंभ में गांधी जी ने बेसिक शिक्षा के संबंध में अपने जो विचार व्यक्त किये, उसमें निम्नलिखित पांच सिद्धांत निर्धारित किये गये थे :

(१) प्रारंभिक शिक्षा का स्तर वर्तमान मैट्रिकुलेशन अथवा हाई स्कूल के समकक्ष होना चाहिए। परन्तु उसमें अंग्रेजी के स्थान पर एक शिल्प या हस्तकला का समावेश होना चाहिए। यह शिक्षा सात से चौदह वर्ष अथवा उससे भी अधिक आयु के युवकों के लिए अनिवार्य होनी चाहिए।

(२) शिल्प का चुनाव क्षेत्रीय जनता के प्रमुख धंधों में से करना चाहिए।

(३) संपूर्ण शिक्षा उक्त शिल्प से संबद्ध होनी चाहिए।

(४) इस प्रकार की शिक्षा उत्पादक तथा स्वावलंबी होनी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए।

उपर्युक्त सिद्धान्तों में से चौथे सिद्धान्त पर वर्धा-शिक्षा-समिति में बड़ा मतभेद रहा। गांधी जी शिक्षा को स्वावलंबी बनाना चाहते थे और इस देश के शिक्षा-शास्त्रियों को यह विचार काल्पनिक जान पड़ता था। इसे व्यावहारिक रूप देना उनकी दृष्टि में असंभव था। अतः इस संबंध में चारों ओर से विरोध होने लगे। परन्तु गांधी जी का निश्चय दृढ़ था। उन्होंने ३१ जुलाई १९३७ को 'हरिजन' में लिखा :

"मुझे अपनी प्रसिद्धि और यश खोने का भय होते हुए भी यह साहसपूर्ण कदम उठाने में तनिक भी संकोच नहीं होता कि शिक्षा स्वावलंबी होनी चाहिए। शिक्षा से मेरा तात्पर्य है बालक में जो कुछ भी उत्कृष्ट है उसका सर्वतोमुखी विकास करना अर्थात् उसकी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति करना।

अतः मैं बच्चे की शिक्षा किसी उपयोगी शिल्प से आरंभ करना पसंद करता हूँ जिससे कि शिक्षा आरंभ होते ही वह कुछ न कुछ अर्जन करने लगे।"

गांधी जी के उपर्युक्त दृढ़ निश्चय ने लोगों को बेचैन कर दिया और वे उनसे स्वावलंबन वाली शर्त हटाने के लिए आग्रह करने लगे। अन्ततः गांधी जी ने मान लिया और स्वावलंबन वाली बात छोड़ दी गई। परन्तु गांधी जी अपने जीवन के अंत तक यह विश्वास करते थे कि प्रारंभिक शिक्षा स्वावलंबी हो सकती है।

गांधी जी ने इस संबंध में लिखा था कि "प्रथम वर्ष के पश्चात् बच्चे के श्रम का उत्पादन एक आना प्रति घंटा के मूल्य का हो जाना चाहिए।" यह अनुमान काल्पनिक या अव्यावहारिक नहीं कहा जा सकता। यदि इसके आधार पर हम शिक्षा के आय-व्यय का लेखा प्रस्तुत कर तो १८० छात्रों के एक विद्यालय के लिए २५ रु० मासिक वेतन (तत्कालीन प्रारंभिक शिक्षक का वेतन) की दर से सात अध्यापकों का वेतन १७५ रु० हुआ। यदि १२५ रु० अन्य व्यय मान लिया जाय तो ४०० रु० एक विद्यालय का कुल व्यय हुआ। अब यदि प्रत्येक छात्र केवल दो घंटे तक कार्य करे और प्रथम वर्ग के छात्रों को छोड़ दिया जाए तो १५० छात्रों का ५० घंटे प्रति मास (महीने में २५ दिन कार्य के लिए मान कर) की दर से मासिक उत्पादन होगा १५० × २ × ५० आना अर्थात् ९३७ रु० ८ आना। यदि इसकी आधी भी आय हो जाती है तो विद्यालय का पूरा व्यय निकल आता है। परन्तु लोगों के मन में एक काल्पनिक भय व्याप्त था कि शिक्षा के साथ-साथ बच्चों से उत्पादक कार्य कराने का अर्थ होगा बच्चों का आर्थिक शोषण। वस्तुतः देश की तत्कालीन परिस्थिति में, जब कि चारों ओर बेकारी फैली हुई थी और शिक्षा युवकों को नौकरी के अतिरिक्त किसी काम का नहीं बनाती थी, गांधी जी की स्वावलंबन वाली योजना कार्यान्वित करके देखने योग्य थी। परन्तु हमारे शिक्षा शास्त्रियों ने उसे प्रयोज्य भी नहीं समझा और बेसिक शिक्षा के सिद्धान्तों में से उसे निकाल दिया।

बेसिक शिक्षा का स्वावलंबी पक्ष जितना विवादास्पद रहा है उतना अन्य कोई पक्ष नहीं। परन्तु इस संबंध में गांधी जी की संपूर्ण विचारधारा को लोगों ने समझने का प्रयास ही नहीं किया। गांधीजी का विचार था कि उच्च शिक्षा अर्थात् विश्वविद्यालयी शिक्षा का संपूर्ण भार जनता के ऊपर रहे और प्राविधिक शिक्षा का भार वहन करें उद्योगपति तथा व्यवसायी वर्ग। केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारंभिक शिक्षा का बोझ सरकार के ऊपर रहे। इसका अर्थ यह है कि सरकार प्रारंभिक विद्यालयों का संपूर्ण उत्पादन क्रय कर ले। उसमें उसे घाटा भी उठाना पड़े तो वह उसे सह ले। इस प्रकार स्वावलंबन का अर्थ छात्रों से बलपूर्वक कार्य कराकर उनसे धनार्जन करना नहीं है, वरन् एक उपयोगी शिल्प सिखाते हुए जो कुछ भी उपयोगी वस्तु तैयार हो उसे बेचकर शिक्षा के व्यय में कुछ योगदान करना है। शिक्षा का संपूर्ण व्यय बच्चों के श्रम से न निकाल कर केवल एक लक्ष्य सामने रखना है। उस लक्ष्य की पूर्ति न भी हो तो भी प्रयास करते रहने में क्या बुराई है ?

गांधी जी शिक्षा को केवल मानसिक व्यायाम या ज्ञानार्जन का साधन मात्र नहीं मानते थे। वे इसके द्वारा बच्चे को उपयोगी मानव बनाना चाहते थे। समाज के लिए उपयोगी मानव के जितने गुण होने चाहिए उन सबका विकास शिक्षा के द्वारा होना चाहिए। इसी से गांधी जी बच्चे के मानसिक विकास के साथ-साथ उसका शारीरिक विकास भी चाहते थे। शारीरिक विकास के लिए केवल खेल-कूद ही पर्याप्त नहीं है वरन् कुछ उपयोगी शारीरिक कार्य भी करना आवश्यक है। अतः पढ़ाई के साथ-साथ कोई-न-कोई उपयोगी हाथ का काम अवश्य होना चाहिए। यही गांधी जी का तर्क था।

शारीरिक श्रम का कार्य करने से केवल शारीरिक विकास ही नहीं होता, वरन् श्रम का महत्व भी ज्ञात होता है। इससे श्रम करने का वास्तविक आनंद और श्रमिक के प्रति सहानुभूति प्राप्त होती है। व्यर्थ की उच्चता की भावना से मन में जो अहंकार रहता है वह दूर हो जाता है। इस प्रकार की शिक्षा से ही विनय की प्राप्ति हो सकती है। ऐसी ही शिक्षा समता का भाव उत्पन्न करती है जो जनतांत्रिक समाज के लिए परम आवश्यक है। गांधी जी स्वयं छोटे-से-छोटा काम करने में संकोच नहीं करते थे। वे भंगी का काम भी कर लेते थे। अतः वे कहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति को शारीरिक श्रम का कार्य करना और श्रम का महत्व जानना आवश्यक है। इसके लिए मानसिक शिक्षा के साथ-साथ शारीरिक कार्य अनिवार्य होना चाहिए।

शारीरिक श्रम के अतिरिक्त गांधी जी शिक्षा में नैतिकता एवं चरित्र-निर्माण को बहुत महत्व देते थे। इसी से उन्होंने सत्य और अहिंसा को भी शिक्षा का अनिवार्य अंग माना है। विद्यार्थी यदि अपने में इन दोनों गुणों का समावेश नहीं करता तो उसकी शिक्षा निरर्थक है। उन्होंने स्वयं अपनी छात्रावस्था में सत्य का निर्वाह बड़ी कठोरता से किया था जिसके उदाहरण उनकी आत्म-कथा में मिलते हैं। अतः वे बेसिक शिक्षा में इन दोनों गुणों का समावेश करना आवश्यक मानते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि जो सत्य का आचरण करता है वह आस्तिक होता है और आस्तिकता के साथ-साथ मनुष्य में प्रेम, दया, सहानुभूति, कष्टसहिष्णुता, उदारता आदि अनेक गुण अपने आप आ जाते हैं। सत्यवादी का अहिंसक होना अनिवार्य है। अतः केवल सत्य का आचरण करने से मानवोचित सभी गुण स्वतः आ जाते हैं।

बेसिक शिक्षा गांधी जी के शिक्षा दर्शन का व्यावहारिक रूप थी। परन्तु लोगों ने उसके सैद्धांतिक पक्ष पर ध्यान नहीं दिया और व्यवहार में उसे विकृत कर दिया। लोग समझते थे कि गांधी जी बेसिक शिक्षा के द्वारा देश में फैली हुई बेकारी दूर करना चाहते हैं। वे यह भी सोचते थे कि चर्खा, तकली या कृषि-कर्म मनुष्य के आदिकालीन धंधे हैं जो वर्तमान काल की वैज्ञानिक प्रगति के सामने अनावश्यक हैं। इनका अवलंबन करना प्रतिगामी बनने के तुल्य है। परन्तु यह सब भ्रम केवल गांधी जी की बेसिक शिक्षा को मूल रूप में न समझने के कारण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी जी न तो वैज्ञानिक प्रगति के विरोधी थे न यंत्रों के व्यवहार के। वे केवल यही कहते थे कि यंत्र मनुष्य के सहायक होने चाहिए। वे उसके दास हैं स्वामी नहीं। वर्तमान औद्योगिक प्रणाली में यंत्र मनुष्य के स्वामी बन गये हैं। वे पूँजीपतियों द्वारा गरीबों के शोषण के साधन हैं। यदि यंत्रों से अधिक उत्पादन करके उपभोग्य वस्तुएँ सस्ती की जा सकें और वे प्रत्येक व्यक्ति की पहुँच के भीतर हो सकें तो यंत्रों के व्यवहार में गांधी जी को कोई आपत्ति नहीं थी। चर्खा भी एक प्रकार का यंत्र है। जब तक यंत्र मनुष्य को हाथ का उपयोग करने देता है, उसे बेकार नहीं बना देता, तब तक वह मनुष्य का सहायक है। यदि यंत्रों के प्रयोग से अधिक उत्पादन के फलस्वरूप काम के घंटे घटा दिये जाते हैं और सभी लोगों को काम मिल जाता है तो कोई बेकार नहीं रहता। परन्तु वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था में ऐसा नहीं होता। काम के घंटे ज्यों के त्यों हैं और अधिकांश लोग बेकारी के शिकार हो रहे हैं। अधिक उत्पादन से वस्तुएँ सस्ती न होकर महँगी होती जा रही हैं। पूंजीपति अपना लाभांश बढ़ाते जा रहे हैं। फलतः यंत्र गरीबों को शोषण करन के साधन बन रहे हैं।

खेद है कि बेसिक शिक्षा का महत्व न समझने के कारण उसकी उपेक्षा कर दी गई और उसी के साथ-साथ गांधी जी के शिक्षा सिद्धान्तों को भी भुला दिया गया। आज यदि हम सच्चे हृदय से गांधी जी की जन्म शताब्दी मनाना चाहते हैं तो एक बार फिर से गांधी जी के शैक्षिक विचारों का मनन करने की आवश्यकता है। वर्तमान काल की आर्थिक विषमता, भ्रष्टाचार, विदेशों के ऊपर निर्भरता आदि का यदि उपचार करना है तो गांधी जी की बेसिक शिक्षा पर नये सिरे से विचार करने की आवश्यकता है। बेसिक शिक्षा ही हमारे देश को राष्ट्रीय शिक्षा हो सकती है। इसी के द्वारा हमारी शैक्षिक समस्याएँ हल की जा सकती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रेक्ष इत्याहाऽहिंसायै"

मीमांसारत्नम् सुब्रह्मण्य शास्त्री

प्राध्यापक मीमांसादर्शन, प्राच्यविद्या एवं धर्मशास्त्रसंकाय, का० हि० वि० वि०

सुविदितमेवैतेषां समेषां विदुषां सुवर्णरजताकरेऽस्मिन् भारतवर्षे धर्मब्रह्मैकजीवातौ तदा तदा परानुग्राहैकप्रयोजनपरिगृहीतशरीरा ईश्वरविभूतयः प्रादुर्भवन्ति, कञ्चित्कालं स्वशेमुषीवैभवप्रकर्षानुसारेण दीनानार्त्तान्प्राणिनोऽमृतावसेकेनाप्याययन्तः समयविशेषे तिरोभवन्ति, ईदृशीनां विभूतीनां परिगणनं मानवमात्रदुष्करमिति सार्वजनीनमेतत्। एतासु विभूतिष्वन्यतमोऽयम्महात्मा करुणैकमूर्तिः स्वजन्मना सौराष्ट्रदेशं परिभूषयति स्म तस्य जीवनचरितमवलम्ब्य बहुभिरनेकधा प्रतिपादितमस्ति नानाभाषासु। अतः अल्पकायेऽस्मिन्निबन्धे तदुपकारविशेषान् कांश्चन समुपवर्णयन्सुरसरस्वत्या तदाराधनं कामये। तेन च "अनुपश्य यथा पूर्वे" इत्यादिवचनमनुसृत्य तस्य स्मरणमत्र विधीयते भारतीयजनताजनार्दनमनस्समाराधनाय।

श्रीमानयं देशभक्तो गान्धीमहोदयः समग्रस्यापि राष्ट्रस्य प्रतीकभूत आसीत्। हिन्दूसंस्कृतिर्मूर्तिमती गान्धीरूपेण भारतभुव्यवातीतरदित्युक्तिर्नात्युक्तिकोटिमाटीकते।

तस्य लोकोत्तरत्वम्

अयं च महाभागः कथयन्नासीत् यत्—**"हिन्दूसंस्कृतिर्न सम्प्रदायानुसारिणी, अपितु सार्वभौमेयम् इति।"** वैदिको धर्मः (हिन्दूधर्मः) न कस्यापि सम्प्रदायस्य समर्थकः, स च केनापि देशेन, कालेन, व्यक्तिविशेषण वा न सम्बद्धः, अत एवायं सार्वभौम इत्युच्यते। यद्यपि हिन्दूनामावश्यमेव देशविशेषं निदर्शति। स च वैदेशिकैस्तदनुसारिभिरस्मदीयैश्च हिन्दूनाम्ना प्रख्यापितोऽस्ति। परन्त्वयं देशो विश्वमात्मनो न पृथक्करोति। एवं मानवसमाजमपि न कदापि पृथक्करोतीत्ययं महानुभावोऽभिमनुते स्म। अत एव साम्प्रदायिकोऽहङ्कारो लेशमात्रमपि तं नास्पार्षीत्। स वदन्नासीत्—"हिन्दू साम्प्रदायिको नास्ति" इति। तस्य हृदये सर्वेषां कृते समुज्वलं प्रेमासीत् यद्देशस्य वा तद्देशवासिनां कृतेऽभूत्।

हिन्दूधर्मस्य मर्मज्ञोऽयं महात्माऽऽनुवंशिकं संस्कारममन्यत। यद्ययं स्वतन्त्रे भारते जन्म गृह्णीयादार्त्तानां मानवानां समुद्धाराय तस्य जीवनं लगेत्, परन्तु सः वैदेशिकशासनकुचक्रश्रृङ्खलानिगडिते पराधीने भारते जन्म लेभे।

अतस्तस्य हृदये जन्मभूमेः स्वतन्त्रताकरणाय समुद्यमाङ्कुरः प्रादुरभूत्। सच प्रत्यहमुपचीयमानः फलरूपेण परिणामितुमनुकूलं समयं प्रतीक्षमाण आसीत्। दक्षिण अफ्रिकामध्ये असहायानामत्यन्तपराधीनानामुन्मोचनाय प्रायतिष्ठ। एवमनेकेषु संघर्षेषु, संलग्नचित्तो बहूनि कार्याण्यकार्षीत्, यदृष्ट्वा सर्वेप्याश्चर्यचकिता अभूवन्।

अहिंसावादः

एवं तस्य महानुभावस्य जीवनसंग्रामेष्वहिंसात्मकसंग्रामः प्रधानतम आसीत्, ईदृशेषु संघर्षेषु तस्य हृदयं विश्वमित्रमेवासीत्। प्रत्युत केनापि साकं शत्रुभावो नासीत्। भगवान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नन्दनन्दनो गीताचार्यो भक्तस्य लक्षणं वर्णयामास—"अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च" इति। यश्च महात्मा समग्रं विश्वं प्रेमदृष्टया समीक्षते स्म, सः केनापि कारणेन कञ्चिदपि जनुष्मन्तं न द्वेष्टि, प्रत्युत परमया दयार्द्रदृष्टयाऽऽप्याययति। भारतीयपरम्परायां ये महात्मान ऋषयो विद्वांसश्च समजनिषत, तेषु **"मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रेक्षे"** इति श्रुत्यर्थो निगूहित आसीत्, भगवत्यादिकाव्येऽमुमेव श्रुत्यर्थं भरतं भरद्वाजमुखेनाऽऽलापयत्यादिकविः "मैत्रेणेक्षस्व चक्षुषा" अ० का० ९२–७। अयमत्र विशेषः—विश्वप्रेम, मैत्री, करुणा इत्यादयोऽत्यद्भुता गुणा अस्मिन् समवेता आसन्।'

अयं महात्मा स्वकीये जीवने आत्मार्थं किमपि नान्वतिष्ठत्। अयं च महानुभावो भूयो भूयस्स्वीयैर्लेखैर्व्याख्यानैरुपव्याख्यानैश्चेदमेव जनान् प्राबोधयत्—प्रियबान्धवा भ्रातरो भगिन्यश्च मम जीवनस्योद्देश्यं न स्वर्गस्तत्साधनं ज्योतिष्टोमादिः, अथवाऽपवर्गस्तसाधनमात्मज्ञानम्, न वेश्वरप्राप्तिः। **भारतवर्षस्य राजनैतिकस्वाधीनताप्रदापनमेव साधनमार्गो नान्यः कोऽपीति।** समयेऽस्मिन् रन्तिदेवस्य पद्यं स्मृतिपथमारोहति।

"न चाहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।" इति।

अस्माकं प्रातःस्मरणीयनामधेया महामनसो ब्रह्मर्षिकल्पा मालवीयमहोदया अपि उपर्युद्धृतमेव पद्यं स्वीयव्याख्यानेषु यं कञ्चन प्रसङ्गमानीय, श्रावयन्ति स्म। अपि चायं महात्मा सर्वदा कथयन्नासीत्–यत् दयासिन्धुः परमेश्वरः प्रेममयो भवति, तत्प्राप्तेः प्रेममयमार्ग एवोपायो भवितुमर्हतीति। इदं विश्वप्रेम्णो रहस्यं स सर्वदा जानान आसीत्। केनापि कारणेनेदं विश्वप्रेम मलिनयितुमिच्छा तस्य मनसि कदापि नोदभूत्। तस्य राजनीतिः ईश्वरप्राप्तेरेक उपाय आसीत्। यस्यां हिन्दूसंस्कृतौ स जन्म लेभे कैशोर्याद्यवस्थया क्रमेण ववृधे। तेनायं भावः तस्य मनसि समुदभूत्-यद्भारतीयजनतायाः प्रत्येकं मानवजीवनस्य लक्ष्यमीश्वरप्राप्तिः अस्मिन्नेव हिन्दूसंस्कृतिः प्रतिष्ठित इति।

हिन्दूसंस्कृतेरात्मलाभप्रवणता

हिन्दूनां राजनीतिः, धर्मनीतिः, समाजनीतिः, विविधानि दर्शनानि, काव्यानि कलाश्चेत्येते सर्वे मानवान् साक्षात्परम्परया वा आत्मलाभाय प्रेरयन्ति। अत एव भारतीयानामियं पुण्यभूमिस्सर्वैर्देवादिभिर्मुक्तकण्ठं प्रशस्यते। अस्यां पुण्यभूमावुदारचरिताः सर्वभूतहिते रतास्साधवो महात्मानो विद्वांसश्च समयविशेषेऽजनिषत। तेष्वन्यतमोऽयम्महात्मा राजनीतिक्षेत्रे तस्य ईदृशी निष्ठा आसीत्, येनाहिंसया भारतवर्षं स्वतन्त्रं न जायते तर्हि भारतवर्षस्य स्वातन्त्र्यमपि हातुं सन्नद्धोऽभूत्। सा निष्ठा कीदृशीति चेदुच्यते—"१९३७ ईशवीये, एकः प्रश्नोत्तरे ईसाईपत्रकारो गान्धीमहोदयमपृच्छत्। यत्—वैदेशिका गौराङ्गा भवदीयेनाहिंसाशस्त्रेणावनतास्सन्तो भारतवर्षं तव हस्ते समर्प्य, विना कलहं शान्त्या भारतवर्षान्निर्गच्छेयुरिति भवतो विश्वासो विद्यत इति। तं प्रति महात्माऽवोचत्—अथकिं अहन्त्वेवमेव मेने। तदा पुनस्स अपृच्छत्–भवत ईदृशस्य विश्वासस्य किं मूलमिति? उत्तरं झटिति समाददे—ईश्वरः सर्वदा सर्वथा न्यायकारी वर्तत–इत्यत्र मम सुदृढो विश्वासोऽस्ति। तदानीं स महात्मन उत्तरेणाश्चर्यचकितो मुग्धश्च बभूव। उवाच च वयमीसाई पदवाच्याः स्मः। परन्तु परमार्थिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईसाई भवानेव। **श्रीमत एतां शब्दावलिं स्थूलैरक्षरैर्मुद्रापयिष्यामीति। महात्मा उवाच-- अवश्यं त्वया मुद्रापणीयम्। ईश्वरो न्यायकारी पक्षपातरहितः जगत्कल्याणकारी वर्तते, अन्यथा हिंसको भगवान् भवेदिति।** अनेनैव प्रकारेण महात्मन ईश्वरनिष्ठा फलेग्रहिर्बभूव। १५-८-१९४७ तारिकायां सत्यमेव भारवर्षं समर्प्य शान्त्या साकं भारतवर्षान्निर्जग्मुः। विश्वस्येतिहासे प्रथमा घटनेत्यत्र नास्ति सन्देहः। आलोचयन्तु भवन्तः, यत् कोऽपि देशोऽहिंसाशस्त्रेण वैदेशिक-शासनसाम्राज्यमुत्थाप्य, स्वाराज्यं स्थापितमासीत्। महात्मनो गान्धिमहाभागस्यालौकिक-कार्येण परवशा भूत्वा तमनुजग्मुस्सर्वे भारतीया इति।

ईश्वरवादः

अस्येदमेव रहस्यम्-सत्यस्योपरि प्रतिष्ठिता राजनीतिः, अहिंसाया उपरि प्रतिष्ठिता राजनीतिश्च महात्मनः सर्वस्वं ब्रह्मास्त्रमासीत्। अर्थात् ईश्वरनिष्ठान्तर्निहिता आसीत्। ईश्वरनिष्ठारहितं सत्यम्, ईश्वरनिष्ठारहिता चाहिंसा न किमप्यैहिकिमामुष्मिकं वा फलं प्रसवितुमीष्ट इति महात्मा मन्यते स्म। ईश्वरस्यानेकानि नामानि, अनेकानि च रूपाणि सन्ति, यानि शास्त्रेषूपवर्णितानि सन्ति। तेषु सत्यस्य नाम्ना ईश्वरं स साक्षाच्चकार। श्रीमानयं महात्मा सत्यचिन्तन-सत्याचरण-सत्यभाषणेषु परमार्थसत्यमीश्वरतत्त्वं समीक्ष-माण आसीत्। तस्मादेव तस्याहिंसाव्रतम्, ब्रह्मचर्यव्रतञ्च समुदभूताम्। हिन्दूसंस्कृतेः सम्प्रतिष्ठा यथेश्वरनिष्ठा वर्तते, तथान्या प्रतिष्ठाधर्मो भवति। तत्रायं विशेषः। ईश्वर-प्राप्तिस्साध्यम्, धर्मस्तु साधनमिति। अनयोर्मध्ये वर्तमानाः सर्वेऽपि मानवाः स्वकीयजीवनस्य लक्ष्यमर्थकामावपि साधनं मन्यन्ते। वैदिकार्यसंस्कृतेश्चतुर्विध पुरुषार्थविषयकान् संस्कारान् स्वकीये जीवनेऽवतारयामास।

वर्णाश्रमव्यवस्था

वर्णाश्रमव्यवस्थासु तस्य महती निष्ठाऽऽसीत्। तत्र चेदं कारणं वरीवर्ति जटिलाया जीविकासमस्याया निर्णयोऽन्तर्निहितो वर्तते। यथा ब्राह्मणानामध्ययनाध्यापनाभ्यां ज्ञानप्रकाश-दानम्। तेनैव जीविकानिर्वाहोऽपि।

एषां लोकानामसम्भेदाय न तदर्थं पृथक् प्रयासोऽपेक्षितः। एवं क्षत्रियाणामसम्भेदेन मर्यादाया रक्षणम्। वैश्यानां धनधान्यगोरक्षावाणिज्यादिनां समाजस्य पालनपोषणम्। तेन समाजसंरक्षणमेतेष्वायतते स्म। चतुर्थवर्णस्य समाजसेवा परमो धर्म इति। तेनैव तेषां जीविका निर्वाहोऽपि। एवमुन्मार्गप्रवृत्तिनिरोधपूर्वकं व्यहार-परमार्थयोस्समन्वये समाज-संरक्षणार्थमेव वर्णाश्रमव्यवस्था सर्वज्ञकल्पैर्महर्षिभिर्वेदेषु संक्षेपेणोपवर्णिता, उपबृंहिता च। तेन साम्प्रतं दृश्यमान एकस्य स्थानस्य कृते बहूनामावदेनपत्रम्, ततः साक्षात्कारः (इण्टरव्यू) समित्या बहुजनेसंमत्या तत्रापि घुणाक्षरन्यायेन यस्य कस्यापि निर्वाचनम्, तेन च बहवो दरिद्रति। जीविकासमस्यात्वत्यन्तजटिला, प्रत्यहमुपचीयमाना समाजस्य पुरतो जागर्ति। ईदृशं रहस्यं ज्ञात्वैव महर्षिभिः समाजसंरक्षणाय, देशसंरक्षणाय वर्णाश्रमव्यवस्था सर्वैरेककण्ठेन समर्थिता। विप्रतिपन्नेषु विषयेषु युगादिभेदेन वृत्तिपुरस्सरं व्यवस्था कृता दरीदृश्यते।

यथा पराशरमाधवीये—

"स्मृत्यन्तरानुसारेण विषयस्य व्यवस्थितिः।
कल्पनीयेति चेद्ब्रूहि सर्वज्ञं मन्यसे कथम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वेन दृष्टास्तु यावत्यस्तासामित्ययुक्तिमत् ।
क्वचित्कदाचिदन्यासां दर्शनादव्यवस्थितेः ॥
अत एव निबन्धेषु दृश्यते नैकवाक्यता ।
सर्वथापि त्वया प्रोक्तां निर्मूलां बुद्धिकल्पिताम् ॥
कामाकामादिभेदेन नाङ्गीकुर्मो व्यवस्थितिम् ।
स्मृतिर्व्याख्यातृभिस्सर्वैर्वचनानां व्यवस्थितिम् ॥
ब्रुवाणैर्मन्दमतयो व्युत्पाद्यन्ते हि केवलम् ॥"

इदञ्च तत्त्वं वैदेशिकेषु समालोचकेषु विद्वत्सु दूरदर्शिनौ स्मितमहोदयः, तथा प्रो० कीत महोदयश्च जानीयाते स्म । अन्ये त्वनास्थयेदं रहस्यमजानाना वर्णाश्रमव्यवस्थामुपेक्षाञ्चक्रिरे । अयं च विषयो गान्धीमहोदयेन कदाचित्प्रकाशितः ।

१—अहमात्मानं वैदिकधर्मानुयायिनं मन्ये ।

२—अहं वेदाः, उपनिषदः, पुराणानि, इतिहासश्चेतान्, धर्मग्रन्थान् प्रमाणत्वेन स्वीकरोमि ।

३—अहं वर्णाश्रमधर्ममङ्गीकरोमि ।

४—मूर्तिपूजाविषयेऽपि मम विश्वासोऽस्तीति । अयं च विषयो "यङ्गइण्डिया" नामके पत्रे २९-९-१९२० दिवसे प्रकाशितोऽस्ति ।

अतो महात्मायं धर्मवादी, ईश्वरवादी, हिन्दूसंस्कारविधेः परम्परावादी चासीत् ।

यन्त्रनिर्माणविषये तदाशयवर्णनम्

महाशयोऽयं महायन्त्रनिर्माणशालानां स्थितिं नानुमेने । अत एव हस्तेनैव तन्तून्निर्माय तैरेव स्वदेशनिर्मितानां वस्त्राणां प्रथां प्राचीचलत् । तस्यायमाशय आसीत्—एकैकोऽपि भारतीयो नरो वसनाच्छादनयोः परानपेक्षं कुर्यादिति । तस्यायं निश्चयः हिन्दूसंस्कृतेरनुकूल आसीत् । राष्ट्रस्यार्थिकव्यवस्थायां महायन्त्रणामुपयोगस्तावत्पर्यन्तमपेक्षितः, यावत्पर्यन्तं सर्वराष्ट्राणां युद्धसामग्रीनिर्माणार्थमेव । गृहसम्बन्धिन्यामार्थिकव्यवस्थायां महायन्त्राणामुपभोगं निषेधति स्म । एवं राज्यव्यवस्थाया नियमन (कंट्रोल) द्वाराऽन्नवस्त्रादिव्यवस्थानिषेधस्य सर्वथा सार्थक आसीत् ।

अग्रणीनां विषये तस्य विचारः

अयं महाभागो भारवर्षस्य राजनीतिक्षेत्रे कार्यकर्तॄणां नेतॄणां वैदेशिकवेषमवर्यं देशीयवस्त्राणि (खद्दर) परिधापयामास । अयं च महान् संस्कार आसीद्वैदेशिकवेषभूषाद्यलंकृतानां नेतॄणां स्वराष्ट्राभिमानवर्द्धनाय । अनेन वेषेण एतेषु प्राचीनभारतीयाचारविचारे एवनुरागो भवत्विति । यस्मिन्मूलतत्त्वरूपेणेश्वरनिष्ठा, स्वधर्मनिष्ठा च निहिते आस्ताम् ।

वैदेशिकानां दासतापादकं शासनं न तादृशमरुन्तुदमासीत्तस्य । यथा वैदेशिकानां सभ्यता, संस्कृतिश्च, यादृशदुःखदमासीत् । बहुषु देशीयवस्त्रधारिषु इयं वैदेशिकी सभ्यता नैकत्र तिरोहिता ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स तु मनसि कदाचिदेवं व्यचिन्तयत्—यत् भारतवर्षमिदं वैदेशिकशिक्षादीक्षया शिक्षितं धर्मभ्रष्टं प्रत्यहं बोभवीति, सत्यमिदं वयं सर्वे ईश्वराद्विमुखाः प्रत्यहं भवाम इति वैदेशिकशिक्षा, दीक्षा, सभ्यता, संस्कृतिश्च आसुरी, राक्षसीति वा निश्चयस्तस्यासीत् ।

ईश्वरप्रार्थना

श्रीमानयं गान्धीमहोदयः सर्वदा सर्वकार्येष्वीश्वरं प्रार्थयते स्म । स तु मेने—सर्वोऽपि भारतदेश ईश्वरभक्त ईश्वरसम्मुखो भवात्विति । अत एव तस्य कोऽपि प्रयत्नः आन्दोलन-मनशनं वा ईश्वरप्रार्थनारूपेण बलेनैव सर्वमपि साधु सम्पादयति स्म । तेन कोऽपि वादः विपत्तिः भौतिकबलं वा तस्योपरि न कंचन प्रभावमाधत्ते स्म । अत एवायं महानुभावः गायति स्म—

"निर्बल के बल राम"

भगवन्नामस्वनेकेषु सत्स्वपि रामनाम्नि तस्य महानादर आसीत् ।

रघुपतिराघव राजाराम ।
पतितपावन सीताराम ।।

इति तु समग्रेऽपि भारते सर्वैर्मानवैर्गीयतेऽद्यापि । स च मुसलमानाननुकूलयितुं हिन्दूनां यवनानाञ्चैक्यमुद्घोषयामास ।

"राम रहीम सभी उसी अल्ला के नाम हैं । किसी भी नाम से कोई उनका स्मरण करे ।" अस्याभिप्रायस्तु तेषमानुकूल्यसम्पादनायेति प्रतीयते । अनेन प्रकारेण हिन्दूसंस्कृतेर्जागरणाय महानुद्योगः कृतस्तेन । सर्वेषु ग्रन्थेषु तस्य महान् समादर आसीत् । भगवन्नामसु "रामनाम" तस्येष्टतममासीत् । भक्तिग्रन्थेषु "श्री रामचरितमानसञ्च" ।

रामनाममहिमविषये तस्य मतम्

"नवजीवन" नामके पत्रेऽयं लिखति स्म यत्—

१—रामनाम्नः प्रभावेण पाषाणाः समुद्रे प्लवन्ते स्म ।

२—रामनाम्नो बलेन वानरसैन्यं 'रावण' कुलं व्यनीनशत् ।

३—मारुतात्मजः रामनाम्नो महिम्ना पर्वतमुत्थापयामास ।

४—भरतः चतुर्दश वर्षाणि यावत् जीवति स्म रामनामरसायनपानेन ।

५—जगज्जननी जानकी रामनामप्रभावेण सतीत्वं ररक्ष ।

६—भक्तशिरोमणिर्गोस्वामी तुलसीदासः कथयति—भो जनाः ? कलिकालसम्भवं दुरितं प्रक्षालयितुं रामनाम यूयं जपध्वमिति ।

७—ममाप्यनुभवमहं श्रावयामि ममोपरि यदा यदा विपत्तयः आपतन्ति स्म, तदाऽहं रामनामाऽजपम् । तेनाहं रक्षितोऽनेकेभ्यः संकटेभ्य इति ।

अवसानेपि हे राम ! इति कथयित्वा स्वकीमजीवनयात्रां स समापयति स्म । अहो धन्योऽयम्महात्मा, यत्रकाले ऋषीणां मुनीनामप्यअनाद्यविद्यावासनावैचित्र्यवशात् भगवन्नाम न स्फुरति, अर्थात् विषयप्रवाहेषु पतिता भवन्ति ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीताविषये तस्य मतम्

श्रीमानयम्महात्मा कदाचित् वाराणसीमाजगाम। यदाऽस्माकं ब्रह्मर्षयः, महामनोः, आचार्यध्रुवमहोदयश्च, अस्मिन्नेव विश्वविद्यालये विरेजिरे। तदा ध्रुवमहोदयः, एनं निवेदयति स्म—गीताविषये भवता किंचिद् वक्तव्यमिति। तद्वचनमङ्गीकृत्य गीतामधिकृत्य वक्तुमुपचक्रमे—यत् भवादृशां गीतामर्मज्ञानां पुरस्तात् किमहं वक्तुं शक्नुयामिति, किन्तु भगवत्या गीताजनन्या मादृशेष्वल्पप्रज्ञेषु कीदृशप्रभावः समुद्भावितः इत्यतेदर्थमहं किंचिद् वदामि। ईसाईजातीयानां कृते बाइबल नामको ग्रन्थो वर्वर्ति, मुसलमानानां कृते "कुरान" वर्तते, हिन्दूनां कृते किं वेदान् निर्दिशामि, अथवा स्मृतिः, पुराणानि वा। बाल्यावस्थायामर्थात् विंशे वयसि ममात्युकटेच्छा समजनि यत् किञ्चिदात्मज्ञानं सम्पादयामीति। मया श्रुतं वेदानामभ्यासाय द्वादाश वर्षाण्यपेक्ष्यन्ते, अत वेदाध्ययने नाहमुद्युक्तोऽभवम्। मम तु प्रतिभाति स्म तथा यत्र कुत्रापि मया पठितम्—सर्वशास्त्रणां सारभूतेयं "गीता" कामधेनुस्सप्तशत्या श्लोकैर्ग्रथितेति। मम संस्कृतभाषायां कियान् प्रवेश आसीत्। मयाऽऽलोचितं यत् गीताध्ययनमेव सुकरं सुलभञ्चेति श्रद्धया प्रणिहितेन मनसा भगवद्गीतामर्थावगमपूर्वकमधीतवान्, महता **कालेन—इयं भगवद्-गीता मम जननी संवृत्ता इति।** अत महात्मनः सर्वकार्यसाधनाय गीताया अध्ययनमर्थचिन्तनञ्च प्रबलतमं साधनमासीत्।

स्वाराज्यविषये महात्मनो विचारः

अयं महात्मा गान्धीमहाशयः, स्वकीयजीवने यत् कर्मजातं करोति स्म, तादृशं कर्म कोऽपि कर्तुं न प्रभवति, न वा केनचित् कृतम्, करिष्यते वा। परन्तु तस्य संकल्पे (मानसे कर्मणि) किंचिदवशिष्टमासीत्—यत् "रामराज्यस्थापनं" नाम। रामराज्यस्थापनेन लोकानानन्दयितुमिच्छति स्म। स्वराज्यं तु भारतीयैर्लब्धम्, परन्तु रामराज्यसंकल्पस्वप्नः तथैवावस्थितः, परन्तु कार्यरूपेण परिणामात् पूर्वमेव कीर्तिशेषतामगच्छत्।

रामराज्यस्य जीर्णोद्धाररूपं युधिष्ठिरस्य धर्मराज्यमित्ययं मेने। श्रीभगवान् नन्दनन्दनः स्वयं युधिष्ठिरं इन्द्रप्रस्थस्य राज्यसिंहासने उपवेश्य, अभिषिच्य च आदर्शभूतं धर्मराज्यं स्थापयामास। परं धर्मराज्यस्य परमपवित्रं स्मरणरूपं चिन्हं राष्ट्रचिन्हेषु साम्प्रतमपि न निवेशमलभत्। तत्र शासकानामौदासीन्यमेवेति चेखिद्यते मनः।

तस्यामेव परम्परायां समायातोऽयम्महात्मा रामराज्यमेव प्राचीनं युधिष्ठिरेण जीर्णोद्धाररूपेण परिष्कृतं तं धर्मराज्यं सम्पादयितुं पुनरियेष। यद्धमर्रराज्यविषये धर्मादीनां नामग्रहणेनैव रोगादिना मुक्तः सुखी सम्पद्यते यथा :—

धर्मो विवर्द्धति युधिष्ठिरकीर्तनेन, पापं विनश्यति वृकोदरकीर्तनेन।
शत्रुर्विनश्यति धनञ्जयकीर्तनेन माद्रीसुतौ कथयतां न भवन्ति रोगाः॥ इति।

येनास्मिन्भारतवर्षेऽधर्मः, पापाचारः, अनीतिरित्याद्यनर्थमूलं देशावनतेः समाजावनतेश्च कारणं सर्वथास्तमियात्। रामराज्यञ्च भगवताऽदिकविना इत्थमुट्टंकितम्।

यथा—

प्रहृष्टमुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः।
निरामयो ह्यशोकश्च दुर्भिक्षभयवर्जितः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न पुत्रमरणं केचित् द्रक्ष्यन्ति पुरुषाः क्वचित् ।
नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रताः ॥
न चाग्निजं भयं किञ्चिन्नाप्सु मज्जन्ति जन्तवः ।
न वाताजं भयं किंचिन्नापि ज्वरकृतं तथा ॥
न चापि क्षुद्भयं तत्र न तस्करभयं तथा ।
नगराणि च राष्ट्राणि धनधान्ययुतानि च ॥ इति ।

तथा—

स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः ।
समुद्रमिव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ॥
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः ।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः ॥
धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः ॥ इति च ।

श्रीगोस्वामिनां राज्यम्

अमुमेवाशयं भक्तकुलचूड़ामणिः, गोस्वामी तुलसीदासमहाभागोऽपि सुललितप्रसन्न-पदगम्भीरैर्वाक्यैर्कवयति स्म—

दैहिक दैविक भौतिक तापा । राम राज्य काहू नहि व्यापा ॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती । चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति ॥
अल्प मृत्यु नहिं कौनहुं पीरा । सब सुन्दर सब निरुज शरीरा ॥
नहि दरिद्र कोई दुखी न दीना । नहिं कोउ अबुध न लक्षणहीना ॥
सब गुणज्ञ सब पंडित ज्ञानी । सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी ॥
सब उदार सब पर उपकारी । विप्रचरण सेवक नर नारी ॥
एक नारिव्रत रत सब झारी । ते मन वच क्रम पति हितकारी ॥
फूलहिं फलहिं सदा तरु कानन । रहहिं एक संग गज पंचानन ॥
लता विपट मांगे मधु च्यवहीं । मन भावते धेनु पय स्त्रवहीं ॥
ससि सम्पन्न सदा रहु धरणी । त्रेताभाई कृतयुग की करनी ॥
सरिता बहसि सदा वरवारी । सीतल अमल स्वादु सुखकारी ॥
तीर तीर देवन के मन्दिर । चहुं दिशि तिनके उपवन सुन्दर ॥

वरणाश्रम निज निज धरम, निरत वेदपथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहि भय सोकन रोग ॥
विधु महि पूर मयूखनि, रवितप जितनेहि काज ॥
मांगे वारिद देहिं जल, रामचन्द्र के राज ॥

विश्वपितुर्महात्मनः काश्चन सूक्तयः

महात्मनो विश्ववन्द्यस्य काश्चन सूक्तय आचार्यनरदेवशास्त्रिणां स्वोपज्ञायामात्मकथायां संगृहीताः । ता अधस्तान्निर्दिश्यंते ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथाहि—

(१) यदा माननीयो महात्मा गान्धिमहाभाग आफ्रिकादेशाद् भारतं प्रत्यागतः तदानीं प्रथमोऽयमुपदेशः—

निर्भीका भवत——(निर्भय वनो)

(२) यदा हरिद्वारं समायातः, तदा कैश्चिद् ब्रह्मचारिभिर्वार्तालापमकरोत्, यदाऽयम्महात्मा एकैकं ब्रह्मचारिणमप्राक्षीत् यत् 'त्वमध्ययनान्तरं किं कुर्याः' इति सर्वेपि ब्रह्मचारिणः स्वमनसि यत्किंचित्प्रतिभातं तत् महात्मानं व्यजिज्ञपन्। परन्तु रुद्रदत्तकोः ब्रह्मचारी इदमवोचन्महात्मानं इदानीं मह्यं न किञ्चित्प्रतिभाति यन्मया कर्तव्यमिति। इदञ्च प्रतिवचनं श्रुत्वा महात्मा प्रसन्नात्मा ब्रह्मचारिणं प्रशशंस यथार्थमाहेति।

(३) नरदेवशास्त्रिणां महात्मना वार्तालापप्रसङ्गे नरदेवशास्त्री इदं पप्रच्छ महाभागं, भवन्तो वर्तमानराजनीतौ सत्यमहिंसा सत्याग्रहश्चेति एतानानयन्ति। एते तु आध्यात्मिकबलप्राप्तौ, अयञ्च प्रकाशो भवद्भिः कस्मात् प्राप्त इति। विश्वपितात्वाह-अयञ्च प्रकाशः कुलगुरोर्वशिष्ठस्य क्रान्तिकारिणो विश्वमित्रस्य कथानकात् दुपलब्ध इति। येन इदमवगम्यते विश्वामित्रः पराबभूव, तत्रभवान् वशिष्ठो व्यजेष्ट। अन्ततो गत्वा विश्वामित्रो वशिष्ठस्य चरणनलिनयोर्निपित्य तमेव शरणं जगाम। एतयोर्महापुरुषयोर्व्यवहार आसीत्। स च व्यवहारः उभयो राष्ट्रयोर्भवितुं नार्हति? अवश्यं भवितुमर्हतीति। इदञ्च वचनं श्रुत्वा नरदेवशास्त्री महान्तं विस्मयमापेदे।

(४) गोखले महाभागस्तु महाभागं प्रति इदं वचनमाह—महात्मागान्धीसदृशः वीराग्रणी मृत्तिकातः प्रादुर्भावितुमर्हतीति। यः सत्यमहिंसा सत्याग्रहश्चेति सिद्धान्तानादाय राजनीतिक्षेत्रे स्वतन्त्रताप्राप्तिं कर्तुं प्रभवतीति। इदमेव भारतवर्षस्य वैशिष्ट्यम्।

(५) गोखले महाभागस्तु महात्मानो प्रति वदतिस्म—यतः महात्मानो गान्धीमहाभागस्य सम्मुखे कोऽपि अनृतभाषणं कर्तुं न प्रभवतीति।

(६) अहिंसा शब्दस्यायमर्थः—यत् अत्यधिकप्रेमातिशयः, अहिंसापरमो धर्म इति हि शास्त्रं तद्रलेनैव मानवजातेः संरक्षणं भवितुमर्हतीति।

(७) अहिंसा, सत्यञ्चेति एकमेव वस्तु निर्वहते विचारात्, यत एकस्य चिन्तनेनात्परस्य हृदये विपरिवृत्तिर्जायते।

अमूल्यानि समाजस्योन्नतिकारकाणि सप्त उपदेशवचांसि—

Seven Social Sins

1. Politics without Principles.
2. Wealth without work.
3. Commerce without morality.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4. Education without character.
5. Pleasure without character
6. Science without humanity.
7. Worship without sacrifice.

तस्यैवानुवादभूतानीमानि वचांसि--

१—उद्देश्यशून्यं राज्यशासनम्

२—परिश्रममन्तरेण लब्धमैश्वर्यम्

३—शुद्धिवर्जितं वाणिज्यम्

४—मनोविरोधेनावासो भोगः

५—गुणादिरहिता विद्या

६—मनुष्यत्वानापादकं विज्ञानम्

७—त्यागादिवर्जित आचारः --इत्यादीनि

गान्धीसूत्राणि

श्रीमता डी० एस०, शर्ममहोदयेन गान्धीसूत्रशीर्षकं एकं पुस्तकं प्रणीतमस्त्यस्यामेव शताब्दयाम्। स च महाभागः स्वयं कथयति-यत् प्रातःस्मरणीयचरितानामस्मत्प्राचार्याणां महामहोपाध्यायकुप्पुस्वामिशास्त्रिचरणप्रभृतीनां महाविदुषां साहाय्येन ग्रन्थमिमं प्राणैषमिति। अत्र अष्टोत्तर शतं (१०८) सूत्राणि सन्ति। तानि च सूत्राणि अध्यायत्रये विभक्तानि। एतैस्सूत्रैः गान्धीमहाभागस्य जीवने प्रतिफलिता देशस्योन्नतिकारकाः सिद्धान्ता उपन्यस्तास्सन्ति। तत्र तत्र कानिचित् सूत्राण्यधस्तात् उट्टक्यन्ते यथा--

१--सर्वदा सर्वभावेन सत्यमेव भजनीयम् (१-६)

२--प्रेमैव परं रूपमहिंसायाः (१-२१)

३--उद्वाहोऽपि प्रजायै न तु कामोपभोगाय (१-३८)

४--ग्रामाभ्युदयादेव देशाभ्युदयः। (१-४६)

५--अजातशत्रुस्सत्याग्रही इत्यादि

कश्चित् पाश्चात्यशिक्षादीक्षितः एतत्सूत्रविषये एवं कथयति-यत् गान्धीदर्शनस्य पर्यालोचनायोपरि समुद्धृतोः गान्धीसूत्रनामको ग्रन्थो महत उपकाराय कल्पयेत इति—

Among expositions of Gandhian Philosophy. D. S. Sharma's "Gandhi Sutra" should be mentioned for the striking time—honoured from of sutras employed by the author, the aphorisms here are glossed by citations in English of passages on Gandhiji's own writings and speeches.

—Modern Sanskrit Literature
(Page 232)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपसंहारः

अयम्महात्मा सर्वेषां चित्तं गृहीतव्यमित्ययमारम्भ इति मौलिकं सिद्धान्तं मनसि निधाय सर्वेषां जनानां आनुकूल्यसम्पादनाय च तदा तदा कर्मणा वचसा वर्णाश्रमव्यवस्थाविरोधीनि वचांसि, कर्माणि च अकरोत्। परं तस्य प्राचीनमर्यादाभङ्गकरणे तात्पर्यं न, अपितु सर्वान् एकीकृत्य येन केनचित् प्रकारेण वैदेशिकशासनसूत्रात् भारतवर्षस्योन्मोचनं परं लक्ष्यमासीत्। अतो न केनापि विरोध आशंकनीयः, विषयेस्मिन् विमर्शकपदवीमारूढैरनेकैर्विमर्शकवरैस्स। धकबाधकोपन्यासपूर्वकं विरोधाः पर्यहारिषत्, **"येऽस्मदपचेतसः तानस्मभ्यमिहाकुरु"** इति शम्।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी जी की आर्थिक नीति—एक दृष्टिकोण

डॉ० अयोध्यासिंह एवं डॉ० इन्द्रदेव गुप्त

अर्थशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

निरन्तर बढ़ती हुई बेरोजगारी भारत के आर्थिक नियोजन की सबसे बड़ी असफलता है। प्रत्येक पंचवर्षीय योजनाओं में रोजगार देने के कुछ लक्ष्यों को लेकर हम चलते हैं और योजना काल के अन्त में उससे भी बड़ी बेरोजगारी को पाते हैं। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में भी यह इंगित किया जा रहा है कि सभी दिशाओं में हमारे प्रयत्नों का प्रयास अधिकतम रोजगार के क्षितिजों में तीव्र प्रगति एवं सामाजिक न्याय की स्थापना का होगा। तीव्रगामी जनसंख्या प्रगति हमारे विकास की सबसे बड़ी बाधा है ऐसा आज के नियोजक एवं अर्थवेत्ताओं का विचार है। आइए, देखें बापू के दृष्टिकोण इन दुःख-दर्दों का क्या समाधान प्रस्तुत करते हैं।

गांधी जी वस्तुतः भारतीय राष्ट्रीय जागरण के सबसे बड़े नायक थे। १९२० से १९४८ तक भारतीय राजनीति गांधी-युग के नाम से प्रसिद्ध है। वे युग निर्माता एवं प्रेरक थे। वे भारत की राष्ट्रीय आत्मा और संस्कृति के प्राण थे। भारत की प्राचीन और अन्तर्निहित सतत मानव विचारधारा की पृष्ठभूमि पर गांधी जी ने अपने सिद्धान्तों का निर्माण किया। यह कहना गलत नहीं है कि गांधी जी ने कोई नया सिद्धान्त दुनिया को नहीं दिया, बल्कि जो सत्य मानव सिद्धान्त आदिकाल से चले आ रहे थे, उन्हें पुनः स्थापित किया। वे केवल सिद्धान्तवादी नहीं, बल्कि प्रयोगवादी भी थे।

'गांधीवाद' जैसी वस्तु को बापू पसंद नहीं करते थे क्योंकि यह तो व्यापकता को एक संकुचित दायरा दे देता है। इसलिए उनके सिद्धान्तों को गांधीवाद का नाम नहीं दिया जा सकता। उन्होंने अपने सिद्धान्तों की कोई विशद विवेचना नहीं की, जैसा मार्क्स ने किया। गांधी जी और मार्क्स दोनों में काफी समानताएँ थीं। दोनों क्रान्तिकारी थे परन्तु उसका (क्रांतिका) स्वरूप दोनों के लिए भिन्न था। "दोनों के दिलों में मानववंश के करोड़ों भूखे-नंगे, दलित-शोषित, साधनहीन, ज्ञानहीन, मवेशी एवं जंगल के जानवरों की तरह हकालें या मारे जाते हुए बेजुबान लोगों के प्रति गहरी सहानुभूति और चिन्ता थी।...गांधी और मार्क्स दोनों के दिलों में यह तीव्र लालसा थी कि समाज की एक ऐसी व्यवस्था कायम की जाय जिसमें कुदरत और मानव बुद्धि की इन बख्शीशों में हर किसी को बराबर हिस्सा मिले।"[१] परन्तु मार्क्स की कार्यप्रणाली रक्तक्रान्ति की थी जब कि सत्य का आग्रह और अहिंसा बापू की कार्यप्रणाली के प्राण थे।

गांधी जी का प्रेरक मूल तत्व

संसार और जीवन के मूल में क्या है? यही सबसे बड़ा प्रश्न है जिसे हर तत्ववादी को मानकर चलना पड़ता है। पाश्चात्य अर्थव्यवस्था का चरम ध्येय अभी तक जीवन-स्तर में विकास तक ही रह गया है। मनः कुंठाओं का कोई हल अभी तक इनकी बुद्धि के परे

[१] गांधी और साम्यवाद : किशोर लाल मशरुवाला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। जीवन-स्तर तो एक साधन है साध्य नहीं। इसकी अनुभूति ही आवश्यक है। गांधी जी के दृष्टिकोण से वह मूल तत्व चैतन्य रूप है। जो जड़ सृष्टि कहलाती है वह भी चैतन्य के कारण है और उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। संसार की उत्पत्ति चैतन्य से और चैतन्य में है। वही नित्य है। चैतन्य ही त्रिकाल का सत्य है। यह विश्व एक ही चैतन्य सत्ता है। सभी प्राणियों का "मूल तत्व तो वह आत्मा है जिसमें मैं, तू और वह का भेद करने के लिए जगह नहीं।"[१]

गांधीवाद सत्य की साधना का विज्ञान है। सत्य का साक्षात्कार ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। "इस सत्य साधना के लिए व्यवहार जगत में मन, वचन और कर्म में सत्य तथा अहिंसा की प्रतिष्ठा आवश्यक है।"[२] फलतः गांधी जी के आर्थिक विचार भी अहिंसा पर आधारित हुए और शांतिपूर्ण क्रांति की नींव पर उनका समाजवाद आधारित हुआ, जिसका प्रतिरोपण भारत के नये संविधान में किया गया। यही कारण है कि रूस, चीन आदि के विपरीत भारत में क्रांति का स्वरूप कुछ भिन्न ही पाया जाता है।

गांधी जी की अर्थ-नीति

गांधी जी ने अर्थशास्त्र पर कोई अलग से ग्रंथ नहीं लिखा और न ही वे मूलतः अर्थशास्त्री ही थे। परन्तु अर्थशास्त्र तो जीवन का वह सत्य है जिससे संभवतः कोई विरत नहीं हो सका है। इसलिए उनके लेखों, भाषणों एवं स्फुट विचारों के आधार पर उनके आर्थिक विचारों को हम जान सकते हैं। गांधी जी पर रस्किन के विचारों और उसकी पुस्तक 'अन टु दि लास्ट' का बड़ा प्रभाव पड़ा। रस्किन का कहना था कि जीवन ही मुख्य है धन नहीं। गांधी जी का कहना था मनुष्य को द्रव्य अथवा सोना-चाँदी या धन के पीछे दीवाना नहीं होना चाहिए। इनके पीछे उसे अपना जीवन नष्ट नहीं करना चाहिए। इसका कारण है कि धन मनुष्य के लिए है न कि मनुष्य धन के लिए।

गांधी जी की अर्थ-नीति क्रांतिकारी थी। वे वर्तमान पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के पूर्ण विरोधी थे। गरीबों के शोषण को वे किसी भी रूप में मानने को तैयार न थे। 'प्रत्येक व्यक्ति काम करके खाए' यह उनका मूल सिद्धान्त था। उनकी दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति को उत्पादक होना जरूरी है। "भूमि जोतने वालों की है" यही मत वे मानते थे। "सबै भूमि गोपाल की" उनका मंत्र था।

बापू के ग्राम-राज्य की कल्पना में, जिसमें उनके राम-राज्य का स्वप्न निहित था। व्यक्ति के व्यक्तित्व को विशेष महत्व दिया गया है। व्यक्तिगत उत्तरदायित्व को महत्व देकर ही एक ऐसे समाज की स्थापना की जा सकती है जिसमें सभी सुखपूर्वक रह सकें। 'अधिकतम संख्या का अधिकतम हित' को न मानकर वे "सर्वे भवन्तु सुखिनः" का स्वप्न देखते थे। समाज में प्रत्येक व्यक्ति को उसके व्यक्तित्व के विकास के लिए पूरी सुविधा मिलनी ही चाहिए, ऐसा उनका विचार था।

---

[१] गांधी और साम्यवाद।
[२] गांधीवाद की रूपरेखा : रामनाथ सुमन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्थिक समानता

आर्थिक समानता 'सु-राज्य' की असली कुंजी है। आर्थिक समानता के लिए कार्य का अर्थ है पूँजी एवं मजदूरी के झगड़ों को हमेशा के लिए समाप्त कर देना। इसका अर्थ होता है कि एक ओर जिन मुट्ठी भर लोगों के हाथ में राष्ट्र की सम्पत्ति का केन्द्रीयकरण हो गया है उनकी सम्पत्ति कम करना और दूसरी ओर जो करोड़ों लोग अधपेट खाते और नंगे रहते हैं उनकी सम्पत्ति में वृद्धि करना। गाँधी जी के शब्दों में "आर्थिक समानता की मेरी कल्पना का यह अर्थ नहीं कि हर एक को शब्दशः एक ही रकम दी जाय। उसका सोधा-सादा मतलब यह है कि हर एक स्त्री या पुरुष को उसकी जरूरत की रकम मिलनी ही चाहिए। हाथी को चींटी से हजार गुना ज्यादा खाना लगता है, मगर यह असमानता का सूचक नहीं है। इसलिए आर्थिक समानता का सच्चा अर्थ है हर एक को उसकी जरूरत के माफिक दिया जाय।"[१] यहाँ पर हम गांधी जी के विचारों में और कार्ल मार्क्स के 'प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आवश्यकता के अनुसार' और 'प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुसार' इन नारों में एक सादृश्य पाते हैं जो समाजवाद की स्थापना का मूल मंत्र है।

प्रत्येक व्यक्ति की योग्यताएँ और आवश्यकताएँ भिन्न होती हैं। यह अंतर तो प्राकृतिक है परन्तु हर व्यक्ति के पास इतनी सम्पत्ति अवश्य होनी चाहिए, जिससे वह अपनी कुदरती आवश्यकताएँ पूरी कर सके।

मार्क्स के समाजवाद का साधन रक्तक्रांति था, जिसके फलस्वरूप रूस में १९१७ में भारी नर संहार हुआ। परन्तु गांधीवादी तरीका कुछ भिन्न ही है। साध्य की पवित्रता के साथ साधन की पवित्रता भी बापू की क्रांति का एक महत्वपूर्ण पक्ष था। गांधी और बाल गंगाधर तिलक में साधनों की उसी पवित्रता के प्रश्न पर मतभेद था। तिलक के दृष्टिकोण से साध्य का उत्तम होना ही पर्याप्त था। यही संभवतः मार्क्स के विचार भी थे। गांधी जी के समाजवाद का अर्थ सर्वोदय है जिसमें व्यक्तित्व के पूर्ण विकास की स्वतंत्रता हो।

आर्थिक समानता छीना-झपटी से नहीं हो सकता, बल्कि नीचे वालों में ऊपर उठने की भावना भरना और उपर वालों को नीचे के लोगों को उठा लेने के लिए प्रेरित करने से होगा। यह परस्पर सौजन्य, सहयोग और त्याग पर आधारित है, जिसमें मानव मूल्यों को ठेस न पहुँचाकर उन्हें पूर्ण सुरक्षा प्रदान करता है। इस प्रकार की अर्थनीति ही राजनीति में विश्वशांति की स्थापना में सहयोग प्रदान कर सकती है। अर्थ ही जीवन का सार नहीं है, बल्कि मानव मूल्य अधिक महत्वपूर्ण हैं। गांधी जी के अनुसार अर्थ का ध्येय भी सत्य की खोज और उसके दर्शन में सहयोग देना होना चाहिए। उनका सम्पूर्ण जीवन भी इसी खोज में बीता। संभवतः इसीलिए उन्होंने अपनी पुस्तक का नाम भी 'सत्य के मेरे प्रयोग' रखा।

विकेन्द्रीकरण और कुटीर-उद्योग

राजनीति में सत्ता का विकेन्द्रीकरण और अर्थनीति में सम्पत्ति और साधनों का विकेन्द्रीकरण भारत को गांधीवाद की मुख्य देन है। महात्मा गांधी का विचार था कि देश

[१] हरिजन सेवक, १९४६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से दरिद्रता दूर करने के लिए यह परम आवश्यक है कि भारतीय ग्राम आर्थिक दृष्टिकोण से आत्मनिर्भर हों। मनुष्य की दो आवश्यकताएँ हैं—भोजन तथा वस्त्र; उनकी पूर्ति होना परमावश्यक है। अतः ग्रामवासियों को चाहिए कि इन दोनों ही आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु अनाज तथा वस्त्रों का स्वयं उत्पादन करें। इस दिशा में उन्हें दूसरों के उपर निर्भर नहीं रहना चाहिए। खादी का प्रयोग तथा चरखा को अपनाना इसी उद्देश्य की पूर्ति की दिशा में एक कदम थे।

विकेन्द्रित आर्थिक व्यवस्था और कुटीर उद्योग से ही मानवमात्र की आर्थिक व्यवस्था सुधर सकती है। शोषण और वर्ग-संघर्ष की भावना समाप्त हो सकती है। गांधी जी वर्ग-संघर्ष को अनिवार्य या आवश्यक नहीं मानते। अहिंसा और सत्याग्रह में वर्ग-संघर्ष को कोई स्थान नहीं है। वे 'सादा जीवन उच्च विचार' में विश्वास करते थे।

बापू बड़े पैमाने के उत्पादन की अपेक्षा लघु-स्तर के उत्पादन को अधिक लाभकारी समझते थे। उनका विचार था कि बड़े पैमान के उत्पादन से बेकारी, आत्मनिर्भरता का अभाव, प्राकृतिक सौन्दर्य का विनाश या आलस्य आदि दुष्परिणाम निकलते हैं। आज तीन पंचवर्षीय योजनाओं और तीन वार्षिक योजनाओं की समाप्ति के पश्चात् भी जब हम बढ़ती हुई आबादी की समस्याओं का हल नहीं ढूँढ़ सके हैं तो पुनः हमारा ध्यान लघु एवं कुटीर उद्योग-धन्धों की ओर गया है। भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या के फलस्वरूप नये हाथों को काम देने की जटिल समस्या को हल करने का स्वदेशी साधन ही हमें ढूँढ़ना होगा।

यंत्रवाद

गांधीजी आधुनिक यंत्रवाद के विरोधी थे। यंत्रवाद ही पूँजी के असमान वितरण और कुछ हाथों में पूँजी के केन्द्रीयकरण का मूल कारण है। इसी ने बड़े-बड़े पूँजीपतियों और उद्योगपतियों को जन्म दिया है। उन्हें यह संतोषप्रद नहीं लगा कि इन पूँजीपतियों और उद्योगपतियों को हटाकर राज्य का स्वामित्व हो जाय। उनका विचार था कि राज्य के स्वामित्व से केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति होगी और उससे व्यक्ति की स्वतन्त्रता और गरिमा समाप्त हो जायेगी। पूँजीपतियों के स्थान पर राज्य की नौकरशाही अधिकारों का दुरुपयोग करेगी।

गांधी जी का यह विचार था कि यन्त्रवाद ने उत्पादन के साधनों का केन्द्रीयकरण करके सारे मनुष्य समाज को पंगु और आश्रित बना दिया है। बड़े पैमाने के उत्पादन और उत्पादन में मशीनों के प्रयोग से उद्योगों का एक स्थान पर स्थानीयकरण होगा। ग्रामीण जनता इन औद्योगिक केन्द्रों की ओर आयेगी। श्रम की महत्ता समाप्त हो जायेगी। स्वामी-सेवक भाव की वृद्धि होगी और मानवमात्र के नैतिक मूल्यों का ह्रास होगा। सुरक्षा की दृष्टि से भी औद्योगिक केन्द्रों का अस्तित्व खतरे से खाली नहीं है। युद्धकाल में औद्योगिक केन्द्रों को शक्तिशाली बमों के द्वारा नष्ट किया जा सकता है और सारा राष्ट्र घुटनें टेकने के लिए बाध्य हो सकता है। यन्त्रवाद ने केवल शोषण को ही जन्म नहीं दिया है, बल्कि मानव जीवन को आश्रित और परमुखापेक्षी बना दिया है।

यन्त्र मानव श्रम का प्रत्यक्ष स्थानापन्न है इसलिए इनका प्रयोग उसी सीमा तक होना चाहिए, जहाँ तक श्रम बेकार न हो अर्थात् बेरोजगार की समस्या न उत्पन्न हो। अतः यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलों के प्रयोग से बेरोजगारी की किंचित् मात्र भी आशंका हो तो इनका प्रयोग भूलकर भी न करना चाहिए। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि यदि हमें बढ़ती हुई बेरोजगारी की समस्या को हल करना है तो बापू के इन्हीं पद-चिह्नों पर चलना होगा।

ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त

गांधीजी के मतानुसार प्रत्येक व्यक्ति को उतनी ही सम्पत्ति रखनी चाहिए, जितना उसके लिए आवश्यक हो। अपनी आवश्यकता से अधिक वस्तु समाज के लिए है। अर्थात् उस अतिरेक का उपयोग समाज की सेवा में ही होना चाहिए। पूँजीपतियों से उनकी यही प्रार्थना थी कि उनको अपना दृष्टिकोण विस्तृत करना चाहिए और मानवता का मार्ग अपनाना चाहिए। सम्पत्ति स्वामियों को यह याद रखना चाहिए कि सम्पूर्ण सम्पत्ति जनता की है वे तो केवल उस सम्पत्ति के निक्षेपधारी या संरक्षक मात्र हैं।

"कोई भी जायदाद किसी एक व्यक्ति के अधिकार में हो या कई व्यक्तियों के बने किसी मण्डल के हाथ में हो या गैरकानूनी तौर पर पाया हो, तो वे उसे अपने पास निजी उपयोग के लिए नहीं, बल्कि समाज के भले के लिए ही रख सकते हैं अर्थात् उन्हें समझना चाहिए कि वे उस जायदाद के ट्रस्टी या संरक्षक हैं।"[१] ऐसा गांधीजी का विचार था।

आवश्यकताएँ

कीन्स आदि पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों का विचार है कि आवश्यकताओं में वृद्धि करनी चाहिए। इससे प्रभावी मांग में वृद्धि होगी और इस प्रकार उपभोग में वृद्धि होगी। उपभोग में वृद्धि के प्रभाव से अधिक लोगों को रोजगार दिया जा सकता है और राष्ट्रीय आय में वृद्धि की जा सकती है। परन्तु गांधीवादी विचारधारा उससे भिन्न ही है। जीवन का सुख अतिभौतिकता में कदापि नहीं है यही भारतीय धारणा है। इच्छाओं पर नियंत्रण रखकर और आवश्यकताओं में कमी करके ही सुखी जीवन बिताया जा सकता है।[२] आवश्यकताओं को स्वतंत्र रूप से नहीं विचरने देना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य आवश्यकताओं का दास हो जाता है और उससे इतर कुछ सोचता ही नहीं। वह निरन्तर बढ़ने वाली आवश्यकताओं को कभी संतुष्ट नहीं कर सकता और उनकी पूर्ति न होने से उसे दुःख होगा। अतः इस हार्दिक दुःख से विरत होने के लिए उसे इन्द्रियों पर संयम करना पड़ेगा। 'संतोषं परमं सुखं'—संतोष में ही परम सुख है।

इस प्रकार हम देखते है कि गांधी जी की आर्थिक नीति साधनों के विकेन्द्रीकरण, श्रमके सम्मान, मानव मूल्यों के प्रति आस्था, आवश्यकताओं में कमी एवं सर्वोदय के सिद्धांतों पर आधारित है। अहिंसा और सत्य का आग्रह उनकी कार्यप्रणाली के मूलाधार हैं। वे केवल आदर्शवादी ही नहीं थे, वरन् उन्होंने इनका प्रयोग भी अपने जीवन में किया और दूसरों को उनका प्रयोग बताया और सिखाया भी।

---

[१] गांधी और साम्यवाद।

[२] गांधी जी के इन विचारों का प्रतिबिम्ब हम भारतीय अर्थशास्त्री प्रो० जे० के० मेहता के अर्थशास्त्र की परिभाषा में पाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

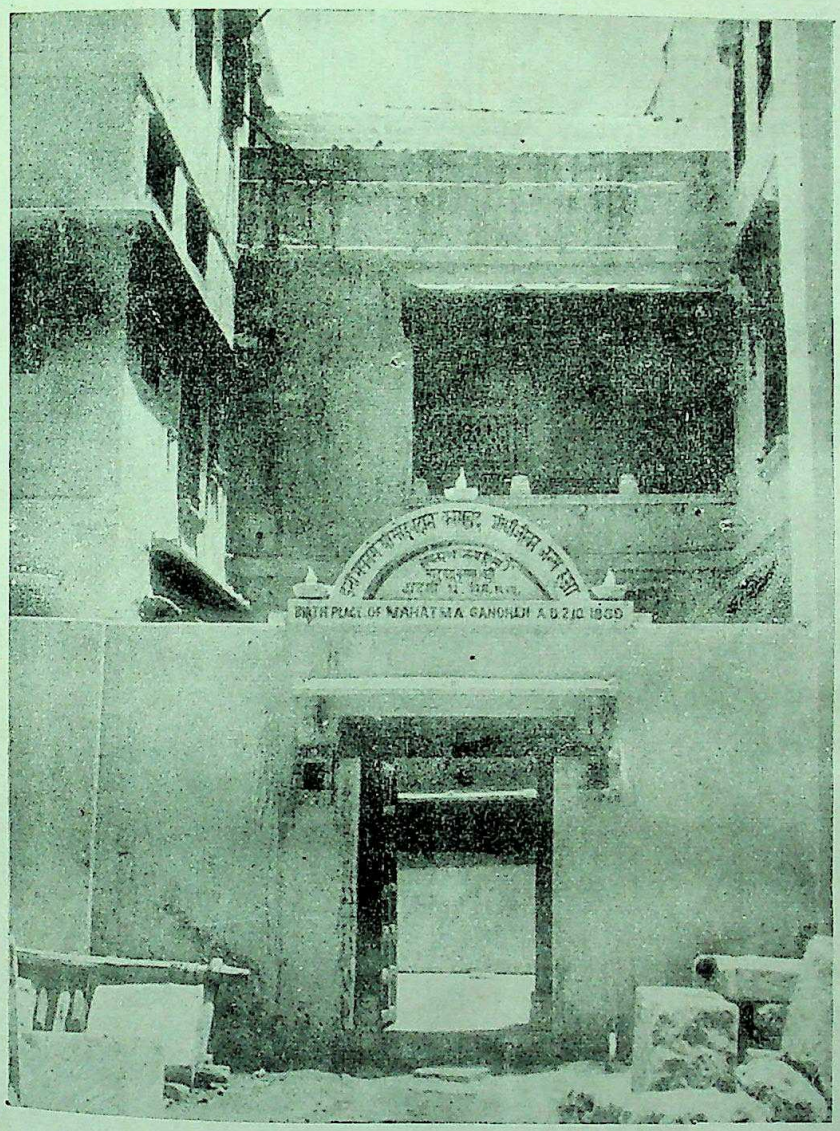

गाँधी जी का जन्म-गृह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा गांधी का इतिहास में स्थान

भगवती प्रसाद पांथरी

अध्यक्ष इतिहास विभाग, काशी विद्यापीठ

"Gandhi is one of history's most amazing paradoxes a soldier who fights with the weapon of a saint."

महात्मा गांधी को आज सम्पूर्ण दुनिया राम, कृष्ण, बुद्ध और ईसा की तरह एक अवतारी पुरुष मानने लगी है। इसका क्या कारण है? संक्षेप में इसके तीन कारण दिये जा सकते हैं—सत्य, अहिंसा और सेवा। उनके जीवन का अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जायगा कि उनके जीवन की आधारशिला इस त्रिरत्न पर ही स्थित रही है। अतः जो लोग उन्हें यह समझते हैं कि वह केवल एक राजनीतिज्ञ और अंग्रेजी-शासन के द्रोही थे—वे उन्हें पूरा नहीं समझते हैं।

गांधी जी वस्तुतः बुद्ध की तरह क्रान्तिद्रष्टा और एक धार्मिक पुरुष थे। वर्ण भ्रष्ट और पुरुषार्थ-च्युत् जगत् को सद्भाव, सदाचार और मानव-प्रेम का पाठ पढ़ाना उनके जीवन का लक्ष्य था। किन्तु आचार का यह पाठ उन्होंने उपदेशों द्वारा केवल मुख से प्रवचनों की झड़ी लगाकर नहीं, अपने व्यवहृत आचार से प्रस्तुत किया और उनके आचार का मूलाधार गीता था जिसकी वाणी में उन्होंने भगवान् की आवाज को ध्वनित और जिसके शब्दों में सत्य को स्फुरित पाया था। यदि भगवान् कृष्ण गीता के स्रष्टा थे तो गीता गांधी की स्रष्टा थी। अपनी आत्म-कथा में गांधी जी ने गीता का उल्लेख करते हुए लिखा है कि—"मेरे लिए तो गीता आचार की एक प्रौढ़ मार्ग-दर्शिका बन गयी है। वह मेरा धार्मिक कोश हो गयी है। जिस तरह मैं अंग्रेजी कोश को खोलता, उसी तरह आचार सम्बन्धी कठिनाइयों और उसकी गुत्थियों को गीता जी के द्वारा सुलझाता। उसके अपरिग्रह समभाव इत्यादि शब्दों ने मुझे गिरफ्तार कर लिया। यही धुन रहने लगी कि समभाव कैसे प्राप्त करूँ, कैसे उसका पालन करूँ?"

अतः व्यापक रूप से गांधी जी को समझने के लिए गीता का समझना आवश्यक है। क्योंकि गीता से ही उनकी उत्पत्ति हुई है और वही उनके सम्पूर्ण जीवन की कुंजी भी है। उनका तपस्वी जीवन और उनका सत्य दर्शन गीता से ही निःसृत है। गीता ने ही उन्हें सत्य का पाठ पढ़ाया, उन्हें अपरिग्रह की दीक्षा दी और अहिंसा अर्थात् हृदय परिवर्तन अथवा धर्म द्वारा विजय करने की प्रेरणा प्रदान की थी। गीता के साक्षात्कार ने ही गांधी जी को 'स्व' और परिवार की सेवा से ऊपर उठ कर देश, राष्ट्र और विश्व भर के मानवों के योगक्षेम के लिए अग्रसर किया। सेवा के इस पाठ को आत्मसात करने के बाद ही गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका से अपने बड़े भाई को लिखा था—"आज तक जो कुछ मैं बचाता रहा आपके अर्पण करता रहा, अब जो कुछ बच रहेगा, वह यहीं के सार्वजनिक काम में लगेगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फलतः गीता के इस महापुरुष ने लोक-सेवा और राजनीति में जो कदम बढ़ाया, उसका कारण केवल ईश्वर अथवा सत्य की खोज और आत्मदर्शन ही था। वे कहते हैं—"यह समझ कर कि सेवा के द्वारा ही ईश्वर की पहचान हो सकती है—मैंने सेवा-धर्म स्वीकार किया था।" लेकिन यदि यहाँ पर कोई यह प्रश्न करे कि उन्होंने अपने जन्म के देश के अलावा दूसरे किसी देश को क्यों नहीं सेवा का क्षेत्र बनाया ? तो उसका उत्तर गांधी जी स्वयं दे गये हैं, ध्यान दें—"भारत की सेवा मुझे सहज प्राप्त थी और उसमें मेरी रुचि थी।" किन्तु यह लोक-सेवा कोई सरल चीज न थी। गांधी जी को अनुभूत हुआ कि यदि मुझे लोक-सेवा में ही लीन हो जाना है तो फिर पुत्रैषणा और धनैषणा को भी नमस्कार कर लेना चाहिए और वानप्रस्थ-धर्म का पालन करना चाहिए। गांधी जी के "त्यागमय निःस्वार्थ जीवन" का रहस्य उनके इस बुद्धत्व में प्रकट है।

गांधी जी की सम्पूर्ण राजनीति का आधार भी सेवा ही रही है। लोक-सेवा और राजनीति को उन्होंने कभी दो पृथक् वस्तु नहीं माना। दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह आन्दोलन और भारत के उनके सभी अहिंसात्मक आन्दोलन लोक-सेवा के ही रूप में लड़े गये थे। दक्षिण अफ्रीका की गोरी सरकार और भारत की ब्रिटिश-सरकार दोनों ही भारतीयों और एशियाइयों पर अन्याय ढाह रही थीं और इस अन्याय का प्रतिरोध करना लोक-सेवा के व्रती के लिए जरूरी ही नहीं, अनिवार्य था। यही कारण है कि उन्हें अहिंसक युद्धों का सेनापति और महात्मा दोनों कहा जाता है जिसका लड़ने का ढंग और अस्त्र दोनों विचित्र थे। अहिंसा के धर्मराज्य में गांधी जी सारिपुत्र की तरह अर्हत भी थे और धर्म-सेनापति भी।

गांधी जी के सेनापतित्व में लड़े गये सभी सत्याग्रह आध्यात्मिक स्तर पर लड़े गये थे। उनके संघर्ष का लक्ष्य मानव नहीं, मानव के अन्तःकरण में पैठी हुई बुराइयाँ थीं। इसीलिए अपने प्रत्येक आन्दोलन के लिए वे अपनी अन्तरात्मा से ही प्रेरणा लेते रहे। गांधी जी ने स्वयं कहा है--"मैं जो अपने छोटे-छोटे और बड़े-बड़े कहे जाने वाले कार्य करता आया हूँ उनकी जब छान-बीन करता हूँ तो मुझे यह कहना अनुचित नहीं मालूम होता है कि वे अन्तरात्मा की प्रेरणा के ही फल हैं।" प्रत्यक्ष है कि अन्तरात्मा की प्रेरणा पर कार्य करने वाला व्यक्ति परम सत्य का और इसलिए अहिंसा का भी मानने वाला होता है। क्योंकि सत्य की खोज के मूल में अहिंसा व्याप्त है। जब तक यह अहिंसा हाथ न लगेगी तब तक सत्य हाथ नहीं आ सकता। अतः सत्य और अहिंसा के व्रती गांधी के मन में मनुष्य के प्रति बैर या मनुष्य के साथ द्वन्द का कोई भाव ही नहीं था। बुद्ध की तरह गांधी भी मानव के विकारों के विरोधी थे—मानव के नहीं। विकारों के विरुद्ध की लड़ाई विकारों का आश्रय देने वाले मनुष्य पर आघात करने वाले शस्त्रों से नहीं, बल्कि हृदय को परिवर्तित करने वाले प्रेम व करुणा के अहिंसा बल पर ही लड़ी जा सकती है। कोशलराज प्रेसेनजित् की सशस्त्र सेना जिस अंगुलिमाल को दबाने में असमर्थ रही थी उसे बुद्ध की प्रेममय वाणी ने सहसा डाकू से अर्हत में बदल दिया था। अहिंसा के इस परिप्रेक्ष्य में ही गांधी जी ने कहा है—"किसी तंत्र या प्रणाली का विरोध तो अच्छा है, लेकिन उसके संचालन का विरोध करना मानो खुद अपना ही विरोध करना है। कारण हम सबकी सृष्टि एक ही कूंची के द्वारा हुई है। हम सब एक ही ब्रह्मदेव की प्रजा हैं। संचालक के अन्दर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो अनन्त शक्ति भरी हुई है। इसलिए यदि हम उसका अनादर करेंगे तो उसकी शक्तियों का, गुणों का भी अनादर होगा। ऐसा करने से तो उस संचालक को एवं प्रकारान्तर से सारे जगत को हानि पहुँचेगी।" स्पष्टतः मानव और मानव विकार को गांधी जी एक नहीं मानते थे। उनके शब्दों में—"मनुष्य और उसका काम तो जुदा चीजें हैं। अच्छे काम के लिए मन में आदर और बुरे के लिए तिरस्कार अवश्य ही होना चाहिए, पर अच्छे बुरे काम करने वाले के प्रति हमेशा मन में आदर अथवा दया का भाव होना चाहिए।" लेकिन उन्हें खेद था तो यह कि जो बात समझने में बड़ी सरल है, उसके अनुसार जगत में आचरण बहुत कम होता है। यही कारण है जो इस जगत में हम इतना जहर फैला हुआ देखते हैं। सांसारिक स्वार्थों में डूबे और अपने मन के आक्रोशों से आक्रान्त लोगों के लिए भले ही अहिंसा का सत्य और सरल मार्ग अव्यावहारिक और अग्रहणीय प्रतीत होता हो किन्तु गांधी जी ने निरन्तर ३० वर्ष तक ब्रिटिश सरकार के प्रति जिस प्रकार आध्यात्मिक या अहिंसक युद्ध लड़ा और अन्त में ब्रिटेन से जिस प्रकार सत्ता पाने के साथ-साथ मित्रता भी प्राप्त की, वह इस बात का प्रमाण है कि दुनिया के महान् नेता यदि वे सचमुच मानव-मात्र का कल्याण चाहते हैं तो गांधी की राह पर चल कर उन्हें संसार से युद्ध और भूख को मिटा देने के लिए गांधी शती के अवसर पर गांधी के दिखाये मार्ग को अपनाने की सिंह-घोषणा कर देनी चाहिए।

संक्षेप में गांधी जी के जीवन का 'सत्य' ही सार और लक्ष्य अहिंसा था। अतः राष्ट्र निर्माता, सुधारक और राजनीतिज्ञ होने से अधिक वे जगत के त्राता और मानव मात्र के सेवक तथा कल्याणकर्त्ता थे और इसी रूप में विश्व के इतिहास में उनका मूल्यांकन भी किया जायगा। वे यदि भारत के बापू थे तो जगती के वे मसीहा थे। न्यूयार्क में गांधी जयन्ती के अवसर पर कहे गये ३ अक्टूबर, १९४९ को लुई फिशर के ये शब्द ऐतिहासिक सत्य के प्रतिपादक हैं :

"Gandhiji's place in history was so great that the role of liberator of India was really his least."

निःसंदेह गांधी जी का मानव इतिहास में इतना बड़ा स्थान है जिसके सामने उनका भारत त्राता और राष्ट्र निर्माता होना एक छोटी सी बात रह जाती है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा गांधी जी के गुरु-ग्रंथ

डॉ० भी० गो० देशपांडे
भारतीय भाषा विभाग, का० हि० वि० वि०

विश्ववंद्य महात्मा जी का कोई गुरु नहीं था। उन्होंने कुछ ग्रंथों को गुरु मानकर अपने जीवन को बनाया। वे अपनी 'आत्मकथा' में लिखते हैं—"मुझे साधारणतः स्कूली किताबों के सिवा और कुछ पढ़ने का शौक नहीं था। पर पिता जी को खरीदी हुई एक किताब पर मेरी नजर पड़ी। वह था 'श्रवण-पितृ-भक्ति' नाटक। उसे पढ़ने की इच्छा हुई और मैं उसे बड़े चाव से पढ़ गया। उसका मुझपर गहरा असर पड़ा। मुझे भी श्रवण के समान होना चाहिए, यह भाव मन में उठने लगा। श्रवण की मृत्यु पर उसके माता-पिता का विलाप आज भी याद है।" जैसे उपरिनिर्दिष्ट नाटक का उनपर विद्यार्थी अवस्था में प्रभाव पड़ा, वैसे ही हरिश्चन्द्र के नाटक का भी पड़ा। आप आगे चलकर लिखते हैं "इसी बीच कोई नाटक-कम्पनी आई। मुझे नाटक देखने की इजाजत मिली। उसमें हरिश्चन्द्र की कथा थी। यह नाटक देखने से मेरी तृप्ति ही न होती थी। उसे बार-बार देखने को जी चाहता; पर बार-बार जाने कौन देता? किन्तु मैंने अपने मन में इस नाटक को सैकड़ों बार दोहराया होगा। मुझे हरिश्चन्द्र के सपने आया करते। हरिश्चन्द्र जैसे सत्यवादी सब क्यों नहीं हो जाते?" यह धुन रहती। हरिश्चन्द्र पर जैसी विपत्तियाँ पड़ीं, वैसी विपत्तियों को भोगना और सत्य का पालन करना ही वास्तविक सत्य है। मैंने तो मान लिया था कि नाटक में लिखी विपदाएँ हरिश्चन्द्र पर अवश्य पड़ी होंगी। हरिश्चन्द्र का दुःख देखकर, उसे याद कर, मैं खूब रोया। आज मेरी बुद्धि समझती है कि हरिश्चन्द्र कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं थे। फिर भी मेरे मन में हरिश्चन्द्र और श्रवण आज भी जीवित हैं। मेरा ख्याल है कि मैं आज इन नाटकों को पढ़ूँ तो आज भी मुझे आँसू आ जायेंगे। उपर्युक्त अनुच्छेदों से मालूम पड़ता है कि संस्कारक्षम अवस्था में भावनाओं को शुद्ध एवं ध्येयनिष्ठ बनाने में उक्त नाटकों ने गांधी जी को प्रेरित किया।

मैट्रिक परीक्षा पास करने पर गांधीजी बैरिस्टरी के लिए विलायत गये। वहाँ वे दो थियासोफिस्ट भाईयों के सम्पर्क में आये। उन भाईयों ने उनसे 'गीता' के बारे में बात-चीत करना प्रारम्भ किया। तब गांधीजी ने उनसे कहा कि "मैंने गीता पढ़ी नहीं है पर आप लोगों के साथ मैं गीता पढ़ने को तैयार हूँ। मेरा संस्कृत का अभ्यास भी नहीं के बराबर है। इस प्रकार इन भाईयों के साथ मैंने गीता पढ़ना आरम्भ किया। दूसरे अध्याय के आखिरी श्लोकों में से

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

इन श्लोकों का मेरे मन पर गहरा असर पड़ा। उनकी ध्वनि मेरे कानों में गूँजती ही रहती। भगवद्गीता अमूल्य ग्रंथ है यह मुझे उस समय प्रतीत हुआ। वह मान्यता धीरे-धीरे बढ़ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई और आज मैं तत्त्वज्ञान के लिए उसे सर्वोत्तम ग्रंथ मानता हूँ। निराशा के क्षणों में उस ग्रंथ ने मेरी अमूल्य सहायता की है। उसके अंग्रेजी अनुवाद मैं लगभग सब पढ़ गया हूँ; पर एडविन आर्नाल्ड का अनुवाद मुझे सबसे अच्छा लगता है। मूल ग्रंथ के भाव की रक्षा की गई है, फिर भी वह ग्रंथ उलथा जैसा नहीं लगता। उस समय का यह वाचन मेरा गीता अभ्यास करना नहीं कहला सकता। मेरे नित्य वाचन का ग्रंथ तो वह कई बरस बाद हुआ।" अब सभी गीता मर्मज्ञ स्वीकार करते हैं कि महात्मा गांधी जी ने गीता के उपदेशों को अपने जीवन में उतारा था। इसके अलावा महात्मा गांधी जी ने 'भगवद्गीता' पर 'अनासक्ति योग' नामक छोटी सी व्याख्या भी की है जो अपनी मौलिकता लिय हुई है। भगवद्गीता पर विद्वतापूर्ण सैकड़ों व्याख्या ग्रंथ हैं और लिखे जावेंगे, पर महात्माजी की 'अनासक्ति योग' नामक व्याख्या अपना अनूठापन लिये हुई रहेगी।

उसी अध्याय में गांधीजी आगे चलकर लिखते हैं कि "इन्हीं दो थिआसोफिस्ट भाईयों ने मुझसे आर्नाल्डका बुद्धचरित (लाइट ऑव एशिया) पढ़ने की सिफारिश की। मैंने बुद्ध-चरित को गीता की अपेक्षा भी अधिक चाव से पढ़ा। पुस्तक हाथ में लेने के बाद पूरी करके ही रख सका।" कौन सूज्ञ नहीं जानता कि बुद्ध-चरित का अनुकरण करने में गांधीजी सफल नहीं रहे? इसके उपरान्त गांधीजी पर बाईबल के 'नये इकरार' का गहरा प्रभाव पड़ा। वे 'आत्मकथा' में लिखते हैं कि "जब मैं नये इकरार (न्यू टेस्टामेंट) पर आया तो दूसरा ही असर मुझपर हुआ। ईसा के 'गिरिप्रवचन' का (सरमन ऑफ दी माऊंट) बहुत ही अच्छा प्रभाव मुझपर पड़ा। वह हृदय में पैठ गया। जो तेरा कुर्त्ता माँगे उसे अंगरखा भी दे दे; जो तेरे दाहिने गाल पर तमाचा मारे, बायाँ गाल भी उसके सामने कर दे। यह पढ़ कर मुझे अपार आनन्द हुआ। मेरे मन ने गीता, आर्नाल्डकृत बुद्ध-चरित और ईसा के वचनों का एकीकरण किया। त्याग में धर्म है, यह बात मन को रुचि।" महात्मा गांधी जी अहिंसा के अनन्य भक्त एवं उपासक क्यों बने, उपर्युक्त अनुच्छेदों से स्पष्ट होता है। आगे चल कर आप लिखते हैं कि "इस वाचन से अन्य धर्माचार्यों के जीवन चरित पढ़ने की इच्छा हुई। किसी मित्र ने कार्लाइल की 'विभूतियाँ और विभूतिपूजा' (हीरोज ऐंड हीरो वर्शिप) पुस्तक पढ़ने की शिफारिश की। उसमें मैंने हजरत मुहम्मद साहब के बारे में पढ़ा, जिससे उनकी महत्ता, वीरता और तपश्चर्या की मुझे कल्पना हो सकी।" हम दृढ़ता से कह सकते हैं कि अन्य विभूतियों के जीवन से गांधी जी ने बहुत कुछ लिया। वे केवल बौद्धिक ज्ञान के मिथ्यात्व से भलीभाँति परिचित थे। जो कुछ थोड़ा बहुत वे पढ़ते थे आचरण में उतारते थे।

आगे चलकर वे अपनी 'आत्मकथा' के 'एक पुस्तक का जादूभरा असर' नामक अध्याय में लिखते हैं कि "जब मैं नेटाल के लिए रवाना हुआ तब पोलक जो कि 'क्रिटिक' के संपादक थे, मुझे स्टेशन पर पहुँचाने आये और उन्होंने एक किताब मेरे हाथ में देकर मुझसे कहा 'यह किताब रास्ते में पढ़ने लायक है, पढ़ जाइयेगा। आपको पसंद आयेगी। पुस्तक का नाम था—अंटु दिस लास्ट!" वह रस्सिनकी किताब थी। इस किताब को हाथ में लेकर मैं छोड़ ही न सका। उसने मुझे पकड़ लिया। जोहान्सबर्ग से नेटालतक चौबीस घंटे का रास्ता था। ट्रेन शाम को डरबन पहुँचती थी। पहुँचने के बाद सारी रात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नींद नहीं आई। मैंने पुस्तक में प्रकट किये हुए विचारों को अमल में लाने का इरादा किया। मेरा यह विश्वास है कि जो चीज मुझमें गहराई से भरी हुई थी, उसका स्पष्ट प्रतिबिम्ब मैंने रस्किन के इस ग्रन्थरत्न में देखा और इसके कारण उसने मेरे हृदय पर अपना साम्राज्य जमा लिया और उसमें प्रकट किये हुए विचारों पर मुझसे अमल कराया। हममें जो भली भावनाएँ सुप्त हों, उन्हें जगाने की शक्ति जिसमें हो, वह कवि है। सब कवियों का सब पर एक-सा असर नहीं होता; क्योंकि सबमें सब भली भावनाएँ समान मात्रा में नहीं होती हैं। जिन पुस्तकों ने मेरे जीवन में तत्काल महत्त्व का रचनात्मक परिवर्तन करा दिया, उनमें यह पुस्तक है। बाद को मैंने इसका उल्था किया और वह 'सर्वोदय' के नाम से छपा है। इसके अनुसार 'सर्वोदय' के सिद्धान्त जो मैंने समझे, वे हैं :

(१) सबके भले में अपना भला समाया हुआ है।

(२) वकील और हज्जाम दोनों के काम की कीमत एक-सी होनी चाहिए; क्योंकि आजीविका का हक सबको बराबर है।

पहली चीज मैं जानता था। दूसरी की मैं झलक पा रहा था। तीसरी को मैंने सोचा ही नहीं था। पहली में पिछली दोनों बातें समाई हुई हैं। यह मुझे 'सर्वोदय' ने (अन टू दिस लास्ट ने) दीपक की भाँति स्पष्ट दिखा दिया। सवेरा हुआ और मैं उसपर अमल करने के प्रयत्न में लग गया।"

मर्मज्ञ पाठक अब भली-भाँति समझ लेंगे कि हमारे जैसे साधारण व्यक्तियों के वाचन में और महात्माजी जैसे असाधारण विभूतियों के वाचन में कितना और कैसे अंतर होता है। महात्माजी को सैकड़ों पुस्तकें पढ़ने का शौक नहीं था। वे किताबी कीड़े नहीं थे। वे अपनी आत्म-कथा में स्पष्टता से लिखते हैं कि "विद्याभ्यास के दिनों में पाठ्य-पुस्तकों के अलावा मेरी दूसरी बाहरी किताबों की पढ़ाई नहीं के बराबर ही समझनी चाहिए। आगे चलकर कर्मभूमि में प्रवेश करने के बाद वक्त बहुत कम बचता था। अतः आजतक भी कहा जा सकता है कि मेरा पुस्तकीय ज्ञान बहुत ही थोड़ा है। मैं मानता हूँ कि इस अनायास या विवश होकर किये गये संयम से मुझे नुकसान नहीं हुआ। पर यह कह सकता हूँ कि जो थोड़ी किताबें मैंने पढ़ी हैं उनको ठीक तरह पचा सका हूँ। इन पुस्तकों ने मेरे जीवन में तत्काल महत्त्व का परिवर्तन करा दिया।"

मनोरंजन, बुद्धिविलास और ज्ञानवृद्धि के लिए ग्रन्थों का पढ़ना एक बात है और जीवन को अधिक शुद्ध, विशाल एवं परमार्थनिष्ठ बनाने के लिए ग्रन्थों को गुरु मानते हुए उनके उपदेशों को आचरण में उतारना सर्वथा भिन्न और श्रेष्ठतर बात है। महात्मा गांधी कर्मयोगी थे अतः उनके जीवन में बुद्धिविलस के लिए अवकाश ही नहीं था। लब्ध प्रतिष्ठ अंग्रेजी निबंध लेखक फ्रैंसिस बैकन का निम्नलिखित सुभाषित महात्मा गांधी जी पर शत-प्रति-शत घटता है : "Some books are to be tasted, others to be swallowed and some few to be chewed and digested." पूज्य गांधीजी ने थोड़ा पढ़ा, किन्तु उसे पचाया।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी युग में उत्तर प्रदेश की राजनीति (१९२० से नेहरू रिपोर्ट तक)

केदार नाथ सिंह

अपनी भौगोलिक स्थिति[१], जनसंख्या[२] और एक विशिष्ट सांस्कृतिक देन[३] के कारण इस क्षेत्र ने अतीत काल से ही भारत के इतिहास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इसी क्षेत्र ने अंग्रेजी सत्ता को अन्तिम सशस्त्र चुनौती सन् १८५७ में दी। इस प्रयत्न में असफलता के बाद शिक्षा और अन्य क्षेत्रों में उपेक्षित होकर यह क्षेत्र १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राजनीतिक दृष्टि से भारत के बंगाल और महाराष्ट्र ऐसे प्रान्तों की तुलना में निश्चय ही पिछड़ गया। परन्तु २० वीं सदी के प्रारम्भ में हम इस क्षेत्र में नई चेतना देखते हैं, जो प्रथम विश्व युद्ध के बाद बलवती हुई और जिसने स्वातंत्र्य आन्दोलन में इसे विशिष्ट स्थान दिया। गांधी युग हमारे राष्ट्र और इस प्रान्त के लिए बड़े ही महत्व का है।

प्रथम विश्व युद्ध में भारत ने अपने जन-धन से इंग्लैण्ड की सहायता की थी। भारतीयों को आशा थी कि युद्धोत्तर भारत को पर्याप्त संवैधानिक लाभ होंगे। युद्ध काल में ही लोकमान्य तिलक एवं श्रीमती एनीबेसेन्ट ने 'होम रूल' की माँग करते हुए व्यापक आन्दोलन चलाया। भारतीयों की आशा के विपरीत फरवरी १९१९ में ब्रिटिश सरकार ने रौलट ऐक्ट पास किया, जिसके द्वारा सार्वजनिक शांति एवं सुरक्षा के नाम पर स्थानीय सरकारों को बहुत ही व्यापक अधिकार दिये गये।[४] जनता की धारणा थी कि साम्राज्य की आवश्यकता पूर्ण हो जाने पर भी भारत के साथ विश्वासघात किया गया है। अतः समस्त भारत ने रौलट ऐक्ट का विरोध किया। गांधी जी ने रौलट ऐक्ट के विरुद्ध लाक्षणिक विरोध प्रदर्शन करने के लिए ही जनता का आह्वान किया था[५], किन्तु ब्रिटिश सरकार के अविवेकी कर्मचारियों ने 'मानवता के विरुद्ध अपराध'[६] के रूप में जलियाँवालाबाग और पंजाब का रोमांचकारी कांड कर डाला। हण्टर कमेटी ने भारतीय भावनाओं का अनादर करते हुए कहा कि "वह महान् भूल थी जो ईमानदारी पर आधारित थी,

---

१ उत्तर प्रदेश की भौगोलिक स्थिति को देखते हुए ही इसे 'भारत की आत्मा' की संज्ञा दी गई है। इस प्रदेश का सम्पूर्ण क्षेत्रफल ब्रिटिश राज्य के ९.७ प्रतिशत था।

२ १९०१ की जनगणना के अनुसार उत्तर प्रदेश की जनसंख्या सम्पूर्ण भारतीय जनसंख्या की २०.५ प्रतिशत थी।

३ उत्तर प्रदेश हिन्दू मुस्लिम संस्कृति का संगम रहा है, यदि काशी हिन्दू संस्कृति की आदि स्थल है और अलीगढ़ तथा लखनऊ मुस्लिम संस्कृति के कर्म स्थल हैं तो इलाहाबाद दोनों संस्कृतियों का संगम स्थल है।

4 Sedition Committee Report; Para 121-123, pp. 132-136.

5 D. G. Tendulkar, (Ed.) Gandhiji, His life and work, p. 430.

६ 'आज', १० सितम्बर, १०२०, पृष्ठ ५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु डायर ने अपने कर्तव्य को गलत समझा था।"[1] इससे भारतीय जनमत विक्षुब्ध हो उठा।[2]

उसी समय 'खिलाफत' का प्रश्न भी खड़ा हुआ। तुर्की के शासक एवं इस्लामी दुनिया के धार्मिक गुरु 'खलीफा' के साथ ब्रिटिश सरकार जिस प्रकार का व्यवहार कर रही थी, भारतीय मुसलमान उससे अत्यन्त ही रुष्ठ थे।[3] गांधी जी ने बड़ी कुशलता के साथ रौलट ऐक्ट विरोधी भाव को 'खिलाफत आन्दोलन' से मिलाकर १९२० में व्यापक जन आन्दोलन को जन्म दिया। पहली मार्च, १९२० को सत्याग्रहियों की एक सभा बनाई गई जिसमें निश्चय किया गया कि ७ मार्च से सत्याग्रह को प्रत्येक स्तर पर बढ़ाया जाय। मई, १९२० में बनारस में सर्वप्रथम गांधी जी ने असहयोग की दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की। 'खिलाफत कमेटी' ने जुलाई, १९२० को इलाहाबाद में अपना विशेष अधिवेशन किया और यहीं पर असहयोग आन्दोलन का समर्थन करने का निश्चय किया गया। मुस्लिम सम्प्रदाय द्वारा जिस समय असहयोग का समर्थन किया जा रहा था, ठीक उस समय मुसलमानों के एक विशेष गुट ने अलीगढ़ में असहयोग के 'अहिंसात्मक पक्ष पर' संदेह प्रकट करते हुए प्रदर्शन किया।[4] असहयोग का तत्कालीन कारण दो गलतियों (पंजाब एवं खिलाफत) को ठीक कराना था, जिसे अखिल भारतीय कांग्रेस ने ४ सितम्बर, १९२० को कलकत्ता के विशेष अधिवेशन में सम्पुष्ट कर दिया।

असहयोग आन्दोलन ने भारत के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, चारित्रिक एवं नैतिक सभी अंगों एवं प्रत्यगों को समान रूप से प्रभावित किया। वह अवश्य ही एक राजनीतिक अस्त्र के रूप में प्रकट हुआ, परन्तु असहयोग केवल राजनीतिक विक्षोभ का ही परिणाम नहीं था, वह राजनीतिक इसलिये था कि स्थूलतः भारत की पराधीनता के विरुद्ध विद्रोह के रूप में प्रकट हुआ, परन्तु सूक्ष्मतः वह धारा थी जिससे राष्ट्र के जागरण में सहायता मिली। असहयोग के दो पहलू थे—एक का सम्बन्ध सकारात्मक पक्ष से था और दूसरे का निषेधात्मक पक्ष से। सकारात्मक असहयोग में कांग्रेस एवं गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम सम्मिलित थे[5] और निषेधात्मक पक्ष सरकार से असहयोग का हिमायती था।[6] साध्य प्राप्ति के लिए गांधी जी ने अहिंसा को साधन बनाया, जिसका आध्यात्मिक दृष्टि से महत्व है। गांधी जी ने सर्वप्रथम राजनीति को धर्म की दृष्टि से देखना प्रारम्भ किया, जिसका जनता पर अर्द्ध दैविक वरदान-सा प्रभाव हुआ।[7]

कांग्रेस के रचनात्मक कार्य-क्रमोंमें हिन्दू-मुस्लिम एकता का विशेष महत्व था। उसी समय राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं की संरचना की ओर भी ध्यान दिया गया। काशी विद्यापीठ की स्थापना के अवसर पर उसका महत्व इन शब्दों में व्यक्त किया गया था,

1 Disorder Inquiry Committee Report, (1919-20), pp. 46-47.
2 India in 1919, p. 57.
3 'Chaudhary' Khaliquzzaman; Pathway to Pakistan, p. 47.
4 'The Pioneer', 29 November, 1920 p. 5.
5 Modern Review, October 1920, p. 457.
6 The Indian National Congress, 1920-23, pp. 29-30.
7 India in 1920 pp. 39.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अपने लुप्त स्वतंत्रता एवं गौरव को फिर से पाने के लिए असीम तपस्या एवं आत्म-त्याग की आवश्यकता है, पर यह सदैव याद रखने की बात है कि इस तपस्या में उपद्रव एवं पारुष्य को स्थान नहीं है——।[1] गांधी जी द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन का व्यापक प्रभाव हुआ। कांग्रेस अब बुद्धजीवी वर्ग की संस्था न रहकर जनता की संस्था हो चुकी थी। संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) ने इस आन्दोलन का प्रतिनिधित्व नये सिरे से किया। सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश आन्दोलन से प्रभावित हुआ, जिसका प्रतिरोध सरकार ने गिरफ्तारियों के माध्यम से किया। १९२३ तक इस प्रान्त से कुल २९९७ व्यक्ति गिरफ्तार किये गये।[2] मुसलमानों की पूर्ण सहानुभूति असहयोग के साथ नहीं थी, उनका स्वार्थ तो 'खिलाफत' के प्रश्न तक ही सीमित था। अतः इस समस्या के समाधान के साथ ही साथ वे असहयोग से मुकरने लगे। असहयोग की असफलता अवश्यसंभावी थी, क्योंकि उसके दोनों आधार (पंजाब और खिलाफत) संकुचित थे। एक राष्ट्रीय होते हुए भी प्रान्तीय था और दूसरा अंतर्राष्ट्रीय होते हुए भी धार्मिक था। प्रान्तीय लिबरल दल ने सरकार से सुधार की माँग करते हुए 'साम्राज्यान्तर्गत स्वशासन' पर जोर दिया।[3] उस समय तक हिन्दू महासभा राजनीति के अपेक्षा धर्म से अधिक प्रभावित थी।[4] परन्तु जब आंदोलन तीव्र गति से चल रहा था ठीक उसी समय ४ फरवरी १९२२ को चौरीचौरा कांड होने के कारण उसे बन्द करना पड़ा।[5] चौरीचौरा कांड से समस्त भारत आश्चर्यचकित रह गया। क्योंकि यह गांधी जी के असहयोग आन्दोलन की पराजय थी। भौतिक दृष्टि से असहयोग आन्दोलन असफल रहा, क्योंकि स्वराज्य के लक्ष्य तक वह नहीं पहुँच पाया था।[6] परन्तु असहयोग तो मस्तिष्क की एक दशा है, जो राष्ट्रीय जागरण का एक साधन था। गांधी जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन को क्रान्तिकारी रूप प्रदान किया। आंदोलन स्थगन से असहयोग का सामूहिक रूप समाप्त हो गया और राजनीति में व्यक्तिगत एवं प्रत्यक्ष कार्यवाही की नीति व्यवहृत हुई। यह नीति वास्तव में स्वतन्त्रता संग्राम के लिए महान् देन थी।

आन्दोलन स्थगन के बाद भारतीय राजनीतिक आकाश अनिश्चितता के बादलों से घिर गया, परन्तु स्वराज्य दल ने उस आवश्यकता की पूर्ति की। वास्तव में स्वराज्य दल कांग्रेस द्वारा आन्दोलन स्थगन एवं उसके पुनः चलाये जाने के मध्य में उत्पन्न अस्पष्टता की खाई को पाटने का काम किया। स्वराज दल ने सहयोगियों और असहयोगियों को एक रंगमंच पर लाने का काम किया। ऐसे समय में जब कि भारतीय राजनीति आपसी विरोध में उलझी हुई थी उसी समय सरकार ने साइमन कमीशन के नियुक्ति की घोषणा की। जिसका भारतीय राजनीतिक क्षितिज पर आशातीत प्रभाव हुआ। अधिकांश राजनीतिक दलों ने कमीशन बहिष्कार का निश्चय किया और भारत सचिव के चुनौती का उत्तर नेहरू कमेटी

1 'आज', १५ फरवरी, १९२१, पृ० ३
2 वही, ७ अप्रैल, १९२४, पृ० ४
3 'The Leader', 10 August, 1921, p. 7.
4 The Indian Annual Register, 1923, Part II, p. 129.
5 Full text of Bardoli Resolution, India in 1921-22, 'Appendix 9', pp. 343-45
6 India in 1922-23, p. 298.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की स्थापना के रूप में देने का निश्चय किया गया।[१] कांग्रेस ने कमीशन का बहिष्कार इस आधार पर करने का निश्चय लिया कि "भारत के योग्यता की जाँच करने का अधिकार ब्रिटिश सरकार को नहीं है।"[२] साथ ही कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य को अपना लक्ष्य घोषित किया।[३] प्रान्तीय लिबरल दल ने इसे राष्ट्रीय अपमान का सूचक माना।[४] स्वराजिस्टों के अनुसार यह उपहास एवं तिरस्कार की वस्तु थी।[५] कमीशन बहिष्कार एवं समर्थन के प्रश्न को लेकर मुसलिम लीग दो दलों में विभक्त हो गई। मिस्टर जिन्ना का नेशनलिस्ट गुट कमीशन बहिष्कार के पक्ष में था तो शफी गुट कमीशन सहयोग के पक्ष में।[६] मिस्टर जिन्ना ने कमीशन बहिष्कार को ब्रिटेन के विरुद्ध संवैधानिक युद्ध की संज्ञा दी।[७] साथ ही शफी गुट ने कांग्रेस के पूर्ण स्वराज्य सम्बन्धी प्रस्ताव का विरोध करने का निश्चय किया[८] और मुसलमानों को अधिकाधिक अधिकार दिलाने का भी निश्चय किया।[९] इस प्रकार से लीग ने द्वैध नीति का पालन किया। संयुक्त प्रान्तीय विधान परिषद ने भी कमीशन बहिष्कार का निश्चय किया।[१०]

कमीशन नियुक्ति तथा उसकी प्रतिकूल प्रतिक्रिया को देखकर भारत सचिव ने मुसलिम सहयोग प्राप्त करने के लिए वाइसराय लार्ड इरविन को पत्र लिखा। इस प्रकार से 'फूट डालो और शासन करो' की आड़ में ब्रिटिश साम्राज्यवाद को स्थायित्व देने का प्रयास किया जाने लगा।

उत्तर प्रदेश में साम्प्रदायिक राजनीति भी तीव्र गति से काम कर रही थी। १९२२ से लेकर १९२७ तक इस प्रान्त में कुल ९१ साम्प्रदायिक दंगे हुए, जिसमें हताहतों की संख्या २३१२ थी।[११] यह बड़े दुःख का विषय है कि साम्प्रदायिक दंगे सबसे अधिक उत्तर प्रदेश में ही हुए। प्रत्येक पक्ष एक दूसरे पर दंगों के प्रारम्भ करने की जिम्मेदारी डालने लगा। वास्तव में ये दंगे गांधी जी के दर्शन की विफलता के सूचक थे। गांधी जी ने स्वीकार किया है कि "१३०० साल के साम्राज्यवादी शासन ने मुसलमानों को लड़ाकू और खूनी बना दिया है।"[१२] यद्यपि गांधी जी ने यह दिखाने का प्रयास किया कि "कुरान

1 U.P. Administrative Report 1927-28, Summary p. 3.
2 Indian Quarterly Register, 1927, Post II, pp. 354-55.
3 The Report of the fourty Second Session of Indian National Congress, Madras (1927), p. 15.
4 'The Pioneer', November 30, 1927, p. 3. and 'The Leader', 14 Oct. 1927, p. 10.
5 'The Pioneer', November 11, 1927, p. 1.
6 India in 1927-28, pp. 61-62.
7 'The Leader', January 4, 1928, p. 11.
8 'Indian Review', January 1928, p. 58.
9 Ibid, March, 1928, p. 3.
10 U.P. Legislative Council Proceedings, Vol. XXXVII, 25th February 1928, pp. 323-45.
11 Ibid, 21 Dec. 1927, Vol. XXXVI, Appendix D, pp. 460-477.
12 'Young India', 19 January, 1924.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी अहिंसा की शिक्षा देता है।"[१] परन्तु इसे कट्टर मुसलमानों ने कांग्रेस की चाल समझ कर ठुकरा दिया।[२] वास्तव में हिन्दू-मुसलिम दंगों का कारण यह था कि "मुसलमान स्वभावतः लड़ाकू और हिन्दू धर्मभीरू होते हैं।"[३] यही अहिंसा का गुप्त रहस्य है। गांधी जी ने हिन्दुओं के कड़े रुख का हमेशा विरोध किया। एक तरफ तो गांधी जी ने मुसलमानों को लड़ाकू एवं झगड़ालू प्रवृत्ति का बतलाया और दूसरी ओर उन्होंने उन्हें मिलाने का प्रयास किया जबकि लड़ाकू एवं झगड़ालू को प्रेम के पाश में आबद्ध नहीं किया जा सकता। इस प्रकार से गांधी जी ने साम्प्रदायिक समस्या को ठीक से नहीं समझा था।

जन-कल्याण को ध्यान में रखकर भारत के विधान निर्माण की दिशा में २९ राजनीतिक दलों ने फरवरी, १९२८ को एक सर्वदल सम्मेलन किया, जिसने १ ली मार्च को घोषित किया कि "एक संविधान का निर्माण किया जायेगा जो भारत को पूर्ण दायित्वपूर्ण सरकार प्रदान करेगी।"[४] बम्बई में सर्वदल सम्मेलन ने अपनी ३ माह के बैठक के बाद १९ मई, १९२८ को पंडित मोती लाल नेहरू की अध्यक्षता में एक कमेटी की नियुक्ति की, जिसका कार्य संवैधानिक आधार प्रस्तुत करना था।[५] कमेटी ने अपने प्रतिवेदन में जिसे उसने अगस्त १९२८ को प्रस्तुत किया था, भारत के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य का समर्थन किया।[६] इस प्रकार से कमेटी ने संतुलित मार्ग का अवलम्बन किया, जिसका भारतीय राजनीति पर बुरा प्रभाव पड़ा। साइमन कमीशन की नियुक्ति से भारत में जिस राष्ट्रीय एकता का जन्म हुआ था, नेहरू कमेटी ने उसमें दरार डाल दी। एक बार फिर सभी राजनीतिक दल आपसी विरोध में उलझ पड़े।

कांग्रेस ने नेहरू रिपोर्ट का विरोध इसलिये किया कि उसे अपने लक्ष्य पूर्ण स्वराज्य से पीछे हटना पड़ा था। पं० जवारलाल नेहरू ने 'औपनिवेशिक स्वराज्य' शब्द पर अबाधक विरोध किया। पूर्ण स्वाधीनता का समर्थन करते हुए श्री जवाहर लाल नेहरू ने ३० अगस्त १९२८ को लखनऊ में एक 'स्वाधीनता संघ' का निर्माण किया।[७] संयुक्त प्रान्त में संघ के संघटन का कार्य श्री गणेश शंकर विद्यार्थी को सौंपा गया। किन्तु इस मतभेद के बाद भी कांग्रेस दल में फूट नहीं पड़ी। कांग्रेस ने दिसम्बर, १९२८ में कलकत्ता में समझौते के तौर पर एक प्रस्ताव पास किया, जिसमें कहा गया था कि "ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ३१ दिसम्बर, १९२९ के पहले नेहरू रिपोर्ट को यदि पूर्ण स्वीकार कर लेगी तो कांग्रेस उक्त प्रस्तावित माँग को मान लेगी।"[८]

---

1 Harizan, 7 Oct., 1939.
2 M. K. Gandhi: Communal Unity pp. 66, 232-36, 261-68.
3 'Young India' 29 May, 1924.
4 'The Leader', 3 March, 1928, p. 11.
5 D. Grahm Pole; India in Transition, p. 99.
6 All Parties Conference, 1928, Report of the committee published By the General Secretary, A.I.C.C. Allahabad Second Ed., 27th August 1928, p.24.
7 Draft Constitution, Indian Quarterly Register, 1928, Part II, pp. 513-16.
8 Report of the Fourty Third Session of the Indian National Congress, Calcutta, 1928, p. 107

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेहरू रिपोर्ट पर मुसलिम लीग की बड़ी ही विचित्र प्रतिक्रिया हुई। २ अक्टूबर १९२८ को नैनीताल में प्रान्तीय मुसलिम लीग के एक दल ने नेहरू रिपोर्ट पर आस्था व्यक्त की।[1] साथ ही प्रान्तीय लीग का शफी गुट इसे एक महान् भूल माना और साथ ही एक प्रतिक्रियावादी और अलोकतांत्रिक वस्तु कहा।[2] अन्त में दिल्ली में अखिल भारतीय मुसलिम सम्मेलन हुआ, जिसमें नेहरू रिपोर्ट को अस्वीकार कर दिया गया।[3] वास्तव में प्रान्तीय मुसलिम लीग अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक थी।

संयुक्त प्रान्तीय अन्य राजनीतिक दलों की प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न रूपों में व्यक्त हुई प्रान्तीय कृषक सम्मेलन ने १२ अक्टूबर, १९२८ को मेरठ में एक प्रस्ताव पास करके कमीशन बहिष्कार एवं नेहरू रिपोर्ट को स्वीकार करने की घोषणा की।[4] २७ अक्टूबर, १९२८ को झाँसी में संयुक्त प्रान्तीय सर्वदल सम्मेलन ने भारत के लिए पूर्ण स्वराज्य की घोषणा की और नेहरू रिपोर्ट को स्वीकार करने का प्रस्ताव पास किया।[5] फरूखाबाद में ३० मार्च, १९२९ को प्रान्तीय सर्वदल सम्मेलन ने कमीशन के साथ ही साथ भारतीय कमेटियों को भी एक तमाशा बतलाया। और यहीं पर सम्मेलन ने भावी आन्दोलन को, जिसमें कर बन्दी भी शामिल था. चलाने का प्रस्ताव पास किया, जिसे जुलाई में अखिल भारतीय कांग्रेस ने लखनऊ में स्वीकार कर लिया।[6]

लिबरल दल ने नेहरू रिपोर्ट का स्वागत इसलिए किया कि उसमें पृथक निर्वाचन की व्यवस्था की गई थी।[7]

ऐसे समय में जबकि प्रान्तीय राजनीति काफी विक्षुब्ध थी, उसी समय साइमन कमीशन ने संयुक्त प्रान्त में अपने दौरे का कार्यक्रम बनाया। कमीशन जहाँ-जहाँ भी गया, उसका प्रभावशाली विरोध किया गया।[8] प्रान्तीय कम्युनिस्ट दल राष्ट्रीय आन्दोलन का विरोधी था।[9] हिन्दू महासभा चुपचाप मुस्लिम राजनीति के उतार चढ़ाव को देख रही थी।

इस अनिश्चितता के वातावरण में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन दिसम्बर, १९२९ मेंलाहौर में हुआ, जिसमें निश्चय किया गया कि कांग्रेस ब्रिटिश सरकार द्वारा नेहरू रिपोर्ट को निश्चित समय में स्वीकार न किये जाने पर सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलायेगी।[10]

---

1 'The Leader' 4 Oct., 1928, p. 9.
2 Ibid, 18 Oct., 1928, p. 11.
3 D. G. Tendulkar; Mahatma, Vol. II, p. 446.
4 U. P. Administrative Report, 1927-28, Summary p. 5.
5 Indian Quarterly Register, 1928, Part II, p. 438.
6 U.P. Administrative Report, 1928-29, Summary p. 3.
7 National Liberal Federation, Allahabad, 1929, p. 40-41.
8 Indian Quarterly Register, 1929, part I, pp. 44-48.
9 'The Pioneer', 8 February, 1929, pp. 1 and 4.
10 Report of the Fourty-Four Session of the Indian National Congress, Lahore, (1929) p. 88.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी ही स्थिति में वाइसराय लार्ड इरविन ने ३१ अक्टूबर, १९२९ को घोषित किया कि १९१७की घोषणा को व्यावहारिक रूप देने के लिए शीघ्र ही एक गोलमेज सम्मेलन लंदन में बुलाया जायेगा।[१] वाइसराय की घोषणा को लेकर सभी राजनीतिक दल आपसी विरोध में उलझ गये। मिस्टर जिन्ना के अनुसार उक्त घोषणा भारतीय समस्याओं को सुलझाने का सुअवसर थी।[२] कांग्रेस के अनुसार घोषणा असंतोषप्रद थी[३] और लिबरल दल ने उसका स्वागत किया।[४]

इस प्रकार अंग्रेज 'फूट डालो और शासन करो' की नीति में पूर्णतया सफल रहे। गांधी युग के प्रारम्भिक चरण में प्रान्तीय राजनीति परस्पर विरोधी शिविरों में विभक्त थी, जिसका अंग्रेजों ने लाभ उठाया।

———

1 'The Leader', 2 November, 1929, p. 9.
2 Ibid, 4 November, 1929, p. 9.
3 'आज' २ जनवरी १९३० पृ० ५.
4 'The Pioneer', 1 January, 1930, p. 9.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिकता और गान्धी : एक अनुचिन्तन

चन्द्रभाल द्विवेदी

मनोविज्ञान विभाग, का०हि०वि०वि०

'आज का जन-जीवन भौतिकता की अति से बीमार है। हमारी सभ्यता निर्मम पूँजीवाद और उसी तरह के साम्यवाद से तंग आ गई है। किन्हीं नये मूल्यों का (धर्म का) कोई चिह्न दिखाई नहीं देता। फिर भी वे हमारे चारों ओर के वातावरण में विद्यमान हैं। हम उसके बारे में कुछ भी नहीं जानते। इसके सिवा कि वह आज के साम्यवाद या ईसाई मत से बिल्कुल भिन्न होगा ?' कालिन विल्सन के इस उद्धरण को सामने रखते हुए आज के जन-जीवन, आधुनिकता से, अत्याधुनिकता से सन्त्रस्त, संक्रमणकालीन जन-जीवन के माध्यम से चिरपुराण व चिरनवीन गान्धी की खोज। आध्यात्मिक चेतना के पुरोधा, मानव की अन्तर्निहित चेतन सत्ता में निगूढ़ विश्वास रखने वाले, सत्य के अन्वेषी गांधी की खोज नवीन प्रत्ययों के आधार पर। आध्यात्मिक चेतना—क्या होती है यह ? क्या यह वैयक्तिक चेतना से आगे की वस्तु है ? भिन्न-भिन्न अवसरों पर तदनुकूल निर्णय ले सकने वाली गांधी की मनीषा के सन्दर्भ में इस चेतना का क्या अर्थ है ?

ये कुछ प्रश्न हैं जो आधुनिकता के संबंध में गांधी पर विचार करने को बाध्य करते हैं और जिनकी तीक्ष्णता आज के सर्वतोमुखी पराङ्ग प्रकृति वाले भारतीय के सन्दर्भ में अत्यन्त महत्वपूर्ण हो उठी है। इतिहास के किसी भी स्तर पर मनुष्य ने स्वयं को अपने अतीत और भविष्य से इतना अधिक विछिन्न अनुभव नहीं किया होगा। मानवीय चेष्टाओं की पराजय इतने निदारुण रूप में पहले कभी उसके सामने उजागर नहीं हुई। वर्तमान की देहरी पर खड़ा मैं अपने चतुर्दिक दृष्टि निक्षेप करता हुआ, सर्वत्र सन्त्रास, विघटन, कुण्ठा, निराशा, प्रतिबद्धता की बातें सुनता हुआ एक समन्वय-सूत्र ढूँढ़ने की चेष्टा में लगा हुआ हूँ।

आज के आत्महीन मानव की समस्या शैतान को पराजित करने की नहीं रह गई है—शैतान इतने अधिक रूपों में, हममें, आपमें, सबमें अनजाने भाव से अथवा जबर्दस्ती के भाव में जमा बैठा है कि उसको पहचान पाना भी एक समस्या बन गई है। शैतान ईश्वर की सत्ता को निरन्तर चुनौती देता हुआ, स्वयं के ईश्वरत्व का दम भरता हुआ चतुर्दिक परिव्याप्त है और वैसे समय में गांधी की खोज सलीबों की खोज की तरह की ही है तो कहीं नहीं।

हम सब हैं पोले मनुष्य
हम हैं ठूँस-ठूँस कर भरे लोग,
एक दूसरे की ओर झुकते हुए
भूसे से भरे दिमाग वाले। ओह !
हमारी निर्बल आवाजें, जब
हम एक दूसरे से फुसफुसाते हैं,
शान्त और निरर्थक हो जाती हैं,
जैसे सूखे घास में बहती हवा,
अथवा टूटे ग्लास पर चलते चूहों के पाँव·····।

—टी० एस० इलियट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज हम जिन परिस्थितियों में जी रहे हैं, इलियट की कविता उनका एक रूप प्रस्तुत करती है। इन परिस्थितियों में जीवन के मूल्य निरन्तर क्षय हो रहे हैं और नपुंसकता, विवशता, आक्रोश और अपराजेय निराशा का भाव दिन-प्रति-दिन बढ़ता जा रहा है। हमारे देश ने बहुत उन्नति की है, विश्वविद्यालयों की संख्या में रेकर्ड वृद्धि हुई है, शिक्षित-बेरोजगारों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है और बहस-मुबाहिसें, संगोष्ठियाँ अधिक होने लगी हैं। किन्तु इन बहस मुबाहिसों के बीच का मानव गायब हो गया है, 'न्यूक्लियस' खो गया है। गणेश की प्रतिमा बनाने जाकर हमने बानर की रचना कर डाली है; अन्य अनुकरण कर अपना स्वयं का सिर काट डालने वाले बानर की भाँति। हमारे देश की मेधा, प्रतिभा विदेश में जी रही है, एक खुराना की बात छोड़ें लाखों खुराना विदेश में हैं। हमने रेगिस्तानी संस्कृति को जन्म दे दिया है, उसको पल्लवित पुष्पित करने का गौरव हमारे सिर पर है। सारांशतः हम ऐसी अवस्था पर पहुँच गये हैं जहाँ पहुँच कर यह आवश्यक हो जाता है कि हम एक बार पुनः अपनी स्थितियों का सर्वेक्षण करें और हताशा, निराशा, कुण्ठा व मूल्यहीनता से मुक्त होने का प्रयास करें। आज की बौद्धिक नपुंसकता के स्रोत बिन्दु तक पहुँचे बिना, जहाँ से हमने आधुनिक होने का दावा करना शुरू कर दिया, हमारे तत्संबंधी निर्णय उसी प्रकार एकांगी, अतः अग्राह्य होंगे जितना यह कह देना कि हमारा भारतीय जीवन एक दम खराब और पाश्चात्य एक दम सुन्दर व स्वीकार्य है। इस संदर्भ में परिस्थितियों के सम्पूर्ण विश्लेषण, जिसकी अनिवार्यता असंदिग्ध है, की अपेक्षा अपने देश के पुनर्जागरण के उस ऐतिहासिक सन्दर्भ को खोजना अत्यधिक महत्व का कार्य है जहाँ से सारा का सारा आँवा ही टेढ़ा हो गया और फलतः सारी संस्कृति का विकास एक रुग्ण व वक्र संस्कृति के रूप में हुआ।

उपरोक्त ऐतिहासिक सन्दर्भ के पर्यालोचन में सर्वप्रथम १९ वीं शती के पूर्वार्ध से प्रारम्भ करना अधिक समीचीन होगा। १८५७ के स्वातन्त्र्य समर के पूर्व का काल दो प्रकार की प्रवृत्तियों को लिए हुए आता है। एक वह, जो आधुनिकता को राष्ट्रीय संदर्भ में और एकरूपता को सांस्कृतिक सन्दर्भ में देखने की चेष्टा करती थी और स्वभावतः पाश्चात्य प्रभाव का विरोध करना ही एकमात्र कर्तव्य मानती थी। इस प्रवृत्ति के पोषक के रूप में आर्य समाज सामने आता है। दूसरी प्रवृत्ति पाश्चात्य प्रारूप में भारतीय चेतना को आरोपित करके विविधता में एकरूपता को प्रस्फुटित करना चाहते थे। इस प्रवृत्ति के उद्गाता के रूप में राजा राम मोहन राय और उनका ब्राह्म समाज सामने आता है।

आर्य समाज ने अंग्रेजी जीवन पद्धति के विरुद्ध एक जीवन पद्धति देने की कोशिश की, अंग्रेजी मिशनरी स्कूलों के बदले गुरुकुल, अंग्रेजीकरण के विरोध में संस्कृत का उपयोग व हिन्दी का समर्थन किया। दूसरी दृष्टि, जो शासन की कृपापात्र भी थी पाश्चात्य विचारों को शीघ्रातिशीघ्र आत्मसात कराने के माध्यम से भारत को आधुनिक बनाने में प्रयत्नशील थी। लगता है प्रथम दृष्टि एक सन्तुलित विकास की दिशा में थी जब कि दूसरी दृष्टि असन्तुलित। यह और बात है कि दोनों दृष्टियाँ पूर्णतया सफल न हो सकीं।

दूसरे चरण पर १८५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम का काल आता है जब कि आरोपित ईसाईयत, जिसे अंग्रेज इतिहासकार व उनके पद-धूलि से मस्तक को शोभायमान करने वाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय इतिहासकार भारत का आधुनिकीकरण मानते हैं, के विरुद्ध पूरे देश ने एक स्वर से विद्रोह किया। बिकी हुई या गिरवी रखी हुई बुद्धि से सारे इतिहासज्ञों ने इस विद्रोह को सीपाही विद्रोह कह कर छुट्टी पा ली है। इन इतिहासकारों ने तत्कालीन भारतीय जनमानस की गहराइयों में जाने के बजाय सुअर और गाय की चरबी को आधार बनाकर एक विद्रोह करार दे दिया है और उसे पढ़कर भारत का भावी प्रधान मंत्री तैयार होता है : घृणा व ईर्ष्या की बीज वाला पेड़।

वस्तुतः यह भारतीय पुनर्जागरण का दूसरा चरण था जब गत सौ वर्षों का संचित आक्रोश पूंजीभूत होकर विद्रोह के ताने-बाने में सुलगती अग्नि में पड़ती हुई घृताहुति से प्रज्ज्वलित होकर सशस्त्र क्रान्ति के रूप में जाग गया था। इस विद्रोह का मुख्य उद्देश्य भारतीय जीवन पद्धति की सुरक्षा थी। राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य प्राप्त करने का सुनियोजित प्रयास था, यह नकली भारतीयता और उग्र राष्ट्रीयता का युद्ध था। यह विद्रोह सफल रहा या असफल उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना यह कि 'इंजेक्टेड अंग्रेजियत' के पाँव उखड़ गये भारतीय जीवन में व्याप्त संस्कार व पद्धति के कारण।

पुनर्जागरण के तीसरे दौर के रूप में उन्नीसवीं शती का अंतिम चरण हमारे सामने आता है। १८५७ के स्वातन्त्र्य समर ने हमारे मनोबल को तोड़ दिया था। आर्य समाज, जो एक विवेकपूर्ण जीवन पद्धति की खोज कर रहा था, ईसाई एवं मुस्लिम धर्मों के छिद्रान्वेषण में लीन हो गया और ब्राह्म-समाज, समाज सुधार में। सबसे अधिक हानि यह हुई कि समाज का वह वर्ग जो पाश्चात्य चिन्तन व विचार के आतंक में घोर विश्वास रखता था और जिसने यह स्वीकार कर लिया था कि मात्र अंग्रेजों के ही माध्यम से देश का कल्याण संभव है, धीरे-धीरे जोर पकड़ने लगा। अतः अंग्रेजों को कुचक्र चलाने के लिए अब बिना बुलाए मुसाहिब प्राप्त होते थे। यह मैकाले की शिक्षा पद्धति का परिणाम था जो जड़-हीन और आधार-हीन बेल के रूप में पनपा और आज तक पनप रहा है। वह वर्ग भारतीय जनमानस का प्रतिनिधि नहीं था, वह अंग्रेजों के तलवे चाटने वाला वर्ग, अंग्रेजों के अनुसार चलकर आधुनिक बनना चाहता था।

बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में, जो आधुनिकता के विकास का चौथा व अन्तिम चरण है, भारत का बौद्धिक वर्ग दो अलग-अलग हिस्सों में बँटा हुआ था और दोनों ही पश्चिम के आधुनिकीकरण की सापेक्षता में भारत को नये सन्दर्भ से सम्पृक्त कराने के इच्छुक थे। इसमें पहले वर्ग में राजाराम मोहन राय, केशवचन्द्र सेन आदि आते हैं। दूसरा वर्ग अधिक महत्व का है, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द आदि की परम्परा में, लाजपतराय, लोकमान्य तिलक आदि आते हैं। जो भारतीय आस्था के स्वर को और अधिक प्रखरता से प्रस्तुत करते हैं : यहीं आगमन होता है महात्मा गांधी का। गान्धी जी ने उस आत्म-विश्वास को और अधिक गहरे और व्यापक स्वर में उद्घोषित किया, राष्ट्रीय सन्दर्भ के साथ जोड़कर पुनः एकाकार किया। अंग्रेजों ने हमारे कृषि प्रधान देश की ग्राम व्यवस्था, ग्राम पंचायत आदि को जिस बेरहमी से तोड़ा था, गान्धी ने उसे पुनः स्थापित करने का संकल्प किया, सारा जीवन-दर्शन नये सिरे से गठन करने का बीड़ा उठाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ओर उन्होंने देश के इतिहास और परम्परा को वर्तमान में खोजने की चेष्टा की, इसके साथ ही यथार्थ को पूर्णतया ग्रहण किया दूसरे पश्चिमी आधुनिक दृष्टि को मूल्य बोध के गहरे स्तर पर निजी संदर्भों में समुपयोजित करने की चेष्टा की। गान्धी का समस्त मानवतावाद, विश्वबन्धुत्व, सत्याग्रह, अहिंसावाद और सर्वोदय न केवल देश की परम्पराओं से गृहीत और विकसित हुआ है वरन् इसकी परिकल्पना में देश के यथार्थ की गहरी पकड़ रही है। इस प्रकार गान्धी के व्यक्तित्व और चिन्तन में वे सारी सम्भावनाएँ निहित रही हैं जिनके आधार पर भारत की बौद्धिक परिस्थिति आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गतिशील करने में सक्षम हो सकती है।

गान्धी का वह प्रभाव जो स्वातन्त्र्य पूर्व भारत में था, आज नहीं है। उनके राजनीतिक उत्तराधिकारी श्री नेहरू एक ऐसे वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में आते हैं जो अन्तर्राष्ट्रीयता व विश्वबन्धुत्व के नाम पर यूरोप को महत्व देने का अभ्यस्त रहा है और आधुनिकीकरण के नाम पर पश्चिमीकरण का समर्थक। स्वाधीनता प्राप्ति के तत्काल बाद ही गांधी की हत्या से देश की प्रगति को सही दिशा देने वाला संकेत भी दृष्टि से ओझल हो जाता है। श्री नेहरू के साथ भारत का वह चाटुकार बुद्धिजीवी वर्ग, जो मैकाले का उत्तराधिकारी माना जा सकता है, भी रहा है जो भारत को यूरोप बनाने में अधिक आनंद का अनुभव करता है, अंग्रेजी बोलना गौरव और अपने को भारतीय कहना दुःखद मानता है। यह वर्ग पश्चिम के अनुसार हो जाने मात्र को आधुनिकता मानता है जिसका सीधा अर्थ है कि हमारी सारी प्रगति अनुकरण से ही संभव है।

हमारा बुद्धिजीवी और बौद्धिक वर्ग कथनी और करनी, चिन्तन और आचरण, घर और बाहर के स्तर पर विरोधाभासों में जीने का अभ्यस्त है।

प्रश्न रह जाता है कि व्यावहारिक स्तर पर क्या करणीय है? हमें किन दिशाओं में गतिशील होना है, किन आयामों में हमारी विचार-सरणि किस प्रकार की होगी। आज के जीवन और यथार्थ से हमको दार्शनिक दृष्टि विकसित करनी है, जिससे नयी जीवन पद्धतियों, नयी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्थाओं तथा समस्याओं को सही आधार मिल सके। पश्चिम से इन सबको उनकी दृष्टि के साथ हम उधार नहीं ले सकते, यदि लिया तो इनका विकास गत्यात्मक नहीं होगा। ये मृत हो जायेंगे, न तो भारतीय रहेंगे और न पश्चिमी। 'ईस्ट इज़ ईस्ट एण्ड वेस्ट इज़ वेस्ट, बोथ कैन् नाट मीट टुगेदर' (प्राच्य प्राच्य है और पाश्चात्य पाश्चात्य, दोनों एक दूसरे से नहीं मिल सकते)—किपलिंग का यह कथन सत्य मालूम देता है किन्तु पुरानी दृष्टि को भी हम आधार नहीं बना सकते, दृष्टि सन्दर्भ बदल जाने के कारण। वास्तव में एक नयी जीवन दृष्टि, अपने संदर्भों से विकसित करनी होगी।

और क्या गान्धी इस जीवन दृष्टि के विकास में सहायक नहीं बन सकते हैं? विचार प्रवाह के नूतन क्षितिज नहीं दिखा पाते? उत्तर सकारात्मक होगा किन्तु कार्य····· एक विराट नकार·····नकारात्मक!

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरोधाभासी तत्वों का संतुलित संयोजन
गांधी की समन्वयवादी दृष्टि

सुरेन्द्रप्रसाद नारायण सिंह
लेक्चरर, राजनीति-शास्त्र विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

गांधी आधुनिक युग के जटिल परिवेश की सहजतम लेकिन सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि हैं—परन्तु अपने जीवन और स्वभाव से ही। इससे परे यदि उनकी कार्यप्रणाली, मान्यताओं, उद्देश्यों आदि को सामने रख कर उनके व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जाय तो शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति मानव जाति के इतिहास में दिखाई देगा, जो गांधी के समान विवादास्पद हो। गांधी जी के व्यक्तित्व का 'बहुमुखत्व' एवं महान् समन्वयवादिता-शक्ति ही वस्तुतः इस विवादास्पदता का कारण है। और यही उनके विचारों की महानता एवं स्थायित्व का रहस्य भी है।

गांधी अपने देश की कोटि-कोटि जनता के लिए एक 'महात्मा' थे, परन्तु ऐसे महात्मा—जिसका कार्य-क्षेत्र राजनीति एवं समाज-सुधारों से सम्बन्ध रखता था। वे एक "राष्ट्रीयता-विहीन गरीब देश की गुलाम जनता" के 'राष्ट्रपिता' थे। इस नाते ब्रिटिश साम्राज्यवादी शक्ति के सर्वोपरि शत्रु भी। परन्तु यह शत्रुता ऐसी थी कि किसी भी अन्य विरोधी तत्व की तुलना में अंग्रेजों के लिए उनका 'असहयोग' सदैव ही अधिक सह्य होता था। वे विधि-व्यवस्था के पालन करने वालों में अपना अद्वितीय स्थान रखते हैं। परन्तु इसी के साथ यह भी उतना ही सत्य है कि उनसे बड़ा 'कानून तोड़ने वाला' मानव जाति के इतिहास में अब तक पैदा नहीं हो सका है।

भारत में अब तक कोई भी ऐसा राजनीतिज्ञ या समाज-सुधारक पैदा नहीं हो सका है जो राजनीति या सामाजिक क्षेत्र में गांधी जैसी क्रांति ला सका है। फिर भी गांधी क्रान्तिकारियों के कट्टर शत्रु भी थे पर साथ ही उनके नेता तथा प्रेरणा के एक महत्वपूर्ण श्रोत भी। वे समाजवादियों एवं अराजकतावादियों से मीलों आगे थे। परन्तु उन्हें कोई भी ऐसा व्यक्ति 'अपना' कहने को तैयार नहीं था। उन्हें पूँजीवाद का हिमायती माना गया, परन्तु उन्हें पूँजीवाद की मूलभूत मान्यताओं पर कठोरतम प्रहार करते भी देखा जा सकता है। गांधी ने भारत के अतीत के गौरव को जिस श्रद्धा एवं विश्वास के साथ गले लगाया, ठीक उसी प्रकार पाश्चात्य सभ्यता के जीवन-मूल्यों को भी। इसी कारण वे जितने ही प्रतिक्रियावादी लगते हैं, उतने ही प्रगतिवादी भी। इसी प्रकार नैतिक जीवन-मूल्यों के महत्व की घोषणा के साथ जीवन की व्यावहारिक समस्याओं के रचनात्मक-समाधान का प्रयास उन्हें कल्पनावादी और व्यवहारवादी दोनों ही बना देता है।

'राष्ट्रीय-हितों' की प्राप्ति उनका 'स्वधर्म' तो था, परन्तु उतनी ही उत्कट आकांक्षा उन्होंने मानव-कल्याण के प्रति भी व्यक्त की। इसके फलस्वरूप वे राष्ट्रवादी भी दिखाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देते हैं तो एकात्मवादी और अन्तर्राष्ट्रवादी भी। इसी प्रकार शान्ति के वे अग्रदूत तो थे परन्तु संघर्ष की जीवन्त मूर्ति भी। वे प्रजातंत्र के कट्टर समर्थक होकर भी आजीवन कांग्रेस के एकमात्र नियामक एवं अधिपति बने रहे। उनमें सैनिकों के समान अनुशासन भावना थी तो तपस्वी की भाँति क्षमा भाव भी। वे हिन्दूओं की मणि तो थे परन्तु वैसे हिन्दू नहीं जिसका जीवन ही कर्मकाण्ड पर आश्रित था। इन सबके फलस्वरूप वे जिस प्रकार युग से आगे जाते दिखाई देते हैं उसी प्रकार पीछे लौटते हुए भी।

उन्होंने आजीवन हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए कार्य किया, परन्तु सम्प्रदायवादियों ने उन्हें सदैव ही बेगाना समझा। भारत के बड़े-से-बड़े पूँजीपति की अट्टालिकाओं में बैठकर भी उन्होंने मजदूरों की आय-वृद्धि सम्बन्धी माँगों का समर्थन किया। इसी प्रकार उन्होंने महिलाओं की समानता का पूर्ण भरोसा तो पैदा किया परन्तु प्राचीन मान्यताओं के बन्धन को रंच मात्र भी शिथिल किये बिना। वे देश के सबसे बड़े गो भक्त थे परन्तु गोहत्या में सहयोग करने का लांछन भी शिरोधार्य किया। इस प्रकार वे भारत में आधुनिकता के अग्रदूत बनकर भी पाश्चात्य चश्मे से देखने पर परम्परावादी ही प्रतीत होंगे।

गांधी जी अहिंसा को 'परम धर्म' मानते थे परन्तु इस पर भी कायरता उनके लिए अक्षम्य थी। उनके अनुसार सत्य ही आचरण का एकमात्र संचालक तत्व हो सकता था, परन्तु वह उनके लिए सदैव ही अन्वेषण का विषय बना रहा। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए संघर्ष करने वाली एकमात्र राजनीतिक प्रतिनिधि-संस्था मानने की प्रवृत्ति दिखाई, परन्तु उसी के साथ यह इच्छा भी जाहिर की कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् कांग्रेस के राजनीतिक स्वरूप को 'लोक-सेवक-दल' के रूप में विघटित हो जाना चाहिये। अपने ऐसे ही विचारों के कारण गांधी जी जीवन भर राज-नीति से सम्बन्धित होकर भी राजनीतिज्ञ का दर्जा प्राप्त करने में असमर्थ दिखाई देते हैं।

गांधी जी का वैयक्तिक जीवन सादगी और भारतीयता के मूल्यों से ओत-प्रोत था। इसका रंग इतना गाढ़ा था कि वह प्रत्यक्ष दृष्टि से पाश्चात्य जीवन-पद्धति से पूर्ण विद्रोह का भान कराने लगता है। फिर भी गांधी जी के ऐसे अनन्य सहयोगियों एवं शिष्यों की संख्या भी कम नहीं दिखाई देती जो पूरी तरह से 'पाश्चात्यता' के गुणों में रंगे हुए थे। इसी की कड़ी है गांधी की वह कार्य पद्धति, जिसका स्वरूप सदैव ही सामूहिकता मूलक तो रहा परन्तु जिसकी सृष्टि न केवल 'वैयक्तिकता' के माध्यम से ही होती थी वरन् लक्ष्य एवं कार्यक्रमों का निर्धारण भी 'आत्मा की आवाज' या 'इलहाम' के माध्यम से ही किया जाता था। फलत: वे जन-जागरण की उपलब्धि होकर भी जन-जागरण के स्रष्टा से दिखाई देते हैं।

आदर्श जीवन के लिए 'उच्च-लक्ष्य' को आवश्यक मानते हुए भी गांधी ने कार्य प्रणाली की शुद्धता को भी आवश्यक माना। अर्थात, साध्य एवं साधन की पवित्रता एवं एकरूपता को अनिवार्य मानने का दृष्टिकोण अभिव्यक्त किया। उन्होंने पारिवेशिक परिवर्तनों के लिए भी हृदय-परिवर्तन की अनिवार्यता स्वीकृत की। विज्ञान की उपादेयता को स्वीकार करते हुए भी उसके प्रकृति-विरोधी स्वरूप को समग्र रूप से अस्वीकृत करने की प्रवृत्तियों का सहजतम उदाहरण केवल इसी एक तथ्य से स्पष्ट किया जा सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ह कि समय बताने के लिए आवश्यक उपकरण घड़ी को उन्होंने पास तो रखा, परन्तु उसे हाथ में बाँधने की अपेक्षा कमर से लटकाना अधिक उचित समझा। ठीक इसी भाँति, प्रजातंत्रीय व्यवस्था उनकी दृष्टि में मानव जाति की श्रेष्ठतम उपलब्धि थी परन्तु उनकी दृष्टि में उसके लिए न तो राजनीतिक दलों की ही आवश्यकता थी और न तो वर्तमान ढंग की नौकरशाही प्रणाली की ही।

गांधी ने आजीवन जहाँ भारतीय-जनता को अंग्रेजी शक्ति के विरुद्ध संगठित किया और संघर्ष की प्रेरणा दी, नेतृत्व प्रदान किया, वहीं वे जनता को अंग्रेजी से प्यार करने की सीख भी देते रहे। ठीक इसी भाँति हिटलर की विस्तारवादी नीतियों की उन्होंने भर्त्सना तो की परन्तु उसी के साथ वे जर्मन जाति की उत्कट राष्ट्रीय भावनाओं तथा रचनात्मक शक्ति की प्रशंसा करने से भी नहीं चूके। इसी प्रकार के भाव उन्होंने साम्यवादी व्यवस्था वाले रूस के विषय में भी प्रकट किए। खादी की उपयोगिता एवं आवश्यकता का भाष्य करते हुए भी उन्होंने पाश्चात्य भेष-भूषा के प्रति उग्र वितृष्णा कभी भी जाहिर न की। मिलों तथा कारखानों की उपयोगिता के पक्ष पर शत-प्रतिशत शंकालु होते हुए भी चरखे एवं करघे की अधिकाधिक उन्नत कोटि विकसित करने की प्रेरणा देना गांधी के इसी विशिष्ट समन्वयवादी दृष्टिकोण का परिचायक है।

आधुनिक भारत में कृषकों, विद्यार्थियों तथा श्रमिकों को राष्ट्रहित के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा, कार्यप्रणाली तथा संगठन प्रदान करने का मुख्यतम श्रेय गांधी जी को हीं प्राप्त होता है। वे ही उन्हें 'असहयोग' का पाठ पढ़ाने वाले 'आदि गुरु' बने। परन्तु इसी के साथ उन्होंने उन्हें अनुशासित, नियंत्रित एवं कार्य संलग्न बने रहने की सीख भी दी। वेस्ट मिनिस्टर के जगमगाते प्रासाद में गोलमेज-सम्मेलनों के दौरान ब्रिटिश-सम्राट् की 'राजभक्त-भारतीय-प्रजा' के सर्वोपरि 'विरोधी संगठन'—'कांग्रेस' के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में संतभाव से बैठकर सम्राट् के सरकार की आलोचना करने का विचित्र कर्त्तव्य गांधी द्वारा ही पूरा किया जा सकता था। गरीब से गरीब भारतीय जनता के परिधान में अपने को प्रस्तुत करके भी धारा प्रवाह अंग्रेजी में अंग्रेजी कूटनीति का उत्तर देना गांधी की इसी समन्वयवादी दृष्टि की मूर्त अभिव्यक्ति है। और इन्हीं तत्वों के कारण गांधी का विरोध विरोध न रहकर 'सहयोगात्मक विरोध', 'असहयोगात्मक-सहयोग' या 'रचनात्मक विरोध' बन जाता है।

हर प्रकार की हिंसा का खंडन परन्तु विश्वयुद्ध के दौरान अपनी स्वतन्त्रता के लिए संघर्षशील भारतीय जनता के लिए ब्रिटेन के हित में सैनिक सेवाओं की प्रेरणा देना भी प्रकारान्तर रूप से इसी समन्वयवादी दृष्टि की अभिव्यक्ति दिखाई देती है क्योंकि उस से गांधी की दृष्टि में 'सत्यरक्षा' का प्रश्न बँधा हुआ था। यहाँ तक कि विवाहित गृहस्थ्य जीवन में ब्रह्मचर्य के पालन की आवश्यता पर गांधी जी द्वारा जिस प्रकार से बल दिया गया वह भी दो विरोधी तत्वों को एक सूत्र में पिरोने का ही प्रयास माना जाना चाहिए। ऐसे ही तत्वों के कारण गांधी का स्वरूप जहाँ एक ओर अत्यन्त धुंधला बनता है तो दूसरी ओर साफ और स्पष्ट भी।

गांधी की कार्य पद्धति का वह मौलिक स्वरूप, जिसका उन्होंने आजीवन व्यवहार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

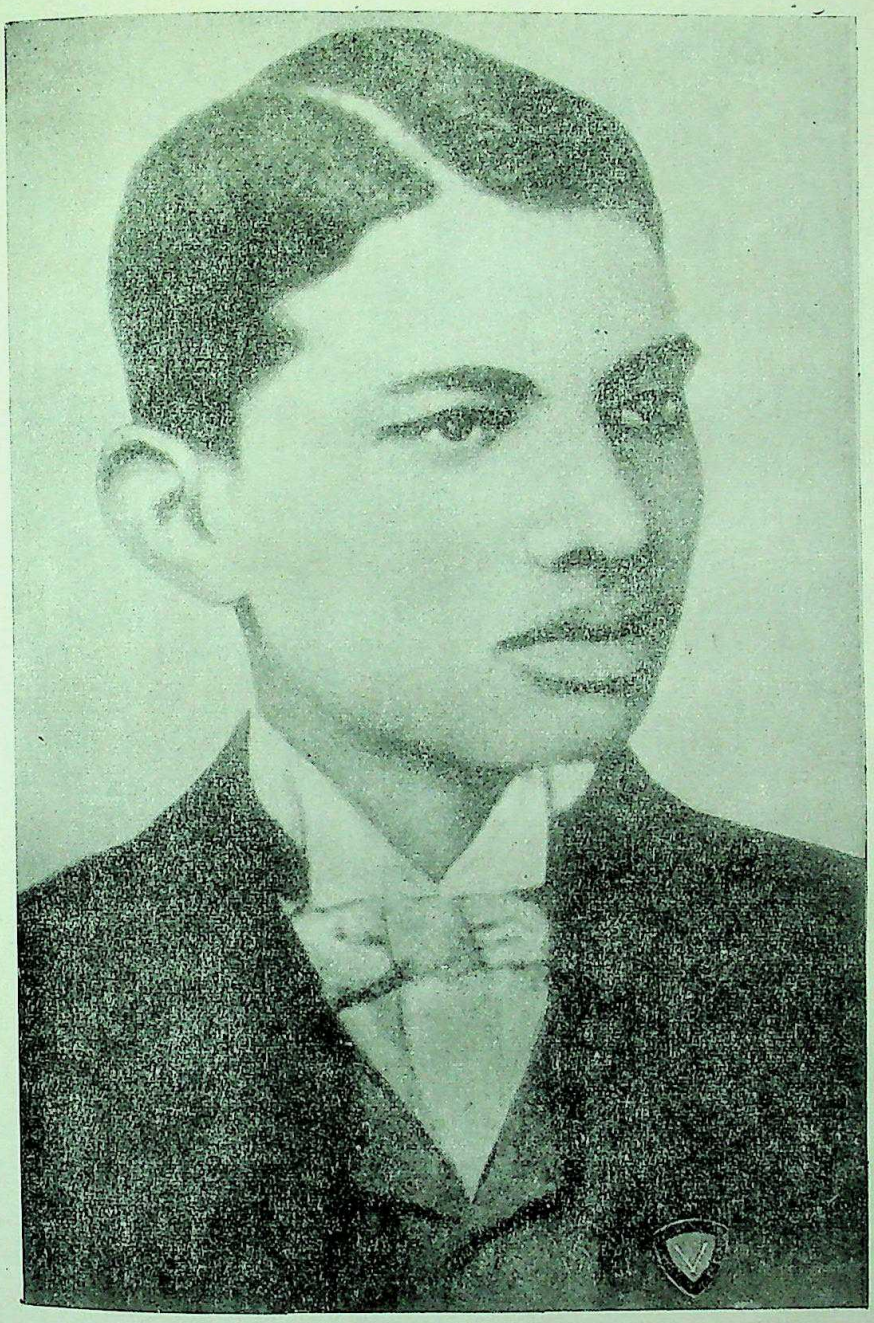

लन्दन में विधि स्नातक गाँधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया स्वयं अपने परिवेश में इस समन्वयवादी प्रवृत्ति का श्रेष्ठतम रूप से प्रतिनिधित्व करती है। इसके निर्धारण के क्रम में जहाँ एक ओर उन्होंने प्रगतिशील जगत् के सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त ग्रहण किए वहीं दूसरी ओर उनका भारतीय संस्करण प्रस्तुत करने का प्रयास भी किया—उन्हें ऐसा स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया जो भारत की कोटि-कोटि सुप्त जनता की भावनाओं को उभाड़ कर उनका रचनात्मक प्रयोग करने में समर्थ होता। यही नहीं, बल्कि उन्होंने अपनी विचारधारा के अन्तर्गत भारतीय समाज के समस्त आर्थिक वर्गों के हितों का समन्वय उपस्थित करने का भी सफल प्रयास किया। इस क्रम में एक ओर उन्होंने यदि खादी का नारा दिया तो स्वदेशी आन्दोलन भी चलाया। एक ओर उन्होंने यदि ग्रामीण-स्वतंत्रता की बात स्वीकार की तो दूसरी ओर कांग्रेस की आर्थिक एवं औद्योगिक नियोजन समिति का भी प्रतिवाद नहीं किया। एक ओर यदि उन्होंने साम्यवादी तत्वों के प्रभाव में गठित किसान सभाओं के अस्तित्व को अग्राह्य नहीं माना तो दूसरी ओर भारतीय नरेन्द्र मंडल से समझौता वार्ता करने में भी पीछे नहीं रहे।

भारत की सामाजिक व्यवस्था के प्रति उनका व्यवहृत दृष्टिकोण भी यथार्थ विवेचना के क्रम में कुछ इसी प्रकार का दिखाई देता है। उदाहरणार्थ, उन्होंने हरिजनों के लिए सामाजिक समानता की माँग करते हुए उनके शोषण, दमन एवं उत्पीड़न का तीव्र विरोध तो किया परन्तु वर्ण-व्यवस्था को ही समाप्त कर देने की बात कभी नहीं कही। बुनियादी शिक्षा व्यवस्था का उनका कार्यक्रम भी इसी प्रकार जहाँ एक ओर 'मध्य-युगीन श्रेणी-व्यवस्था' की प्रवृत्तियों को गले लगाते दिखाई देता है तो दूसरी ओर आधुनिक युग के उपयोगितावादी दृष्टिकोण के आधार पर उनका संयोजन होता है। गांधी की भाषा सम्बन्धी दृष्टि भी उनकी इस विशिष्ट मनोवृत्ति का अपवाद नहीं। एक राष्ट्रीय भाषा के महत्व को स्वीकार करते हुए भी भाषावार प्रान्तों की उपयोगिता को महत्वपूर्ण मानने जैसे तथ्य गांधी की इसी विशिष्ट प्रवृत्ति के परिचायक हैं।

व्यक्तिगत धारणाओं के क्षेत्र में भी गांधी जी के इस समन्वयवादी दृष्टिकोण का प्राधान्य दिखाई देता है। उन्होंने आत्मविश्वास को जैसी प्रधानता दी वह शक्ति एवं आनुगत्य के बीच की ही चीज कही जा सकती है। क्योंकि इसमें विनय तत्व के साथ दृढ़वादिता को भी उतना ही महत्व प्राप्त था। इन सबसे हमारे लिए यह कहना सर्वथा कठिन हो जाता है कि गांधी का सत्याग्रह विनय की कोटि में रखा जाय अथवा हठवादिता की कोटि में।

ऐसे सभी तथ्यों को देखने पर ऐसा लगता है जैसे गांधी जी के विचारों में कोई नयापन नहीं था। परन्तु इससे गांधी के विचारों की महत्ता पर किसी भी प्रकार की आँच नहीं आती। देखा जाय तो कोई भी युग-पुरुष इस रूप में मौलिक या महत्वपूर्ण नहीं होता। विचारों की महत्ता तथ्यों के संयोजन की पूर्णता, ग्राह्यता एवं उपयोगिता आदि के माध्यम से ही अभिव्यक्त होती है। व्याख्या की साम्यकता ही विचारों में 'भार' पैदा करती है। और गांधी जी का दर्शन इस पक्ष में किसी भी भाँति दरिद्र नहीं कहा जा सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस रूप में अतीत और वर्तमान के जीवन-मूल्यों का यथार्थ समस्याओं के परिवेश में संतुलित संयोजन ही गांधी के विचारों की सर्वश्रेष्ठ विशेषता दिखाई देती है। संतुलन का यही तत्व वह विशेषता है जो गांधी को जहाँ एक ओर प्राचीन चिन्तकों की कोटि से अलग करती है वहीं मार्क्स जैसे आधुनिकतम 'अग्रगामी-चिन्तकों' से भी। इसी एक तथ्य के कारण गांधी के विचार एक जीवन्त दर्शन का रूप ग्रहण करने में समर्थ होते हैं। इसी कारण आज पूँजीवादी अमेरिका या अधिनायकवादी पाकिस्तान अथवा साम्यवादी जगत् में भी गांधीवादी तरीकों का महत्व व्यावहारिक रूप से स्वीकार किया जाने लगा है। मार्टिन लूथर किंग जैसे प्रसिद्ध अमेरिकी निग्रो नेता का आचरण, चेकोस्लोकिया पर वारसा पैक्ट के देशों द्वारा की गई हाल की कार्यवाही के समय वहाँ के नागरिकों की प्रतिरोध प्रणाली या पाकिस्तान में अयूबशाही के विरुद्ध चलने वाले पिछले संघर्ष प्रणाली के मध्य गांधीवादी तौर-तरीकों की छाप सहज ही दृष्टिगम्य है। यहाँ तक की चीन की 'सांस्कृतिक-क्रान्ति' की मूल प्रवृत्तियों में भी गांधीवादी तत्वों की छाप प्रच्छन्न रूप से दिखाई देती है। (यद्यपि ऐसा कथन बहुतों को अतिशयोक्तिपूर्ण भी लग सकता है) इसके फलस्वरूप गांधी का दर्शन एक युग विशेष के साथ समाप्त होकर भी नए युग का सहगामी बनते दिखाई देता है।

गांधी द्वारा इस प्रकार के समन्वयन की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि उन्होंने इसे सामान्य जनता के मनोविज्ञान के सही विश्लेषण के आधार पर प्राप्त किया। उन्होंने निचले सामाजिक स्तर की मनोवृत्तियों को जहाँ अपने से ऊँचे स्तर की सामाजिक मनोवृत्तियों तक उठाने का प्रयास किया दूसरी ओर ऊपर या समाज के शीर्ष की मनोवृत्तियों को एक सीढ़ी नीचे लाकर व्यवस्थित करने का प्रयास भी किया। और इसी क्रम में वे जहाँ एक ओर बुद्ध जैसे पैगम्बरों की मनोदृष्टि का अनुसरण करते दिखाई देते हैं तो दूसरी ओर पाश्चात्य जगत् के मानवतावादी चिन्तकों के विचारों के प्रतिनिधि भी। वे समग्र रूप से अतीत, वर्तमान एवं भविष्य पूर्व और पश्चिम, सामान्यता एवं असामान्यता परम्परा एवं प्रगति, धर्म, राजनीति एवं असाम्प्रदायिकता, व्यक्तिवाद एवं बहुलवाद, राष्ट्रवाद एवं अन्तर्राष्ट्रवाद, विश्वास एवं कर्मवाद, अनुदारवाद एवं समाजवाद, यथार्थवाद एवं कल्पनावाद, योगवाद तथा आध्यात्मवाद, रहस्यवाद एवं व्यवहारवाद, द्वन्दवाद एवं समन्वयवाद, पुरुषार्थवाद एवं पलायनवाद, प्रतिक्रियावाद तथा अनुकरणवाद के ऐसे सम्मिश्रण बन जाते हैं जिसका कोई पर्याय नहीं। वे ऐसे व्यक्तित्व की स्थापना करते हैं जो शीर्षस्थ बिन्दु तक पहुँचकर भी भूमि में लोटता हुआ दिखाई देता है। वे सामान्य व्यक्ति की सामान्यतम प्रवृत्तियों के माध्यम से ही अतिमानव या महापुरुष बन जाते हैं। उनकी निर्दिष्ट दिशा एक बिन्दु विशेष पर समाप्त होती तो दिखाई देती है परन्तु उसका छोर विकास-क्रम के अनन्त गर्भ में समाता हुआ प्रतीत होता है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी जी की औद्योगिक नीति

डॉ० पी० के० भार्गव

अर्थशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

गांधी जी राष्ट्र के कुछ ऐसे महान् व्यक्तियों में से हुए हैं कि उनका नाम केवल देश के इतिहास में ही नहीं, वरन् विश्व-इतिहास में अमर है। वे समाज को एक नया रास्ता दिखाने वाले सुधारक थे एवं मानव जीवन के मौलिक सिद्धान्तों में दृढ़ विश्वास रखते थे। इसी कारण वे सत्य एवं अहिंसा के पुजारी कहे जाते हैं। इन सब विशेषताओं के साथ-साथ वे एक महान् विचारक भी थे। फलस्वरूप ज्ञान की अनेक शाखाओं पर उनके विचारों का प्रभाव पड़ा है। आर्थिक क्षेत्र में उन्होंने पूँजीवाद व यंत्रीकरण का विशेष विरोध किया, क्योंकि इनके कारण श्रम के शोषण की समस्या व बेरोजगारी की समस्या पैदा हो जाती है। उनका विश्वास था कि भारतवर्ष की उन्नति गाँवों के पुनर्निर्माण द्वारा की जा सकती है अतः वे केन्द्रीकरण के विरुद्ध थे जैसा कि उन्होंने लिखा भी है :

"I suggest if India is to evolve along non-violent lines it will have so decentralise many things. Centralisation cannot be sustained and defended without adequate force..... Rurally organised India will run less risk of foreign invasion than urbanised India well equipped with military, naval and air forces."[1]

गांधी जी का विचार था कि देश में स्थायी आर्थिक व सामाजिक शांति बनाये रखने के लिए उद्योगों का विकेन्द्रीकरण हो। उनके दृष्टिकोण से एक विकसित यंत्रित औद्योगिक प्रणाली एवं अहिंसात्मक समाज में समन्वय स्थापित करना संभव नहीं था इसके अतिरिक्त ऐसे कृषि प्रधान देश में जहाँ कृषक वर्ग वर्ष में ६ महीने खाली रहता हो, वहाँ उनके विचारानुसार, मशीनों पर आधारित उद्योगों को स्थान नहीं। इसी कारण उन्होंने लिखा है कि :

"Mechanisation is good when the hands are too few for the work intended to be accomplished. It is an evil when there are more hands than required for the work as it is the case in India. The problem with us is not how to find leisure for the teeming millions inhabiting our villages. The problem is how to utilise their idle hours, equal to the working days of six months in the year."[2]

स्पष्ट है कि गांधी जी यंत्रीकरण एवं बड़े पैमाने के उद्योगों के विरुद्ध थे क्योंकि भारतीय स्थिति में इन चीजों के लिए स्थान नहीं। उनका विश्वास था कि यंत्रीकरण व

---

1. *Harijan*, December 30, 1934.
2. *Harijan*, November 16, 1934.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मशीनों के अधिक प्रयोग से भारत जैसे जनाधिक्य देश में हम अधिक व्यक्तियों को रोजगार प्रदान नहीं कर सकते एवं धन का वितरण भी समान नहीं हो सकता। धन के असमान वितरण से समाज में अनेक बुराइयाँ पैदा हो सकती हैं। अतएव, उन्होंने लघु उद्योग प्रणाली एवं हाथ करघे जैसे उद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिए समर्थन किया। उन्होंने ठीक ही लिखा है कि :

"Granting for the moment that machinery may supply all the needs of humanity, still it would concentrate production in particular areas so that you would have to go in a round about way to requlate distribution where as if there is production and distribution both in the respective areas where things are required it is automatically requlated and there is no chance for fraud, or for speculation."[1]

गांधी जी पूँजीवाद के विरुद्ध थे और वे एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते थे जहाँ आर्थिक विषमता को कोई स्थान नहीं। उनका विचार था कि जब तक गरीब एवं अमीर व्यक्तियों के बीच अन्तर को जन्म देने वाली खाई बनी रहेगी तब तक अहिंसात्मक सरकार की स्थापना करना कठिन है। गांधी जी ने इस बात पर जोर दिया कि धनी वर्ग को अपने धन का उपयोग समाज की भलाई के लिए करना चाहिए एवं इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उन्होंने Doctrine of Trusteeship का निर्माण किया। इस सिद्धांत का मुख्य तत्व यह है कि समस्त सम्पत्ति समाज की है और धनी वर्ग इस धन के प्रति स्वयं को केवल एक Trustee समझें। जिस प्रकार कि एक Trustee Trust की Property आदि कि उचित देखभाल करता है उसी प्रकार से समाज के धनी वर्ग को जिनके पास आर्थिक शक्ति है एवं उत्पादन के साधन हैं वे इनका प्रयोग इस प्रकार करें जिसमें समाज का लाभ हो और जन-कल्याण को बढ़ाया जा सके। इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए गांधी जी ने लिखा है कि :

"A non-violent system of government is clearly an impossibility as long as the wide gulf between the rich and hungry millions persists. The contrasts between the palaces of New Delhi and the miserable hovels of the poor labouring class cannot last one day in a free India in which the poor will enjoy the same power as the richest in the land. A violent and bloody revolution is a certainty one day unless there is voluntary abdication of riches and the power that riches give and sharing them for the common good. I adhere to my doctrine of trusteeship in spite of the ridicule that has been poured upon it."[2]

---

1. *Young India*, November 9, 1924.
2. *Constructive Programme*, pp, 18-19.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी जी का विचार था कि भारत का सुव्यवस्थित विकास देश के गाँवों के विकास द्वारा ही हो सकता है। उनका विश्वास था कि हमारी उन्नति इस बात पर निर्भर है कि हम देश के अधिकांश गाँवों में रहने वाली जनसंख्या में आर्थिक एवं सामाजिक समानता की भावना का विश्वास पैदा कर पाते हैं या नहीं। उनके अनुसार प्रत्येक गाँव स्वयं सम्पन्न होना चाहिए, जैसा कि उन्होंने लिखा भी है :

"My ideal of a village is that it is a complete republic independent of its own neighbours for its own vital wants, and yet dependent for many others in which dependence is a necessity. Thus every village's first concern will be to grow its own food crops and cotton for its cloth. It should have a reserve for its cattle, recreation and play grounds for adults and children. Then if there is more land available it will grow useful money crops ; thus excluding ganja, tobacco, opium and the like. The village will maintain a village theatre, school and public hall. It will have its own water works ensuring clear water supply. This can be done through controlled wells and tanks. Education will be compulsory upto the final basic course. As far as possible every activity will be conducted on the co-operative basis. There will be no caste such as we have to-day with their graded untouchability."[1]

गांधी जी के अनुसार आर्थिक विचार एवं नीतिशात्र में गहरा सम्बन्ध था। उनके विचारानुसार प्रत्येक मनुष्य के जीवन का लक्ष्य 'सादा जीवन और उच्च विचार' होना चाहिए। उनका विश्वास था कि मनुष्य को सुख व शांति भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता, वरन् अभौतिक कल्याण द्वारा इसकी प्राप्ति संभव है जिसके लिए मनुष्य को चाहिए कि शरीर तथा बुद्धि दोनों पर नियंत्रण करे। इससे उनका तात्पर्य यह नहीं था कि मनुष्य को प्रगति ही नहीं करनी चाहिए किन्तु उनके अनुसार प्रत्येक मनुष्य को जीवन यापन करने के लिए न्यूनतम जीवन स्तर की वस्तुएँ प्राप्य होनी चाहिए किन्तु उसके बाद उसे अपनी लालसा बढ़ानी नहीं चाहिए क्योंकि यदि मनुष्य की आवश्यकताएँ असंतुष्ट रह जाती हैं तो उसे कष्ट पहुँचता है। इसके अतिरिक्त गांधी जी विदेशी वस्तु का उपयोग करना या 'Sweated labour' के द्वारा निर्माण वस्तु का प्रयोग करना पाप समझते थे। उनके अनुसार स्वदेशी वस्तु एवं हाथ से निर्माण की हुई वस्तुओं का उपयोग करना चाहिए। संक्षेप में उनके आर्थिक विचारों में बहुत अधिक नैतिकता विद्यमान थी जिसे उन्होंने स्वीकार करते हुए लिखा है :

"I must confess that I do not draw a sharp or any distinc-

[1] R. K. Prabhu & U. R. Rao (compilors): *The Mind of the Mahatma.*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

tion between economics and ethics. Economics that hurts the moral well being of an individual or a Nation is immoral, and therefore, sinful. Thus the economics that permits one country to prey upon another is immoral. It is sinful to buy and use articles made by sweated labour. It is sinful to eat American Wheat and let my neighbour, the grain dealer starve for want of customer. Similarly, it is sinful for me to wear the latest finery of Regent Street when I know that if I had worn things woven by the neighbouring spinners and weaves, that would have clothed me, and fed and clothed them."[1]

---

[1] *Young India,* October 13, 1921,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा गांधी

बी० वी० सूर्यनारायण

तेलुगु रीडर, भारतीय भाषा विभाग, का० हि० वि० वि०

अगर कोई यह पूछे कि गांधी जी को महात्मा क्यों कहते हैं तो उसके उत्तर देने से पहले हम भी दो-तीन प्रश्न पूछना चाहते हैं। पृथ्वी को सर्वंसहा क्यों कहते हैं? सूर्य को प्रभाकर क्यों कहते हैं? और परमेश्वर को शंकर क्यों कहते हैं? सब कुछ सहने का, ज्योति प्रदान करने का मंगलप्रद होने का जो-जो गुण उनमें विद्यमान हैं यह गुण ही उनके उन नामों का कारण है। वैसे ही गांधी जी के आत्मा के गुण महान् हैं और उसीसे वे महात्मा कहलाते हैं। औरों की भलाई के लिए जीवन भर सब कुछ सहना, दिन-रात अनन्त कांति प्रसार करने वाली सत्य, अहिंसा आदि अखण्ड ज्योतियों को सदा के लिए हमारे सम्मुख रखना, जगत्कल्याण के लिए अपने जीवन ही को समर्पित कर देना आदि अनेक महान् गुण एक ही स्थान पर हमको गांधी जी में मिलते हैं।

विद्वान् लोगों की इस उक्ति को तो हम सब जानते ही हैं—**"गणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।"** तुलसी के मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी की गुणविभूतियों को देखकर श्रद्धा के साथ जैसे हम नतमस्तक हो जाते हैं वैसे ही महात्मा गांधीजी के गुणविशेषों से भी मुग्ध होकर कृतज्ञता और सम्मान की भावना के साथ हाथ जोड़ते हैं।

किसी को पशु या मनुष्य अथवा देवता या राक्षस कहना हो तो उसका निर्णय उसकी बाहरी आकृति पर नहीं किन्तु आन्तरिक गुणों पर ही निर्भर रहता है। यों तो जन्मतः सभी प्राणी पशु ही हैं और इसी हेतु से ईश्वर को पशुपति कहते हैं। परन्तु उनमें हर एक के आचरण की विशिष्टता की मात्रा ही उपर्युक्त वर्गों के बीच विभाजक रेखा खींचने वाली है। कई लोग ऐसे हैं जिनको हम बाह्य आकृति के भ्रम से मनुष्य समझते हैं, किन्तु वास्तव में वे पशु ही हैं। अनेक लोग अपनी प्रवृत्ति से राक्षस बन जाते हैं। किन्तु इसकी अपेक्षा उनका पशुत्व की स्थिति में रह जाना ही अत्यन्त श्रेयस्कर है। बहुत कम लोग अपने आचरण की विशिष्टता के कारण पशुत्वस्थिति में ही न रहकर, राक्षसत्व की ओर भी न जाकर अपने को मनुष्य सिद्ध कर पाते हैं। इसी आचरण की विशिष्टता की पराकाष्ठा से सभी कोई महात्मा उसी आकृति में अपने को देवता बना देता है।

श्रीमद्भागवद्गीता के ये निम्नलिखित श्लोक देखिए :

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसी मासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥
महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृति माश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादि मव्ययम्॥

भगवान् बुद्ध की जातक कहानियाँ इसी बात की पुष्टि करती हैं। एक ही आकृति में पशुत्व से मनुष्यत्व और मनुष्यत्व से देवत्व की प्राप्ति एक दो दिन की नहीं या एक दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्मों की भी नहीं किन्तु अनेक जन्मों की निरन्तर साधना का फल है। श्रीरामचंद्रजी, गौतम बुद्ध, गांधीजी आदि इने-गिने महात्मा ही आचरण संबंधी साधना की इस चरम सीमा तक पहुँच पाते हैं।

अनन्त गुण महात्माओं के गुणों की गणना कौन कर सकता है ? सत्य की गवेषणा में निरन्तर तत्परता, त्रिकरणशुद्धि, आस्तिकता, आत्मविश्वास, आत्मसंशोधन, ईमानदारी, निर्भीकता, सहनशीलता, समभावना पूर्वक प्रेमभावना, त्यागपूर्वक सेवाभाव, आचरणपूर्वक उपदेशप्रदान, स्वार्थत्याग पूर्वक परहितसाधनाशक्ति, सत्कार्योत्साह, अहिंसाव्रतपालनानुराग, शांतिकामुकता आदि अनेक विशिष्टगुणरूपी मणियों के लिए गांधीजी का जीवन एक खान है।

"समदुःख सुखः स्वस्थः समलोष्ठाश्म काञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्म संस्तुतिः॥"
"अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोग व्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥"
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवी मभिजातस्य भारत॥"

—श्रीमद्भगवद्गीता

उपर्युक्त गीता श्लोक निबद्ध सभी गुण गांधीजी में विद्यमान हैं। अपने जीवन के सारे कर्मों में गांधी जी भगवद्गीता को अपनी करदीपिका समझते थे।

".....to me the Gita became an impallible guide of conduct. It became my dictionary of daily reference. Just as I turned to the English Dictionary for the meanings of English words that I did not understand, I turned to this dictionary of conduct for a ready solution of all my troubles and trails."

इसलिए महात्मा गांधीजी के कुछ गुण विशेषों की गांधीजी की आत्मकथा से संक्षिप्त समीक्षा करते समय प्रसंग के अनुसार यथा संभव मैं गीता से और उनकी आत्मकथा से कुछ उद्धरण देने का यत्न करूँगा।

गांधी जी एक ज्ञानी कर्मयोगी हैं। अज्ञान के कारण विडम्बनारूपी केवल कर्म में ही प्रवृत्त रहना, अथवा ज्ञान के नाम पर पूर्ण रूप से कर्मविमुख हो जाना—दोनों उत्तम मार्ग नहीं हैं। ज्ञान की रोशनी में स्वार्थ त्याग के साथ परहित की कामना से प्रेरित होकर संन्यासी को भी सदा कर्म में प्रवृत्त होना आवश्यक है।

"कुर्वन्नेव कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्मलिप्यते नरे।"

—ईशावास्योपनिषत्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"न कर्मणा मनारंभा न्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥"
"कमणैवहि संसिद्धि मास्थिता जनकादयः ।
लोक संग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥"
"कायेन मनसा बुद्ध्या केवलै रिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥"
"अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्नि र्न चाक्रियः ॥"

—श्रीमद्भगवद्गीता

गांधी जी का भी यही तात्पर्य है और वे कहते हैं—

"I had made religion or service my own, as I felt that God could be realized only through service."

"I was fond of nursing people whether friends or strangers."

"The question of further simplifying my life and of doing some concrete act of service to my fellowmen had been constantly agitating me."

"Never in my life did I exploit this loyalty never did I seek to gain a selfish end by its means. It was for me more in the nature of an obligation, and I rendered it without expecting a reward."

एक ज्ञानी कर्मयोगी का इससे बढ़कर प्रशस्त मार्ग और क्या हो सकता है । गांधी जी का कर्ममार्ग सत्व प्रधान है और फल के स्वरूप से वे कभी विचलित नहीं हुए थे ।

"मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साह समन्वितः ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते ॥"
"सुख दुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥"

—श्रीमद्भगवद्गीता

कर्ममार्ग में ईमानदारी प्राणतुल्य है और इस ईमानदारी का अर्थ है त्रिकरणशुद्धि, जो गांधी जी के जीवन का एक अविभाज्य अंग है । कीर्तिकामना, प्रयोजन सापेक्षिता, स्वार्थयुक्तता, विडम्बना आदि के मालिन्य से जब यह कर्म दूषित नहीं रहता है तभी वह कलङ्करहित चन्द्रमा की तरह सारे जगत् को आह्लादित कर सकता है । इसी त्रिकरण-शुद्धि की ओर संकेत करते हुए अपनी आत्मकथा के अंत में गांधी जी लिखते हैं :

"In bidding farewell to the reader, for the time being at any rate, I ask him to join with me in prayer to the God of Truth that He may grant me the boon of Ahimsa in mind, word and deed."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रसंग में उपनिषदों की इन पंक्तियों को देखिए—

"ओँ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा
भद्रं पश्येमाक्षिभिर्यजत्राः ।"

—मुण्डकोपनिषद्

"ओँ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता
मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि ।"

—ऐतरेयोपनिषद्

जो मन में सोचें वही कहें, जो सोचें और कहें वही करें और जो सोचें, कहें, करें वह जगत्कल्याणकारी हो ।

गांधी जी सच्चे आस्तिक हैं । भगवान् को सत्यस्वरूप मान कर उसी सत्य की खोज में उन्होंने अपनी सारी जिंदगी बितायी थी । वे अपनी आत्मकथा को इस सत्य की गवेषणा में तत्पर अपने कार्यों ही की कहानी मानते हैं ।

"I simply want to tell the story of numerous experiments with truth and as my life consists of nothing but these experiments, it is true that the story will take the shape of an autobiography."

—गांधी जी की आत्मकथा से ।

इस खोज से संबंधित इनके सभी कार्य अधिकतर आध्यात्मिक हैं :

"But they are spiritual, or rather moral, for the essence of religion is morality."

—गांधी जी की आत्मकथा से ।

सत्य की विशिष्टता और विशालता के बारे में उनका कहना है :

"Truth is like a vast tree, which yields more and more fruit, the more you nurture it. The deeper the search in the mine of truth the richer the discovery of gems buried there, in the shape of openings for an ever greater variety of service."

—गांधी जी की आत्मकथा से ।

इस सत्य की खोज में वे न कहीं रुक गए थे या न कभी हार मानने के लिए तैयार हुए थे । इस महान् यत्न में आवश्यक हो तो अपना सब कुछ त्याग करने के लिए भी वे संसिद्ध थे ।

"But I worship God as Truth only. I have not yet found Him, but I am seeking after Him. I am prepared to sacrifice the things dearest to me in pursuit of this quest. Even if the sacrifice demanded be my very life, I hope I may be prepared to give it."

—गांधी जी की आत्मकथा से ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल की गहराई से सौ प्रतिशत से प्रेरित इनकी इन बातों को और अंत में लोक कल्याण ही के लिए अपने प्राण को भी अर्पित कर देने की उस घटना को भी देखें तो लोकसेवा तत्पर श्री रामचन्द्र जी के ये वचन याद आते हैं—

"स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥"

—भवभूति के 'उत्तर रामचरित' नाटक से।

अपने साधना मार्ग की कठिनाई के बारे में कोई कुछ कहे तो गांधी जी का उत्तर यह था—

"The instruments for the quest of Truth are as simple as they are difficult. They may appear quite impossible to an arrogant person, and quite possible to an innocent child."

—गांधी जी की आत्मकथा से।

गांधी जी कभी संशयात्मा नहीं थे, उनकी बुद्धि निश्चयात्मिका थी। उनका मार्ग हमेशा स्पष्ट, निश्चित और दृढ़ था।

"And so long as my acts satisfy my reason and my heart I must firmly adhere so my original conclusions"

"God always protects the honest experimenter."

—गांधी जी की आत्मकथा से।

आत्मशुद्धि और प्रार्थना को वे अत्यधिक महत्व देते थे।

"I have not the slightest doubt that prayer is an unpailing means of cleansing the heart of passions."

"Supplication, worship, prayer are no superstition, they are more real than the acts of eating, drinking, sitting or walking. It is no exaggeration to say that they alone are real, all is unreal."

—गांधी जी की आत्मकथा से।

गांधी जी का विश्वास है कि सत्यस्वरूप अथवा भगवान् का साक्षात्कार लोकसेवा द्वारा ही संभव हो सकता है।

"I had made the religion of service my own, as I felt that God could be realized only through service."

—गांधी जी की आत्मकथा से।

इसी कारण से वे राजनीति में भी धर्म का प्रमुख स्थान मानते थे।

"That is why my devotion to Truth has drawn me into the field of politics, and I can say without the slightest hesitation, and yet in all humility, that those who say that religion has nothing to do with politics do not know what religion means."

—गांधी जी की आत्मकथा से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी साधना में गांधीजी सर्वदा अत्यन्त विनीत थे।

"So long as a man does not of his own free will put himself last among his fellow creatures, there is no salvation for him. Ahimsa is the farthest limit of humility."

—गांधी जी की आत्मकथा से।

शत्रु और मित्र, मनुष्य और मनुष्येतर प्राणि आदि भेदभाव से दूर रहकर सबके ऊपर समानरूप से प्रेमभाव दिखाना ही गांधी जी के जीवन का लक्ष्य था।

"सुहृन्मित्रार्युदासीन मध्यस्थ द्वेष्यबन्धुषु।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते॥"
"सर्वभूत स्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोपि स योगी मयि वर्तते॥"

—श्री मद्भागवद्गीता

क्रोधरूपी भयंकर पिशाच को गांधी जी हमेशा बहुत दूर रखते थे। गीता में भी कहा गया—

"क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धि नाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥"

गांधी जी आद्यंत अहिंसावादी थे। शत्रु को भी प्यार करना, उनको दुष्कृत्यों से हठाकर सन्मार्ग पर लाने के लिए स्वयं दंड का उपभोग करना वे पसंद करते थे। यह वास्तव में दंड नहीं है, उन्हीं के शब्दों में एक प्रकार की तपस्या है।

"A votary of ahimsa therefore remains true to his faith if the spring of all his actions is compassion, if he shuns to the best of his ability the destruction of the tiniest creature, tries to save it, and thus incessantly strives to be free from the deadly coil of himsa."

"I felt that the only way the guilty parties could be made to realize my distress and the depth of their own fall would be for me to do some penance. So I imposed upon myself a fast for seven days and a now to have only one meal a day for a period of four months and a half.....The anger against the guilty parties subsided and gave place to the purest pity for them."

—गांधी जी की आत्मकथा से।

गांधी जी के आत्मविश्वास, निर्भीकता, अचंचलता, सरलता आदि अनेकानेक गुणों के बारे में जितना ही क्यों न कहें वह अर्धोक्त ही रह जायगा। सत्याग्रह के बारे में उनका कहना है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"I have no doubt that the British Government is a powerful Government, but I have no doubt also that Satyagraha is a sovereign remedy."

—गांधी जी की आत्मकथा से।

गांधी जी का उपदेश सर्वदा अहिंसात्मक, प्रेमपूर्ण, कल्याणकारी और उत्साहपूर्ण होने के साथ-साथ आचरणपूर्वक भी था।

"My object is only to show that he who would go in for novel experiments must begin with himself."

—गांधी जी की आत्मकथा से।

सारे आन्दोलनों में वे जनता से कहते थे—

1. "never to resort to violence"
2. "never to molest black legs....."

चाहे विद्यार्थियों के हों, चाहे राजनीतिक दलों के हों अथवा मजदूरों के हों, अगर आज देशभर के आन्दोलनों में महात्मा जी का इन दोनों बातों पर उचित ध्यान दिया जाता तो कितना अच्छा हुआ होता।

गांधी जी का जीवन अत्यन्त सरल है। योगवाद से दूर रहकर त्यागवाद और सेवाभाव से उन्होंने अपना जीवनयापन किया। परमात्मा के सभी अवतारों से गांधी जी के जीवन की विशिष्टता को एक दो बातों में स्पष्ट करके अब मैं शान्तिपाठ सुनाना चाहता हूँ।

गीता में कहा गया कि—

"परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे॥"

वैद्य रोग का नाश करेगा या रोगी का? अग्नि मालिन्य का नाश करेगा या धातु का? तो भगवान् को दुष्कृत्यों का नाश करना है या दुष्टों का? फिर वे क्यों दुष्टों का नाश करते हैं? सत्कार्य और सज्जनों की रक्षा तो उचित ही है। वैसे ही दुष्कार्य का नाश भी ठीक है, परन्तु दुष्टों का नाश या वैसी भावना बिलकुल अनुचित है।

गांधी जी का कहना है:

"Hate the sin and not the sinner is a precept which, though easy enough to understand, is rarely practised, and that is why the poison of hatred spreads in the world."

—गांधी जी की आत्मकथा से।

दुष्कृत्यों के नाश के स्थान पर दुष्टों के ही नाश की भावना द्वेष के अन्तर्गत मानी जायगी। केवल दुष्कर्मों का नाश करके दुष्टों का तो सुधार और उद्धार करना ही गांधी जी का आदर्श है। इस विशिष्ट भावना से गांधी जी 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' वाले अवतारों से एक कदम अवश्य आगे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

".....we are all tarred with the same brush, and are children of one and the same Creator, and as such the divine powers within us are infinite. To slight a single human being is to slight those divine powers, and thus to harm not only that being but with him the whole world."

"To see the universal and all-pervading spirit of Truth face to face one must be able to love the meanest of creation as oneself."

—गांधी जी की आत्मकथा से।

भौतिकवाद और आध्यात्मिकतावाद का सुन्दर प्रयोजनात्मक समन्वय ही गांधी जी का जीवन है। वे न केवल महात्मा हैं किन्तु महात्माओं में अग्रगण्य हैं।

"आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।
आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानी जायन्ते॥
आनन्देन जातानि जीवन्ति।
आनन्दं प्रयान्त्यभिसंविशन्ति॥"

—तैत्तिरीयोपनिषद्

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GANDHI'S CONCEPT OF ART AND AESTHETIC

SUSHILA PANT

Gandhi, very much in the religious tradition of India, is intensely an ethical man. He is equally a naturalist in the sense that he views everything in its simple, natural and unsophisticated form. But at the same time he could not be called primitive in his concept. As an ethical man his concept of art and aesthetic ought to be puritan. As a believer in nature his ideas on it are likely to be of a 'natural-realist'. However, as Gandhi's approach to humanity is ehico-psychological and ethico-philosophical, his concept of art and aesthetic seems to be based upon naturalistic ethico-realism.

Gandhi conceives man as essentially moral and the supreme creation of God. Accepting the Vedantic idea of Truth is beauty and beauty truth, सत्यं शिवं सुन्दरम् and identifying them with God शिवं, he, to all intents, perceives art as the best plastic medium of expression of the aesthetic sense in man.

Art for Gandhi seems to be not only a visible expression of the feelings and emotions but it is the manifestation of the divine truth in plastic idiom. Probably, this is the influence of the late Ravindra Nath Tagore's naturalism in art on Gandhi's mind. But as Gandhi speaks of God and the divine truth his concept of art should not be considered as hieratic or religious in character. It is social, simple and natural. It is spontaneous and not magical. For him art is to be a true mirror of the society, it should also be the rectifier and preserver of society. It should express the truth in its pristine beauty, and, thus, 'justify the ways of God to mankind.'

Similarly, Gandhi's concept of aesthetic is coloured with his ethical outlook. He, like Keats, believes in the philosophy: 'a thing of beauty is a joy for ever' and as beauty is nothing but truth and God in their manifest forms, Gandhi seems to believe in natural aesthetic where intuition rather than reason plays an important part. For him, therefore, beauty and ugliness are all manifestations of truth and God. Ugliness thus viewed

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

is only a form of beauty which if perceived from the intuitive eyes will appear to be an expression of Truth. As truth is always beauty it is presumptuous on our part to call any person or any object ugly.

Thus, Gandhi tries to raise the whole concept of art and aesthetic from the realm of optical perception to the world of ethical naturalism. It is true that he has expressed practically very little on this subject, yet it is equally obvious from his thoughts and actions that he himself is an artist in his own way having his own ethical aesthetic sense. Had he been an artist in the literal sense, his art might have ranked in the category of some of the best naturalists. But as he is a social artist having a humanistic natural aesthetic sense, it is rightly said that Gandhi is the 'architect' and 'father' of Nation, that is Bharat.

Gandhi, unlike the Buddha, appreciated art. He does not consider art and aesthetic as snares which could bring pain and suffering to the mankind. He never talks in terms of Nirvāṇa for the mankind. He believes that this mundane world is to be lived in and enjoyed in moderation and according to the dictates of the conscience. But the strange fact is that while the Buddha did not appreciate art (Māyā, Moha, sense perception which will bring pain) and wanted to keep mankind away from the aesthetic perception for the sake of Nirvāṇa, Buddhism gave birth to the finest specimens of art, architecture and sculptures in India. But Gandhism and Gandhi both while having their own concept of art and aesthetic have not been able to contribute materially to the Indian art and the science of aesthetic. Let us hope that a school of Gandhian art with Gandhian sense of aesthetic will emerge in the country. Such a school will be a permanent commemoration to the memory of the great sage, philosopher and social artist—Gandhi Ji.

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GANDHI—A STATESMAN-SAINT

ANJANI KUMAR SRIVASTAVA

M.A. Final (English)

Faculty of Arts, B.H.U.

Louis Fischer, a well-known western Journalist and an ardent Gandhian, in his 'A Week with Gandhi' and in his famous biography of the Indian leader, has painted the life and character of Gandhiji with understanding and feeling. In the chapter on Gandhiji in his book 'This is our World', he has made an attempt to assess the greatness of Gandhiji and pointed out how the Western World could raise itself from the sad situation in which it found itself by applying some of the cardinal principles of the Gandhian faith to its worst ills. In his famous essay 'Gandhi and the Western World', Fischer has written:

> "I had lived in Gandhiji's village as his house-guest, or hut-guest, for a week in 1942, and found him wise, relaxed, moderate, articulate, and communicative. He did not expect visitors or associates to be awestruck or reverent. In fact he encouraged intimacy, banter and laughter. He lived on the same level as every body else—on the bare earth. When I jumped from the horse-drawn conveyance which first brought me to the edge of his village, he was there, waiting to welcome me, a man of seventy three, in white loincloth and leather sandals, and he was all the greater because he did not need distance to enhance his importance. He was what he was".

The one great thing about Gandhiji was that he never took himself to be a member of any particular religious sect. Born a Hindu, he did not consider himself a Hindu, but one who believed in all religions. Once, while living with Gandhiji in his Ashram, some body pointed to a picture of Jesus Christ on the wall and asked Gandhiji why, since he was not a christian,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

he kept it there. Gandhiji replied that he was Christian, Hindu, Muslim and Jew. He believed in goodness which was the basis of all religions. His religion was one of universal love.

Gandhiji's supreme virtue was his love of truth. He always practised what he preached. This made him always a happy man, with a mind rid of inner conflicts. This affinity between word and deed is what the world sadly lacks today.

Shakespeare has said, "But be not afraid of greatness; some are born great, some achieve greatness and some have greatness thrust upon 'em." Gandhi was not born great. He was, so to say, a self-made man. 'He was a blundering boy, a mediocre student, a poor lawyer, and an ordinary individual until he remade himself.' He became great because of his faith in himself. The only thing he feared was fear itself. It was the basis of the policy of non-violence with which he infused strength into a weak nation. A fervent, life-long champion of non-violence, Gandhiji said, 'Where there is a choice between cowardice and violence I would choose violence, for cowardice or fear makes a small man who will yield to pressures and not, defend his freedom, his principles, or himself.'

Gandhiji believed in the oneness of the Universe. He never saw people as a mass. One of his greatest qualities was the friendliness with which he looked upon even those whom he opposed. He never dispised the British when he was carrying on his struggle against them. He tried to conquer without force, and triumphed without any show of arms. In this actually lay Gandhiji's great strength. He was an apostle of equality.

To Gandhiji materialism was the chief evil on this earth. He believed in the power to preserve human soul against the deadening influence of materialism. He wanted people not to depend for their happiness on material possessions, and have the strength to renounce such things if they felt it necessary to their happiness. He never believed in the triumph of scientific progress, in the conquest of time and space. In his opinion

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

man should not devote himself exclusively to the thoughts of material prosperity. But we people today are so busy with material pursuits and activities. Truly Wordsworth has said:

"The world is too much with us; late and soon,
Getting and Spending, we lay waste our powers."

A man of saint-like humility and of unshakeable courage, Gandhiji brought to millions in India a new hope. He used to say—'Humility is the key of quick success'. He led the Country's long struggle for freedom, gaining victory by means of non-violence. People outside India drew inspiration from his love and his fellow-feeling and his supreme tolerance.

Thus Gandhiji made us mingle with the masses we disdained before as ignorant and superstitious. He made us fraternise with them. He made us work among and for them. He made us use thick homespun and hand woven cloth. It is thus that he made of us true soldiers for the Swaraj. He did not talk of socialism. His Swaraj was primarily meant to take away the hunger of the starving masses, to provide them with clean linen and neat little houses—a Swaraj where every child born was to get seven years of free and compulsory education and the sick were to get free medical aid. For all these facilities our economic life was to be so ordered as to provide work to every able-bodied person. Gandhiji did not call all this socialism. He knew that modern socialism was associated with ideas alien to his creed of *Satya* and *Ahimsa*.

But let us not forget that for Gandhiji Swaraj meant the improvement of the economic condition of the poor who have been living for centuries in abject conditions of poverty, disease, ignorance and squalor. Gandhiji used to say that he could carry God to the poor of India in a 'bowl of rice'. At the second Round Table Conference he said that the only justification for the existence of the Congress was that it worked for the uplift of the poor.

So Gandhiji as the leader of a unique movement has added a new chapter to human history. He is already classed

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

among the great prophets of the world, one who was far ahead of the times. Gandhiji himself said, "I do not accept the claim of saintliness. I am of the earth, earthy. But I have gone through the most fiery ordeals".

One may ask how this man who kept himself under strict control and discipline, broke laws and advised people to do the same. But then, he did it under the compulsion of a higher law, the moral law, the law of truth and non-violence. As a matter of fact, a person who freely accepts the punishment the law provides, does not break the law.

Gandhiji was a saint. Jawaharlal Nehru said, 'Gandhi has straightened our backs and stiffened our spines'. No wonder when he died at an assassin's hand on 30th Jan. 1948, the whole world sincerely mourned for him. Pearl Buck called it 'another crucifixion'. U.S. Secretary of State George C. Marshall said, "Mahatma Gandhi was the spokesman for the conscience of mankind". In the words of Fischer. ".....Humanity felt bereft, impoverished, for Gandhi owned nothing but was rich in real values". In him was an index of goodness, of an unsullied purity of soul that had a native kinship with the radiance of stars. Richard B. Sheridan was right in saying that a life spent worthily should be measured by deeds not by years.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GANDHIAN APPROACH TO POPULATION PROBLEM

RISHI MANI DUBEY

Department of Economics, B.H.U.

One of the most important issues that India and many other countries of the world have to face is the problem of population. We are growing too fast for our land to support us and our development schemes to catch up with our growth. Population is not a phenomenon that can be checked overnight. Immediate steps have nevertheless, to be taken to prevent the population explosion which threatens to destroy our economic fabric.

The problem in the real world is that the rate of population growth is proving to be a major obstacle to economic development. The case is now too well-known to require detailed documentation. Most of the newly developing nations like India, have populations that are growing by at least 2.5 per cent per year. This growth rate doubles the size of population in twenty-eight years. In these countries, unless growth slows down, they face the problem of dealing with double their present population well before the end of the century: that is, well before the children born this year have completed their own child-bearing.

The sources of this rapid growth are easily identified, birth rates are very much higher and death rates are very much lower than they were, for example, in the nineteenth century period of modernization in Europe. Whereas, in Europe there tended to be about thirty five births a year per 1000 population, in today's countries like India birth rates generally range from forty to fifty-five. The source of this difference lies mainly in the universality of marriage in the developing nations and in the young ages at which it occurs. Similarly, the death rates differ even more spectacularly. A primary cause of the low

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

death-rate is, of course, the new efficiency with which disease is controlled by sulpha drugs, antibiotics, and insecticides.

India already faces acute shortages of food. Its agriculture is poorly developed. If it is to support such a high growth of population, it must make strenous efforts to enhance the production of the level. A rapid but theoretically possible development of agricultural technology should enable India to meet at least its minimum needs. However, such optimism does not carry us to the point of forecasting that the problems will be solved without intervening tragedies. In fact, India should devote serious resources and energy to attack this problem by reducing the birth-rate.

In this direction, the Government of India has taken an appreciable step and it has recognised the importance of family planning programme for socio-economic betterment of the people. The Government of India in its first five year plan stated that "In planning for a progressive improvement in living standards the implications of this rapid growth of population need carefully to be considered while it may be difficult to say what the optimum level of population for Iudia should be and while it would be wrong to under-rate the potentialities of modern science and techniques to augment the productive capacity of the country, it is clear that under present conditions an increase in man-power 'resources' does not strengthen the economy but, in fact, weakens it. Limiting the size of family through reduction in fertility was thus, accepted as part of the first five year plan. As a result, Rs. 70 lakh was alloted to family planning programme. This amount increased through the successive plans. During the second plan the amount increased to Rs. 3 crores, during the third plan to Rs. 27 crores and during the fourth plan to Rs. 96 crores. The programme during the fourth plan includes mass education and motivation programme, promotion of all methods of contraception with special emphasis on IUCD, manufacture of loops for IUCD both in private and public sectors.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The family planning programme at present has become so popular that everywhere, whether it is an international conversation on the subject, or it is simply discussion in the drawing room, it invariably crops up. In this regard, however, it is a great matter of disappointment that none of the demographers has advocated the method suggested by Mahatma Gandhi. He is widely accepted as a philosopher, politician, historian, etc., but not as a demographer. But it does not mean that he never thought about this severe problem. He anticipated the danger of this problem and suggested the method which is more fruitful especially in Indian conditions.

Gandhiji approached this problem from three different angles according to the level of consciousness of the people. He thought in terms of total 'brahmacharya' or celebacy for the seeker, a partnership for social service for the understanding, and an environment of simple, pure, and healthy social system for the rest. He prescribed what in his terminology he used to call self-control. His view was based on a rational view of enlightened human existence. It would guard against physical wastage, mental degeneration and spiritual bankruptcy. It would take away the edge of suspicion in different social groups in India that it would result in reducing their strength, reduction in numbers would be more than compensated by the improvement in quality of the human material. This would also remove the apprehension in the mind of the thinking people that curbs on family would bring down the intellectual level of the community.

The healthy approach to the problem of population should begin by fixing a desirable age for marriage. Social health and not social expediency should be a guide in determining that age. Resources of educative propaganda can be concentrated on two aspects. Parents should be awakened to their responsibility towards their children with an emphasis on the quality of huaman material and their obligation to the nation.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Simultaneously, efforts should be made to generate a healthy climate which could help people in observing those restraints which are essential in order to enable them to fulfil this obligation. Here also an attitude that this is utopia is only another name for irresponsible thinking. Climate and environment play a decisive role in influencing people's activities.

Vinobaji attributes the low rate of increase in population in Madras to the climate of austerity that prevails in Madras. There is no justification for millions that we spend on propaganda if we do not believe in the dynamics of climate and environment. The whole apparatus of communication, however, is operating against the basic need to educate people in a healthy marital existence. Cinema is the worst sinner in this respect. This exposes the utilitarian character of our approach. At the base the objective of family planning must be education in physical, mental and moral health.

Moreover, Gandhiji had never been against the birth control if, when and where it is really inevitable. What he really emphasized was to maintain spiritual disciplines by individual.

Thus, in its attempt to tackle with population problem the Government of India should not ignore the solution indicated by Mahatma Gandhi. In fact, facilities should be extended to the people, so that they may realise the importance of birth control on both the grounds that is, for material welfare as well as for moral discipline.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोहांसबर्ग में बैरिस्टर गाँधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GANDHI'S PRINCIPLE OF TRUSTEESHIP

ANIL KUMAR JAIN

Department of Economics, B.H.U.

In India the mystic tradition had played an important part in society. Indian culture maintained its continuity during the Muslim period through a process of acculturation. A foreign administration, however, changed all this. British imperialism in its predatory context of existence produced insoluable economic problems in India. The monopolists at 'home' inhibited the growth of competitive industries which led to the stagnation of the Indian economy and the struggle for national independence. It was at such a critical period in the Indian History that Mahatma Gandhi (1869-1948) appeared on the Indian Poitical scene and dominated it throughout his life to such a great extent that it has left its impress on the philosophical, political, economic and social deliberations and writings of all the leading thinkers. Principles of Truth and Non-violence governed the whole life of Gandhiji and it is in the application of these criteria that the Gandhian Economic Thought has been built up. "Gandhism is a unique system which has a starting point in religion and philosophy, course and application in economic and political life, and destination in supreme spiritual achievement."[1] Its main object is the achievement of the highest spiritual development which is conincident with the achievement of salvation or *Moksha*. The best way to do it is to serve the suffering and oppressed humanity. A man is particle (amsha) of God and by serving man, one would serve God and achieve *Nirvana*. But in his actions a man must practise truthfulness and non-violence. It was this experiment of Gandhiji with truth and non-violence that led him to believe in the doctrine of non-thieving and non-possession and ultimately in the Principle of Trusteeship.

[1] Agrawala, A. N. 'Gandhism: A Socialist Approach' Page 15.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Opinion is divided on the meaning and implication of the Principle of Trusteeship. There is great misunderstanding among people about the meaning of the word 'trusteeship' in the same way as there is great misunderstanding as to what the word 'Varna-vyavastha' meant for Gandhiji. Some people think that it is just a euphemistic way of justifying one's possession and control of property, power etc., against other claimants whether rival or rightful, on the ground that they could not part with it because none would be able to make a better use of property or power than they in the interest of the public who were still not competent enough to manage their own affairs. It was this argument which the Britishers advanced for a long time to retain their hold on India. But as they did not govern India on the reasonable remuneration for the services they rendered, or even honestly, their plea of trusteeship was not accepted. Even legally appointed trustees, such as guardian over a minor's property, often evade handing over charge to the minor after he has attained majority on the ground that he has not been in a position to manage it. Owing to this sad experience of the past, some progressive politicians thought that through the Principle of Trusteeship, Gandhiji obliged the Princes, the Zamindars, the Capitalists and the holders of power by furnishing them with one more weapon to cling to their positions of advantage.

It is also supposed that the best trustee of Gandhiji's conception was a man with some philanthropic urges such as living simple personal life, giving hand-some donations to charitable institutions, having good and sympathetic behaviour with his subordinates. But none of these suppositions are warrantable. The word trustee is a legal term, and all the rights and duties that law choose to assign to that term from time to time will apply to the trustee of Gandhiji's theory, plus a good deal more on moral grounds not covered by law.[1]

Gandhiji conceived of an ideal society in which there would not be much scope for glaring inequalities of wealth and

[1] Mashruwala, K. G.—'Gandhi and Marx' pp. 77-78.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

income. He was an ardent advocate of the principle of non-possession. Some of the key words of Gita such as *aparigraha* (non-possession). *samabhava* (sense of equality) had taken a strong hold of Gandhiji's mind and when he began to meditate on the application of these attitudes of mind to pratical life, this legal term *trustee* came to his help. Gandhiji having been a student of law, the word seems to have clung to him. As he was also a votary of truth, he associated with it only the higher side of its meaning and use. Gandhiji has stated in his Autobiography that the study of Gita illuminated the meaning of the word trustee and the word, in its turn, solved for him the problem of non-possession. In short, Gandhiji held that in every condition whatever the only practical way of practising non-possession is to use one's power as trustee. "Where persons possess property, whether that possession is vested in them in a manner deemed legal at the time or otherwise, they must be deemed to hold it in trust for society and not for themselves."[1] Explaining his trusteeship formula, Gandhiji himself wrote, "Trusteeship provides a means of transforming the present capitalist order of society into an egalitarian one. It gives no quarter to capitalism, but gives the present owning class the chance of reforming itself. It is based on the faith that human nature is never beyond redemption. It does not recognise any right of private ownership of property except in as much as it may be permitted by society for its welfare."[2] According to him, if one had inherited a big fortune or had accumulated a large fortune by earning profits from trade and industry, the entire amount did not belong to one, but to the entire community. In fact, one, who had accumulated that amount, was entitled to only that part of it which was necessary for an honourable living "no better than that enjoyed by millions of others." The rest of that accumulated wealth belonged to the entire nation and must be spent for the welfare of all. In the Harijan (25th August. 1940) Gandhiji wrote, "The rich will be left in possession of his wealth

[1] Ibid p. 78.
[2] Gandhiji—Sarvodaya p. 50.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

of which he will use what he reasonably requires for his personal needs and will act as a trustee for the remainder to be used for the rest of the society."

The theory of trusteeship, as propounded by Gandhiji makes no distinction between private and non-private property. All property is held in trust, no matter who possesses it, and what it's nature or quantity is. Indeed, the theory of trusteeship applies not only to tangible and transferable property, but also to talents, physical strength, wealth or other capacities that a person might possess. He should take them as having been given to him as a trustee, for the benefit of the world. Gandhiji further held that every agent of production whether shareholder, director, managing agent, technician, or the labourer, must perform his powers honestly and diligently. Every one who has contributed to the success of the industries to the best of his capacity may take a wage (if he needs) but the wage should be in accordance with his needs and not in accordance with the value of his contribution. If the capacity of a crippled worker is no more than to sit on a stool and check the articles that leave or enter the factory and if he performs that duty honestly, he is entitled to the full ordinary wage plus what he needs more on account of his physically helpless condition. As against him the wage of the engineer or an able bodied worker may be just full ordinary.[1]

It is on the basis of the idea of trusteeship that Gandhiji was opposed to the proposal of the expropriation of capitalists and landlords by use of force, since he believed that the wealthy persons had also their importance and society will be poorer in their absence. He did not disregard the fact that capitalists and landlords exploit the labourers and cultivators. He, in fact, wanted to put an end to exploitation. But he did not want to put an end to it through a bloody war between the different classes of society, as the socialists purport to do, but through love, compromise and non-violence. Gandhiji had great faith in the goodness of human nature. If there is an element of bad-

[1] Mashruwala, K. G. op. cit. p. 80.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ness in man's nature, it is remediable. If capitalists and landlords exploit the proletariat, they can be made to realise their mistake. Efforts should be made to arouse in their minds and hearts a hatred for exploitation and a liking for justice and sympathy.[1] That is why, he wanted to correct the capitalists and landlords and impress upon them that the wealth they had accumulated was not to be possessed but to be held in trust for the welfare of the society. If the capitalists took care not only of themselves but also of their workers, the workers would treat them as their benefactors and there would be no cause for differences between the two. Expropriation is unnecessary and unjust if the present holders consent to fulfill the obligations of trustees.

Gandhiji was also opposed to the payment of compensation to the trustees. Compensation is unnecessary because no trustee is ever compensated on removal. If he is unwilling to fulfill the obligations of a trustee, claiming the property as his own, he should be removed and new arrangement should be made.

All that has been said above goes to show the faith of Gandhiji on the Principle of Trusteeship in achieving an ideal state in which all the classes of society lived together harmoniously tied with each other in the bonds of love and friendship. In fact, he had so great a faith in the doctrine of trusteeship that he believed that it would help the realization of a state of equality on earth.[2]

---

[1] Agrawala, A. N. op. cit. p. 48.
[2] Harijan—April 13, 1938.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

A SHORT INTRODUCTION TO GANDHIAN PHILOSOPHY

DR. BASHISTHA NARAYAN SINHA

M. K. Gandhi (1869-1948), affectionately addressed as 'Bapu,' gloriously called as the father of democratic India and piously known as 'Mahatma Gandhi', is placed, as a nation-builder in the class of Abrahm Linkon, as a social, economic and political thinker in the rank of Karl Marx and as an ethical teacher and religious philosopher in the category of Mahāvīra, Buddha and Christ. He, with his original approach to the different branches of learning and deep thinking upon the various human problems, says—

> "I claim that human mind or human society is not divided into watertight compartments called social, political and religious. All act and react upon one another."[1]

He propounds that self realization is the ultimate goal of human life and self-realization is nothing but to realize the Truth or to know God. Naturally, now question arises: What is God? He answers this question in the following way—

> "God is that indefinable something which we all feel but which we do not know. To me God is Truth and Love, God is ethics and morality. God is fearlessness, God is the source of light and life and yet He is above and beyond all these. God is conscience. He is even the atheism of the atheist. He transcends speech and reason. He is a personal God to those who need His touch. He is the purest essence. He simply Is to those who have faith. He is long suffering. He is patient but He is also terrible. He is the greatest democrat the world knows. He is the greatest tyrant ever known. We are not, He alone Is."[2]

[1] Young India, 2-3-22, 131.
[2] Ibid, 5-3-25, 81.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

It means God of Gandhijee is similar with the cosmic Brahman of Chhāndogyopniṣad, Taittirīyopniṣad, etc.[1], Who is considered to be the cause of production, maintenance and destruction of this universe i.e. the source of every being and every hapening seen in this world. At the same time He resembles with the acosmic Brahman who is the transcendental Absolute. Moreover Gandhijee is very close to Advaitins who assert that there is the only Reality which exists and each and everything except That is nothing but appearance (Brahman satyam jagan mithyā). Though like Śaṁkara and Kant Gandhijee affirms that God is indefinable and unknowable because He transcends speech and reason, he admits that one can ever enjoy His touch if he has faith.

However, to obtain the knowledge of God, one should try to know the beings He has created, because He pervades in all the creatures of this universe. It means one should have unity with his fellow beings and others by serving them sincerely and lovingly. Consequently Gandhijee affirms the theory of 'Sarvodaya' i.e. 'the greatest good of all' and here he differs from the supporters of utilitarianism who advocate the theory of the greatest good of the greatest number. He declares—

> "A votary of ahimsa (i.e. the person follows the Gandhian theory) cannot subscribe to the utilitarian formula (of the greatest good of the greatest number). He will strive for the greatest good of all and die in the attempt to realize the ideal. He will therefore be willing to die, so that the others may live. He will serve himself with the rest, by himself dying. The greatest good of all inevitably includes the good of the greatest number, and therefore, he and the utilitarian will converge in many points in their career but there does come a time when they must part company, and even work in opposite directions. The utilitarian to

[1] Chhāndogyopniṣad —3.14.1 ; Taittirīyopniṣad—3.1.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

be logical will never sacrifice himself. The absolutist will even sacrifice himself.[1]

Self sacrifice, as Gandhijee proclaims, is the only means which can bring 'the greatest good of all', because the both means and end have the same value; they justify each other. In other words the means which is good, results into a good end and the means which is bad comes undoubtedly to a bad end. 'As the means so the end.'[2] One should always apply a good means to achieve his good end, because it is he who can choose a means either good or bad. He can control the means not the end. He should not expect a happy result by using a harmful means. Thus Gandhijee differs from Communists and Fascists who asserts the theory 'the end justifies the means', that the means may be considered to be good, though truely it is bad, if the result is favourable and desirable.

But self sacrifice is not an ordinary thing. Every body cannot sacrifice himself for the cause of others progress and pleasure, unless and untill he has not trained himself to move on the way to the realization of Truth. Gandhhijee prescribes the following disciplines for those who want to sacrifice himself for others or who seeks to realize the Truth.

1. *Awareness of the limitation of one's own knowledge:* Knowledge has no limitation but the capability of a man to know a thing is certainly limited. So he should add something daily to his knowledge and should pay attention to the new teaching which throw light upon his new duties.

2. *None-Violence or Ahiṁsā:* Ahiṁsā means not to injure anybody by any means. It is maintained in mind, word and action. Though theory of Ahiṁsā is followed by the human beings only, it teaches to care even for the lives of small insects and creepers. But in case of having no remedy or the safety of the life of a being, Gandhijee permits, to kill it so that it may be free from the present sufferings. 'Ahiṁsā and Truth are so inter-

[1] Young India, 9-12-26, 432.
[2] Young India, 17-7-24, 236.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

wined that it is practically impossible to disentangle and separate them. They are like two sides of a coin, or rather a smooth unstamped metallic disc. Who can say, which is the obverse and which the reverse? Neverthless, ahiṁsā is the means; Truth is the end.'[1] It is generally assumed that Truth may be neglected for the support of ahiṁsā; that one should not say anything painful to others even if it is true. But Gandhijee confutes this idea when he says.....'I was capable of sacrificing none-violence for the sake of Truth. In fact it was in the course of my persuit of truth that I discovered non-violence.'[2] None-violence is a thing for brave not for cowards.

3. *Patience:* Good thing is always achieved in a long time. So one should not try to have anything good in hurry. One can make even his foe a true firiend if he tries patiently to win his heart. Gandhijee says—'I cannot think of permanent enmity between man and man.'[3] But to have patience it is necessary to follow the path of Ahiṁsā.

4. *Fearlessness:* 'Fearlessness connotes freedom from all external fear—fear of disease, bodily injury and death, of dispossession, of losing one's nearest and dearest, of losing reputation, of giving offence, and so on.'[4] There are also internal fears like animal-passion, anger etc. These all fears are caused by the bodily attachments. When a man gets himself free from all attachments of body, wealth, family etc. he also gets rid of all sorts of fear. In other words, when a man thinks that he has nothing of his own in this world he becomes fearless because where there is no attachment there is no fear. The man who has become fearless, has also become able to march on the path of Ahiṁsā.

5. *No-possession:* God provides a man everything which he needs in order to exist in this world. So a man should not worry for tomorrow. He should satisfy himself with what he

[1] Yarvada Mandir—13.
[2] Young India, 23-9-26, 333.
[3] Ibid, 2-4-31, 54.
[4] Yaravada Mandir—41.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

possesses to-day. He should lead his life like a bird which needs neither a house to live in, nor clothing to cover its body. Even the body is needed for the enjoyment of its soul. Thus a man may renunciate his body if he gives up his all desires. He cannot have a true love for others if he has any sort of possession, because the perfect love and non-possession are co-existents.

6. *Voluntary Suffering for the sake of Love :* One cannot influence others by applying some external force, therefore he cannot have their love till he does not win their hearts. And to win the hearts of other persons it is necessary to suffer voluntarily for their sake.

7. *Purity :* The Spirit of Truth pervades all beings found in this universe, so a man should identify himself with them, for which he needs self purification. He feels his oneness with other beings if his heart is pure.

8. *Self Restraint :* 'Sex urge is a fine and noble thing. There is nothing to be ashamed of in it. But it is meant only for the act of creation. Any other use of it is a sin against God and humanity.'[1] Even act of creation is a selfish purpose which disturbes a man in realizing the Truth. Therefore self-restraint is needed to remove this disturbance.

9. *God's Grace Essential for Perfect Self Control :* In the absence of God's grace neither one can free himself from the errors of his life nor can have commamd over his thought. So he should have faith in the existence of God.

10. *Awareness of the Endless Quest* : The goal ever recedes from us. The greater the progress the greater the recognition of our unworthiness. Satisfaction lies in the effort, not in the attainment. 'Full effort is fully victory.'[2] Here Gandhijee supports the 'Niṣkāma Karm Theory' of the 'Srimadbhagwadgīṭā which also gives importance to the effort not to the fruit expected to come out of it, that one has his right on the deeds he does, not on their results.[3]

[1] The Harijan, 28-3-36, 53.
[2] Young India, 9-3-22, 141.
[3] 'Karmanyevādhikāraste mā phaleṣu kadācana—'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

As an economic thinker Gandhijee says that every body has right to live, to feed and to clothe himself. Thus economic constitution either of India or of the world should be such that nobody under it should suffer from the shortage of fooding and colthings. It means all men should have proper work in order to earn his livelihood. The means of production of the necessities of life should be made available as freely as air and water are supplied by God to this world. It should not be monopolized for exploiting others. According to Gandhijee a true socialist or communist is he who does not harm even a fly and always accepts the theory of the universal ownership of the instruments or other means of production. As the result of Ruskin's influence upon him, Gandhijee assigns that (1) good of an individual may be achieved in the good of all, (ii) works of a lawyer and of a barber have the same value because everybody has right to earn his livelihood. (iii) life of a cultivater and that of a handicraftsman must be considered worthy to be lived. He, while showing relation between economics and ethics, says that economics is untrue which ignores of disregards moral values.....True economics never militates against the highest ethical standard, just as all true ethics to be worth its name, must at the same time be also good economics.[1]

So far his social philosophy is concerned, Gandhijee refutes that theory of social organization which classifies the society into four *varṇas*—Brāhmaṇa, Kṣattrīya, Vaiśya and Śūdra. In a society everybody should have the equal status. There should neither be any class of superiors nor that of. inferiors. There must not be anything like untouchability.

As a great political thinker Gandhijee proclaims that the political power is not an end but the means which improves the conditions of all spheres of life. It represents that capability of a nation which 'regulate national life through national representatives.'[2] If the national life becomes regulated,

[1] Young India, 26-12-24, 421.
The Harijan, 9-10-37, 292.
[2] Young India, 2-7-31, 162.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

no representation is further needed. Thus Gandhijee agrees with Thoreau who propounds that 'that government is best which governs the least.'[1] Moreover, while throwing light upon democracy he says that it is not a thing to be forced externally, rather it needs the internal urge, and it can be brought through nothing but non-violence.

Gandhijee, while solving the religious problems, argues that all religions have equal value and thus he lays emphasis on the theory of secularism.

---

[1] Ibid India, 2-7-31, 162.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुनियादी शिक्षा और गांधी जी

सुश्री प्रेमकुमारी

शोध-छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, का० हि० वि० वि०

शिक्षा कोई साध्य वस्तु नहीं, बल्कि एक साधन है और जिस शिक्षा से हम चरित्र-वान् बन सकें, वही सच्ची शिक्षा मानी जाती है।[१] जिसकी आज हमको सबसे अधिक जरूरत है, उसे गांधी जी ने पचास वर्ष पहले सोचा—वह है चरित्र निर्माण। जब तक हमारी इच्छाओं के पीछे चरित्र का बल न होगा, हम कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते, कुछ भी पाने के योग्य नहीं हो सकते।

साधारणतः लोग शब्दावली के ज्ञान को ही शिक्षा मानते हैं पर गांधी जी के दृष्टिकोण में केवल शब्द-ज्ञान न तो शिक्षा का आरंभ है और न अन्तिम लक्ष्य; वह तो उन उपायों में से एक है, जिसके द्वारा स्त्री-पुरुषों को शिक्षित किया जा सकता है। इसलिए केवल शब्द-ज्ञान को शिक्षा कहना गलत है। शिक्षण का माध्यम शब्द-ज्ञान को न रखकर सामाजिक वातावरण और उत्पादन की प्रक्रिया रखी जाय, क्योंकि यह सत्य है कि सामाजिक वातावरण के माध्यम से ही व्यक्ति को समस्याओं का ज्ञान होता है, और उन्हें कैसे दूर किया जाय, उन समाधानों को प्रस्तुत करने का अभ्यास होता है। गांधी जी का कथन था कि बालकों को उपयोगी उद्योग देकर उसके द्वारा ही उनके मन और शरीर की शिक्षा होनी चाहिए।

इस वर्तमान युग में देश की सामाजिक परिस्थितियों को देखते हुये रचनात्मक शिक्षा या बुनियादी शिक्षा की आवश्यकता है। गांधी ने बुनियादी शिक्षा को चालू करने के लिए बहुत पहले ही कहा था कि आज की वर्तमान शिक्षण पद्धति में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने की जरूरत है। बुनियादी शिक्षा महात्मा गांधी की अत्यन्त ही महत्वपूर्ण देन है। इस प्रकार की शिक्षण पद्धति में उत्पादन की प्रक्रिया द्वारा ही प्रत्येक विषय की जानकारी होती है, अर्थात् इसमें उन्होंने शिक्षा का माध्यम ही शरीर—श्रम द्वारा उत्पादन कार्य बना दिया है। व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए श्रम करता है, और श्रम के माध्यम से ही व्यक्ति को बौद्धिक शिक्षा भी उपलब्ध होती रहती है।

बुनियादी शिक्षा के अनुसार वही व्यक्ति शिक्षित कहलाता है जिसमें उत्पादन के कार्यों का अभ्यास हो अर्थात् जो स्वयं उत्पादक हो। शिक्षा की नवीन पद्धति के विषय में गांधी जी चाहते थे कि उद्योग और अक्षर ज्ञान का भेद मिट जाय। जिस प्रकार गणित, साहित्य इत्यादि का वर्ग होता है उसी प्रकार उद्योग का भी वर्ग होना चाहिये। यह भ्रम मन से निकल जाना चाहिये कि उद्योग शिक्षा क्षेत्र के बाहर का विषय है। जब तक ऐसा भ्रम हट न जायगा तब तक विद्यार्थियों का विकास अवगुण्ठित ही बना रहेगा।

---

[१] गांधी जी : 'शिक्षा की समस्या', पृष्ठ ४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज-कल की शिक्षा केवल पुस्तकों तक ही सीमित है, जो इस समय की परिस्थिति के लिए व्यर्थ सिद्ध हो रही है। किताब का कीड़ा बनने से ही कहीं बुद्धि का विकास नहीं होता। उससे तो आँखें और विचार शक्ति दोनों ही खराब होती हैं; पर उद्योग के पूर्ण ज्ञान के लिए पुस्तकों के अध्ययन की आवश्यकता रहती है और उस सिलसिले में जो कुछ पढ़ना होगा, वह सोच-समझकर ही पढ़ा जायगा।[१]

आधुनिक युग में हर वर्ग के लोगों में बच्चों को विद्यालय में भेजने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। परिणामतः उत्पादक वर्ग के बच्चों की उत्पादन के कार्यों से मुक्त होकर, अपनी ही श्रेणी से छूट कर 'बाबू' वर्ग की श्रेणी में मिलना पड़ रहा है। इस प्रकार आज उत्पादकों के कंधों पर बाबुओं और शोषकों की संख्या और बोझ दिन प्रति दिन बढ़ती ही जा रही है। इस कारण आज संसार में वर्ग-विषमता अत्यधिक जटिल हो गयी है। यदि यही रफ्तार रही तो एक दिन बहुत जल्द ही दुनिया में शोषकों की संख्या इतनी अधिक बढ़ जायगी कि उसके बोझ से उत्पादक दबकर मर जायगा और उत्पादकों के मरने से समाज के उच्च वर्ग के लोगों का जीवन भी कष्टदायक हो जायगा। पर गांधी जी के बुनियादी शिक्षण पद्धति के अन्तर्गत बाबुओं का ह्रास होकर उत्पादकों की वृद्धि होती है, क्योंकि शिक्षा हल-कुदाल, चरखा, निहाई और हथौड़ी के साथ जुड़ी होने के कारण प्रत्येक सहज ही व्यक्ति उत्पादक बन जाता है। इस प्रकार की शिक्षण पद्धति द्वारा समाज में वर्ग भेद स्वतः समाप्त हो सकता है।

आज सम्पूर्ण भारत में शिक्षा के माध्यम के विषय में जो विवाद चल रहा है, गांधी जी ने सन् १९३७ में ही उसका समाधान खोज निकाला था। वे मातृभाषा हिन्दी को ही शिक्षा का माध्यम बनाना ठीक समझते थे, क्योंकि अंग्रेजी भाषा न तो हिन्दुस्तान को ऊपर उठा सकती है और न जिन्दगी दे सकती है। मातृभाषा पर जोर देते हुए उन्होंने एक बार कहा था—"हम अपनी भाषा के सिलसिले में कितने दीन, हीन और कंगाल हैं, इसीलिए तो कहता हूँ मातृभाषा हिन्दी में सोचो तथा इन्हीं में वैज्ञानिक शब्दों की शोध करो, तभी भारत सम्पन्न, सुखी और आजाद हो सकता है पराई भाषा के जरिये हमारी तरक्की कभी नहीं हो सकती, जो विदेशी भाषा के माध्यम से देश को आगे बढ़ाना चाहते हैं, वह बालू में से तेल निकालने की बात कहते हैं। वे लोग हिन्दुस्तान को गलत दिशा की ओर ले जायेंगे। हिन्दुस्तान खतरे में पड़ेगा। मेरा अन्तिम निर्णय यह है कि हिन्दुस्तान के करोड़ों इन्सान की जिन्दगी अपनी मातृभाषा और हिन्दी में समाई हुई है।"[२]

जैसा कि गांधी जी का अनुमान था कि प्रत्येक भारतीय युवक के जीवन का कम से कम छः कीमती वर्ष अंग्रेजी के सीखने में चला जाता है क्योंकि वह अंग्रेजी भाषा द्वारा ज्ञान प्राप्त करता है। और यदि हम स्कूल और कालेज से निकलने वाले छात्रों की संख्या से गुणा करें तो हम स्वयं ही अन्दाज लगा सकते हैं कि कितने हजार वर्षों की हानि होती है। इस प्रकार यदि हम जीवन के इन मूल्यवान वर्षों को एक विदेशी भाषा पर प्रभुत्व प्राप्त करने

---

[१] गांधी जी : 'बुनियादी शिक्षा', पृष्ठ १२२।

[२] 'आज'—गांधी विशेषांक, २९ सितम्बर, १९६८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में लगाते हैं तो यह कैसे संभव हो सकता है कि हम स्वयं प्रेरित होकर कुछ कार्य करें।[१] यदि हम सभी पिछले सौ वर्षों से ही अपनी मातृभाषा द्वारा शिक्षा प्राप्त करते होते तो आज के भारत में शिक्षित लोग अपने ही देश में विदेशी बन कर न रहते, उनकी वाणी राष्ट्र के हृदय को छूती रहती है और वे गरीब से गरीब लोगों के बीच काम करते होते और जैसा कि गांधी ने कहा है पिछले सौ वर्षों के दौरान में उन्होंने जो कुछ प्राप्त किया, वह राष्ट्र के लिए एक कीमती विरासत होती। आज की शिक्षा शिक्षित भारतीयों को निर्बल और शक्तिहीन बनाती जा रही है। शिक्षा के माध्यम ने भारतीय विद्यार्थियों की शक्ति पर भारी बोझ डाला है और हमें नकलची बना दिया है। गांधी जी का विचार था—"कोई भी देश नकलचियों की जाति पैदा करके राष्ट्र नहीं बन सकता। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा होने के कारण हमारी सारी मौलिकता नष्ट हो गई है। हम बिना पंख के पक्षी बन गये हैं। अंग्रेजी लाखों हिन्दुस्तानी घरों की भाषा नहीं हो सकती। वह हजारों लाखों आदमी तक सीमित रहेगी परन्तु वह करोड़ों की भाषा नहीं बन सकती है।"[२]

अंग्रेजी भाषा की शिक्षा का जो अन्धविश्वास पूर्ण सम्मान करना हम सीख गय हैं उससे यदि हम स्वयं को और समाज को मुक्त कर दें तो उससे समाज की सबसे बड़ी सेवा होगी। गांधी ने इस विषय पर कहा है—"अंग्रेजी शिक्षा ने हमारी साहित्यिक प्रतिभा का हनन कर दिया है हमारी बुद्धि को जकड़ दिया है, और इस शिक्षा को दिये जाने के तरीके ने हममें जनानापन ला दिया है। हम आजादी की धूप तो खाना चाहते हैं लेकिन हमें गुलाम बनाने वाली प्रणाली हमारे राष्ट्र के पुरुषत्व को नष्ट करती जा रही है।"[३]

किसी भी राष्ट्र को अपने नौजवानों में राष्ट्रीयता कायम रखनी है तो उन्हें ऊँची और नीची सारी शिक्षा उन्हीं की भाषा में देनी चाहिए। अंग्रेजी भाषा के माध्यम ने राष्ट्र की शक्ति को नष्ट कर दिया है। शिक्षा को बिना कारण मँहगा बना दिया है। और यदि ऐसी ही शिक्षा कायम रहेगी तो उससे राष्ट्र की आत्मा का हनन होना निश्चित है। इसलिए गांधी जी का यह सुझाव था कि शिक्षित भारतीय पराई भाषा के माध्यम के भयंकर मोहिनी से जितनी जल्दी छूट जाँय उतना ही उनके लिए और राष्ट्र के लिए अच्छा है। हिन्दी भाषा के विषय में आप का कहना था कि "मेरी मातृभाषा में कितनी ही खामियाँ क्यों न हो मैं उससे उसी तरह चिपटा रहूँगा, जैसे अपनी माँ की छाती हो·····मैं अंग्रेजी को उसकी जगह प्यार करता हूँ लेकिन अगर वह उसको हड़पना चाहती है जिसकी वह हकदार नहीं है तो मैं उससे सख्त नफरत करूँगा।"[४]

आज की बदलती हुई परिस्थितियों में केवल ज्ञान या शिक्षा से ही राष्ट्र समृद्धशाली नहीं बन सकता। आज जो शिक्षा बालक को दी जाय वह उपयोगी उद्योग के माध्यम से होनी चाहिये। स्कूलों का काम केवल ज्ञान देना ही नहीं, बल्कि दैनिक

---

[१] मो० क० गांधी : 'विद्यार्थियों को संदेश', पृष्ठ १२-१३।
[२] मो०क०गांधी: 'विद्यार्थियों को संदेश', पृष्ठ१९–२९।
[३] मो०क०गांधी: 'विद्यार्थियों को संदेश', पृष्ठ १८।
[४] गांधी जी : 'बुनियादी शिक्षा', पृष्ठ १४२–१४३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकता सम्बन्धी वह माल भी तैयार करें। शिक्षा के विषय में गांधी जी के निम्नलिखित विचार थे :—

(१) शिक्षा का वाहन या माध्यम कोई भी ग्रामोपयोगी उद्योग हो।

(२) शिक्षा स्वावलंबी होनी चाहिये।

हमें बच्चों को औद्योगिक शिक्षा के द्वारा ही अन्य शिक्षा जैसे साहित्य की शिक्षा गणित की शिक्षा, इत्यादि देनी चाहिए। उद्योग की क्रियाओं द्वारा बच्चों के अन्दर जो भी अच्छी चीज है उस सबको विकसित करना चाहिए। इतिहास, भूगोल और गणित हम जो भी सिखायें वह सब उस उद्योग से संबंधित होंगे। इस प्रकार की शिक्षा को ही स्वावलम्बी शिक्षा कहते हैं। अर्थात् इस प्रकार की शिक्षा में विद्यार्थी अपनी प्रत्येक कार्य-शक्ति का ठीक-ठीक उपयोग करना सीख लेगा। हिन्दुस्तान जैसे गरीब देश में शिक्षा का प्रश्न शिक्षा को स्वावलम्बी बनाने से ही हल किया जा सकता है।

(३) पुस्तकों पर आधार रखने के बजाय, शिक्षक ही विद्यार्थियों के आगे जीवित पुस्तक बनकर बैठ जाँय। इससे घूमते-फिरते बातों में व्यवस्थित रूप में विद्यार्थी थोड़े समय में ही अधिक सीख लेते हैं।

(४) शिक्षा में शिक्षक के सहवास का मुख्य स्थान है। उद्योगशिक्षा शिक्षा का अनिवार्य साधन है। शिक्षक के हृदय में विद्यार्थियों के लिए प्रेम और उत्साह भरा हुआ होगा, तभी शिक्षा विकास के लिए साधक हो सकती है।

(५) आज की शिक्षा पद्धति औद्योगिक न होने के कारण विद्यार्थी और उनके माता-पिता के बीच अन्तर बढ़ाती है।

आज रजिस्टर पर हस्ताक्षर करने और फीस देने के सिवाय माता-पिता को बच्चों की स्कूली शिक्षा में कोई दिलचस्पी नहीं रहती। स्कूल में मिलन वाली शिक्षा पुस्तकीय होने से गृहतन्त्र के व्यवहार से दूर भागती है—कौटुम्बिक प्रेम टूटता जाता है। आज की पुस्तकीय शिक्षा के बढ़ जाने से वर्ण व्यवस्था में रही हुई परम्परागत खेती व उद्योग की श्रृंखला की कड़ियाँ टूटती जा रही हैं, और इसका परिणाम आज यह देखने को मिलता है कि देश की खेती और ग्रामोद्योग सूखते जा रहे हैं। पर जब शिक्षा उद्योगमयी होगी जैसा कि गांधी जी चाहते थे तब माता-पिता को यह विश्वास हो जायगा कि उनके बच्चे उद्योग विहीन नहीं होंगे, बल्कि गृह कार्य में, घर के धन्धों में मदद करेंगे। जब ऐसा विश्वास होगा तभी विद्यार्थी और माता-पिता के बीच का अन्तर कम होगा।

(६) शिक्षा की वर्तमान पद्धति देश की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकती। उच्च शिक्षा, अंग्रेजी भाषा के माध्यम से दिये जाने के कारण थोड़े से लोग इस अपढ़ जन-समुदाय के मध्य एक स्थायी दीवार-सी खड़ी कर देते हैं। इस कारण यदि आज की शिक्षण पद्धति में गांधी जी द्वारा बतलाई गई 'बुनियादी तामील' द्वारा शिक्षा दी जाय तो समाज में उपयुक्त प्रकार की वर्ग विषमता का आना सम्भव नहीं होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७) शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए, जिसमें लड़के और लड़कियों का सर्वतोमुखी विकास हो। सारी शिक्षा एक ऐसे उद्योग के माध्यम से दी जानी चाहिए, जिसमें कुछ उपार्जन भी हो।

आज यद्यपि हम और हमारा देश स्वतंत्र है पर फिर भी पश्चिम के प्रभाव से हम अभी आजाद नहीं हुये हैं। आज हम परदेशी हूकूमत से आजाद हैं पर परदेशी भाषा या विदेशी विचारों के असर से अभी पूर्णतः स्वतंत्र नहीं हैं। आधुनिक समय में उच्च शिक्षा या युनिवर्सिटी शिक्षा का महत्व कुछ कम होता हुआ दिखलाई पड़ता है। पढ़ लिखकर वहाँ से निकलने पर भारत के नौजवान या तो सरकारी नौकरियों के पीछे मारे-मारे घूमते हैं या उसमें नाकामयाब होकर लोगों को लूट-पाट के लिए भड़काकर अपनी कुढ़न मिटाते हैं। इस कारण गांधी जी हमेशा यह चाहते थे कि युनिवर्सिटी शिक्षा को शिक्षकों की मदद से नयी तालीम (बुनियादी तालीम) के साथ जोड़ देना चाहिये। बुनियादी तालीम के विषय में गांधी जी के निम्नलिखित सिद्धांत थे :—

(१) पूरी शिक्षा स्वावलंबी होनी चाहिये।

(२) आखिरी दर्जे तक विद्यार्थी अपने हाथों का उपयोग किसी न किसी उद्योग में करता रहे।

(३) सारी शिक्षा विद्यार्थियों को प्रान्तीय भाषा द्वारा दी जाय।

(४) इसमें साम्प्रदायिक, धार्मिक शिक्षा के लिए कोई जगह नहीं होनी चाहिये।

गांधी जी ने मानव जाति की आशाओं को जगाया तथा उन्हें ठोस आधार और विश्वसनीयता प्रदान की। महात्मा गांधी स्वतंत्र और दृढ़ विचार धारा के कारण अपने युग के सबसे महान् व्यक्ति बन गये। वे एक प्रकाश स्तम्भ के समान थे, जिसके प्रकाश में भारत ने अपनी राजनीति, सामाजिक एवं शैक्षणिक अन्धकार को दूर करने का प्रयत्न किया।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रनायकः गान्धीमहात्मा !

पं० विश्वनाथशास्त्री,

संकायप्रमुखः प्राच्यविद्याधर्मशास्त्रसंकायस्थः, काशी हिन्दूविश्वविद्यालयीयः

अयं हि मानी परिदीर्णगात्रो निवारिताशेषजनाभितापः ।
अत्यन्तमाकाङ्क्षितकृष्णवर्त्मा गान्धीमहात्माऽजनि भीष्मतुल्यः ॥१॥
यस्य प्रतापोऽथ च कीर्त्तिराशिः प्रसिद्धिमाप्तौ हि समस्तभूमौ ।
यः कीर्त्तनीयः सकलैर्मनुष्यैः, सोऽस्मादृशैस्स्यात् कथमेव वर्ण्यः ॥२॥
यस्येश्वरे स्वामिनि सर्वजन्तोरास्था दृढा कस्य न दृष्टपूर्वा ।
समानता यस्य मनुष्यमात्रे यस्यादरस्सर्वजनेषु तुल्यः ॥३॥
यथा धनाढ्याश्च तथा दरिद्रा यथैव विप्राश्च तथैव शूद्राः ।
अस्पृश्यता क्वापि न वर्तमाना न जातिभेदो न हि वर्णभेदः ॥४॥
स्नेहश्च सर्वत्र सदा समान आङ्ग्ले मनुष्ये यवनेषु तद्वत् ।
यद्वच्च हिन्दूजनतासु दृष्टं प्रेमप्रगल्भं हृदयानुबन्धि ॥५॥
सत्याश्रयं यस्य समस्तकार्यं सत्यं मनः सत्यवचोऽभिरामम् ।
सत्या प्रतिज्ञा दृढ़ता स्वधर्मे स वर्णनीयो न वचःप्रसारैः ॥६॥
ददाति योऽशेषजनाय नित्यं कल्याणराशिं वसुधातलेऽस्मिन् ।
स एव पूज्यः स पुमान् स नीतिमान्, स एव विद्वान् कथितो बुधेन्द्रैः ॥७॥
दृढव्रतो यः परतन्त्रताया निवारणे भारतवर्षमध्यात् ।
यातः प्रतिष्ठां जगतीतलेऽस्मिनंनन्यलभ्यां महतीमपूर्वाम् ॥८॥
दयां सचोवाच मनुष्यतायाः प्रधानमूलं निकषोपलञ्च ।
दयां न धत्ते खलु यो मनुष्यः स वस्तुतो मानव एव नास्ति ॥९॥
स चोग्रहिंस्रैः पूशुभिः समानः शुष्कैश्च काष्ठैरथवा शिलाभिः ।
एतादृशस्यैव जनस्य जन्म निरर्थकं वै बहुनिन्दनीयम् ॥१०॥
यो वारयत्यन्यजनस्य पीडां शारीरिकीं मानसवर्तिनीं वा ।
स भाग्यवान् कोऽपि विशिष्टदेवः पुण्यैः प्रभूतैर्वसुधां प्रविष्टः ॥११॥
सर्वेषु धर्मेषु समानबुद्धिः य एव चेशा च य एव चाल्ला ।
स एव रामश्च स एव कृष्णः गिर्जागृहे मन्दिरमस्जिदेषु ॥१२॥

अहिंसा यस्यासीद् व्रतमनुपमं मङ्गलमयं ।
शिवं सत्यं रम्यं वचनमखिलं यस्य मधुरम् ॥
तथा कृत्यं सर्वं सकलजनतानन्दनकरं—
स गान्धी नेतायं दिशि-दिशि महात्मा विजयते ॥१३॥
श्रीमता विश्वनाथेन पाण्डेयेन च शास्त्रिणा ।
गान्धीमहात्मवयभ्यः श्रद्धाञ्जलिरुपाहृतः ॥१४॥

—:०:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आस्तिक पुरुष महात्मा गान्धी

डॉ० जयशंकर द्विवेदी

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारत भूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥

—विष्णु पुराण।

यों तो जहाँ कहीं मानव समाज फला फूला, समय-समय पर महान् आत्माओं का आविर्भाव हुआ, किन्तु इस सम्बन्ध में यदि भारतवर्ष को सर्वाधिक सौभाग्यशाली माना जाय तो अत्युक्ति न होगी। इस देश में राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, नागार्जुन, शंकराचार्य प्रभृति की परम्परा अबाध गति से चली आती रही है। वर्तमानकाल में युगान्तर उपस्थित कराने वाले महापुरुष महात्मा गान्धी उसी शृंखला की एक कड़ी हैं।

विष्णु पुराण की वाणी यथार्थ सिद्ध हो रही है। महात्मा गांधी के आविर्भाव से भारत की महिमा का गान आज विश्वमात्र में हो रहा है। सचमुच में इस देश में उत्पन्न होने वाले अनेक पुरुषों ने देवत्व की पदवी प्राप्त किया है। इसी कारण देवताओं ने भी स्वर्ग और अपवर्ग प्रदान करने वाली इस भारत भूमि की वन्दना की है।

अवश्य ही सृष्टि की यह एक अति विलक्षण बात है कि शान्त एवं समृद्धि के युग में महान् शासक, उद्भट विद्वान् तथा अन्य प्रकार के उन्नत मना लोगों की कमी तो नहीं ही रहती, परन्तु अलौकिक तथा असामान्य आत्माओं का आविर्भाव संकटग्रस्त अवस्था में ही पाया जाता है। सन् १८५७ के बाद इस देश की स्थिति संकटापन्न होती गई। विदेशी शासन के कुचक्र में पड़ा यह देश पिसने लगा। शोषण इतना बढ़ा कि असह्य हो उठा। मेधावी एवं परिश्रमी भारतीय जनता के बीच त्राहि-त्राहि की ध्वनि हृदयों को विदीर्ण करने लगी। ऐसे ही समय में युग पुरुष महात्मा गांधी का आविर्भाव हुआ।

रुग्ण, शरीर से दुर्बल, सदैव संकटापन्न अवस्था में पड़े रहने वाले, विरोधों के प्रतीक माने जाने वाले महात्मा गांधी ने वह कर दिखाया, जो उनकी महनीयता के अनुरूप ही था। कहा गया है :

"सर्वः कृच्छ्रगतोऽपि वाञ्छति जनः सत्त्वानुरूपं फलम् ॥"

महान् आत्मायें यदि महती संकटापन्नावस्था में भी रहती हैं फिर भी वे अपने सत्त्व, सामर्थ्य के अनुरूप ही फल की कामना करती रहती हैं। स्वराज्य-प्राप्ति की कामना उनके हृदय में थी उसे उन्होंने प्राप्त किया। उनकी आत्मा महान् थी, उसकी उपलब्धि भी महनीय हुई। "महतां सकलं महत्।" बड़े लोगों की सभी बातें बड़ी होती हैं।

उनका जीवन विरोधों का मानो समन्वय था। घोर से घोर नास्तिकों से घिरे रहने पर भी उनकी आस्तिकता अदम्य एवं अक्षोभ्य थी। कठोर से कठोर परिस्थिति में होते हुए भी उनकी प्रकृति की स्वाभाविक मृदुलता में अन्तर नहीं पड़ने पाता था। आर्जव तथा मार्दव के तो मानो वे अवतार ही थे। फिर भी समय आने पर उनकी कठोरता की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पर्धा वज्र भी नहीं कर सकता था। वास्तव में उनके चरित्र में महाकवि कालिदास की उक्ति चरितार्थ होती थी :

भीमकान्तैर्नृप गुणैः स बभूवोपजीविताम्।
अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः॥

बापू समुद्र ही के समान कठिन से कठिन परिस्थितियों में अदृष्टव्य थे तथा अपने आश्रितों के लिए रत्नों के सदृश उज्ज्वल कमनीय तथा अनुकरणीय गुणों वाले थे। सरल थे तथा सुलभ थे। 'सबहि सुलभ, सब दिन, सब देसा' यह कहावत मानो गोस्वामी जी ने उन्हीं जैसे महान् आत्माओं के लिए लिखा था। यद्यपि बापू का जीवन आदर्श एवं यथार्थ दोनों का ही अद्भुत, अनोखा कल्याणमय सम्मिश्रण था तथापि इससे भी अधिक विशेषता उनके चरित्र में वैष्णवता की थी। श्रीमद्भागवत के आदर्शों की छाप उन पर थी। मानव मात्र के लिए उनसे दिल का प्याला मीठे रस से छलकता रहता, महाराज रन्तिदेव का आदर्श ही ऐसा लगता कि मूर्तिमान हो पृथ्वी पर अवतरित हो गया हो। इसी से उनके व्यक्तित्व में एक विस्मय विमुग्धकारी मिठास और सीधापन था कि सम्पर्क में आने वाला व्यक्ति हठात् अभिभूत हो जाता था।

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् पराम्।
अष्टर्धियुक्तामपुनर्भवं वा॥
आर्तिप्रपद्येऽखिलदेह भाजाम्।
अन्तः स्थितो येन भवन्त्वदुखाः॥ —श्रीमद्भागवत।

संसार मात्र के अखिल देहधारियों के अन्तस् के दुःख को ही वे पी जाना चाहते थे।

धर्म में अडिग आस्था उनके जीवन की प्रेरक शक्ति थी। धर्म की व्याख्या उन्होंने स्वयं किया :

"Let me explain what I mean by religion. It is not the Hindu religion which I certainly praise, over all other religions but the religion which transcends Hinduism, which changes our very nature, which binds indissolubly to the truth within and which ever purifies. It is the permanent element in human nature which counts no cost too great in order to find full expression and which leaves the soul utterly restless until it has found itself, known its Maker and appreciated the true correspondence between the Maker and itself."

धर्म की यह अनुपम व्याख्या महात्मा गान्धी की विश्व को एक देन है। इस व्याख्या की ही सजीव, चलती फिरती दृश्यमान कहानी उनकी चरितावली है। उन्होंने अपने जीवन को ही सत्य और धर्म की बलिवेदी के निकष पर कसा और खरे उतरे। सत्य, धर्म और अहिंसा, इन तीनों की व्याख्या करने वालों ने भिन्न-भिन्न अर्थों व बोधों को व्यक्त करने वाला माना, पर महात्मा गान्धी ने इन तीनों को पर्यायवाची बना दिया। अहिंसा, सत्य और धर्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की परिकल्पना जैसी महाभारतकार महर्षि व्यास ने की है उसी का निष्ठा माहात्मा के शब्दों एवं जीवनी में हमे मिली है।

वन पर्व में जब यक्ष और युधिष्ठिर के बीच वार्ता होती है तो युधिष्ठिर ने सर्वप्रथम नकुल के जी उठने की प्रार्थना की। इस पर यक्ष को आश्चर्य हुआ कि उन्होंने भीम और अर्जुन के लिए क्यों नहीं प्रार्थना की। इस पर युधिष्ठिर ने यक्ष से कहा—"आनृशंस्यं चिकीर्षामि नकुलो यक्ष जीवतु"—मैं आनृशंस्य व्रत का पालन करता हूँ; इसलिए हे यक्ष ! पहले नकुल जी उठें।

यहाँ पर 'आनृशंस्य' (अहिंसा) शब्द का प्रयोग अति व्यापक अर्थ में किया गया है। युधिष्ठिर का वस्तुतः कहना था कि मनुष्य के अन्य जितने भी सद्गुण और शील परक प्रवृत्तियाँ हैं, सभी अहिंसा की ही अंग है। अङ्गी तो 'अहिंसा' है इसी के अन्तर्गत अन्य सद्वृत्तियों का सन्निवेश है। जहाँ हिंसा है वहाँ किसी भी प्रकार सत्य और धर्म का सामञ्जस्य नहीं पाया जा सकता। इसी तथ्य को प्रतिपादित करने वाला श्री कृष्ण का वाक्य है—"अनृतन्तु, भवेद् वाच्यं नत, हिंसा कदाचन।" वह सत्य ही नहीं, जिससे हिंसा को प्रोत्साहन मिले। वह धर्म ही कैसा, जिसकी ओट में हिंसा हो।

सत्य, धर्म और अहिंसा तीनों को एकाकार करने की शक्ति का मूल स्रोत था बापू की ईश्वर-सत्ता में अचल आस्था। इस अचल आस्था के ही कारण उनमें गीता में वर्णित दैवी सम्पद् के सभी लक्षण विद्यमान थे। उन्होंने कहा—

"There is an indefinable mysterious power that pervades everything. I feel it, though I do not see it.

It is this unseen power which makes itself felt and that defies all proof because it is so unlike all that I perceive through my senses. It transcends the senses because it is possible to reason out the existence and God only to a limited extent."

उपर्युक्त शब्दों द्वारा उन्होंने अपनी आस्था, अपनी अस्तिकता का स्पष्ट व्यक्तिकरण किया। इसी अडिग अस्तिकता एवं आस्था के बल पर उन्होंने अपनी अनुभूत्यात्मक धर्म की व्याख्या दी, जिसमें उन्होंने कहा कि धर्म का साक्षात्कार करने वाले की आत्मा तब तक चैन नहीं लेगी, जब तक कि उसका एकाकार उसके निर्माण करने वाली सत्ता के साथ न हो जाय

अन्त में परिसमापन करते हुए श्रीमद्भागवत के ही शब्दों में कहना है :

तव कथामृतं तप्त जीवनम्
श्रवण मङ्गल मखिलकल्मषापहम्
भुवि गृणन्ति भूरिदा जनाः

हे बापू ! तुम्हारे तप्त जीवन की कथा मनुष्य को अमृतत्व प्रदान करने वाली है, सुनने ही मात्र से मङ्गलदायिनी है एवं अखिल पापों का नाश करने वाली है, आज इस पृथ्वी पर सभी अनेकों प्रकार से तुम्हारी ही कथा को मनुष्य लोग गा रहे हैं।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा गांधी और राष्ट्रभाषा हिन्दी

सरस्वतीकान्त पाण्डेय

दर्शनशास्त्रीय उच्चानुशीलन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

संसार में संभवतः कोई ऐसा देश हो, जिसकी अपनी राष्ट्रभाषा न हो। यह अत्यन्त लज्जाजनक बात है कि आज देश को स्वतंत्र हुए करीब २२ वर्ष हो रहे हैं, परन्तु राष्ट्रभाषा का विवाद सुलझने के स्थान पर उलझता जा रहा है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के समय जो देश के कर्णधार हिन्दी की हिमायत करते रहे, वे आज उसके कट्टर विरोधी हैं। इस वर्ष संपूर्ण भारतवर्ष में गांधी शताब्दी मनायी जा रही है, जिसके लिए अनेक स्थानों पर अनेक समारोह भी हुए हैं। इस गान्धी शताब्दी वर्ष के पुनीत अवसर पर मैं महात्मा गांधी जी की हिन्दी के प्रति निष्ठा और उसे राष्ट्रभाषा पद पर आसीन कराने के उनके निजी तर्कों को प्रस्तुत करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। महात्मा गान्धी हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा मानते थे और इस सम्बन्ध में उनके निश्चित विचार थे, जिन्हें उन्होंने २० अक्तूबर १९१७ ई० को बड़ौदा में हुए गुजरात के द्वितीय शैक्षणिक सम्मेलन के अवसर पर व्यक्त किया था।

महात्मा गान्धी का विचार था कि किसी राष्ट्रभाषा के लिए पाँच आवश्यक प्रतिबन्ध होना अनिवार्य है, जो निम्न हैं :—

(१) ऐसी भाषा, जो कार्यालय कर्मियों को सीखने में सरल हो।

(२) उसमें सम्पूर्ण भारतवर्ष में धार्मिक, व्यावसायिक एवं राजनीतिक क्रिया-कलाप करने की क्षमता हो।

(३) उस भाषा को देश की जनसंख्या के सर्वाधिक लोग बोल सकते हों।

(४) सम्पूर्ण देश के लोग उस भाषा को सुगमतापूर्वक सीख सकें।

(५) उस भाषा में क्षणिक या अल्पकालिक स्थिरता न हो।

उन्होंने इन पाँच प्रतिबन्धों के परिप्रेक्ष्य में जब अंग्रेजी भाषा की मीमांसा की तो उन्हें ज्ञात हुआ कि अंग्रेजी भाषा में इनमें से एक भी प्रतिबन्ध को पूर्ण करने की क्षमता नहीं है। प्रथम प्रतिबन्ध को दृष्टिगत करते हुए उन्होंने कहा था कि यद्यपि कार्यालयों की भाषा अंग्रेजी है परन्तु यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो यह मानना पड़ेगा कि वह उतनी आसान नहीं है कि आसानी से सीखी जा सके। इस बात को सभी लोग मानते हैं कि किसी भारतीय के लिए भारतीय भाषाओं की तुलना में अंग्रेजी भाषा का सीखना कहीं अधिक कठिन है।

दूसरे आवश्यक प्रतिबन्ध के संदर्भ में यदि हम विचार करें तो हमें यह मानना होगा कि जब तक सर्वाधिक लोग अंग्रेजी बोल नहीं सकेंगे, तब तक उस भाषा में धार्मिक, व्यावसायिक एवं राजनीतिक क्रिया-कलाप असम्भव हैं। अंग्रेजी भाषा का उस हद तक प्रचार भी असम्भव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रभाषा होने के लिए तृतीय प्रतिबन्ध को भी अंग्रेजी भाषा पूरी नहीं करती, क्योंकि इस भाषा को देश के सर्वाधिक लोग नहीं बोलते।

चौथा प्रतिबन्ध भी अंग्रेजी भाषा पूरी नहीं कर पाती। क्योंकि यह इतनी आसान नहीं है कि इसे सम्पूर्ण भारतवासी सुगमता से सीख सकें।

अन्तिम प्रतिबन्ध के प्ररिप्रेक्ष्य में यदि अंग्रेजी भाषा की विवेचना की जाय तो यह स्वतः सिद्ध है कि अंग्रेजी भाषा का जो वर्तमान स्वरूप है, वह क्षणिक है। भविष्य में देश के आन्तरिक मामलों में इसकी आवश्यकता नहीं के बराबर होगी। अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में इस भाषा की उपयोगिता वस्तुतः कहीं अधिक होगी। अतः अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के लिए प्रत्येक देश को एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा की आवश्यकता है जो कि भिन्न प्रश्न है। उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वस्तुतः अंग्रेजी भाषा की आवश्यकता है।

गांधी जी ने उस सम्मेलन में कहा था कि उन्हें अंग्रेजी से कोई राग-द्वेष नहीं है, परन्तु इस भाषा को उसी सीमा तक छूट देनी चाहिए जहाँ तक उसकी आवश्यकता है। उनका विचार था कि अन्तर्राष्ट्रीय भाषा होने के कारण हमलोग अपने धर्म-गुरुओं एवं पुरोहितों को भी उसे सीखने को बाध्य कर सकते हैं जिससे वे भारत की महानता एवं उसकी संस्कृति को उस भाषा के माध्यम से विश्व के अन्य भागों के निवासियों तक पहुँचा सकें।

उन्होंने आगे यह भी कहा कि अंग्रेजी भारत की राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। इसको राष्ट्रभाषा का अधिकार प्रदान करना देश के साथ घोर अन्याय होगा। राष्ट्रभाषा के रूप में इसकी कल्पना भी अमानवीय चिन्तन होगा। तब ऐसी कौन-सी भारतीय भाषा है जिनमें वे पाँचों प्रतिबन्ध निहित हैं? उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि यह कहने में उन्हें गर्व है कि हिन्दी भाषा के अन्दर वे पाँचों तत्त्व समाहित हैं।

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से विवेचन करते हुए महात्मा गांधी जी ने कहा कि उत्तर भारत के हिन्दू एवं मुसलमान जिस भाषा को बोलते एवं लिखते हैं, चाहे वह देवनागरी लिपि में हो अथवा फारसी लिपि में, वह हिन्दी ही है। ऐसा समझा जाता है कि हिन्दी तथा उर्दू दो भिन्न भाषाएँ हैं। परन्तु यह तथ्य नहीं है, क्योंकि उत्तर भारत में हिन्दुओं एवं मुसलमानों द्वारा बोली जाने वाली भाषा एक ही है। शिक्षित वर्ग ने इन दोनों भाषाओं में अन्तर पैदा कर दिया है। इसका कारण यह है कि शिक्षित हिन्दू लोग संस्कृत मिश्रित हिन्दी बोलते हैं, जबकि शिक्षित मुसलमान फारसी एवं अरबीयुक्त उर्दू बोलते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि एक ही भाषा के दो वर्ग हो गये। हिन्दुओं एवं मुसलमानों का शिक्षित समुदाय जिन भाषाओं का प्रयोग करता है उन्हें जन-साधारण की भाषा में कोई स्थान नहीं है।

महात्मा गांधी को उत्तर भारत में हिन्दुओं एवं मुसलमानों के बीच रहने के प्रचुर अवसर मिले थे और उन्हें उनके मध्य बात-चीत करने में कोई कठिनाई नहीं प्रतीत हुई। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि उत्तर भारत की भाषा का नाम चाहे लोग हिन्दी दें अथवा उर्दू, वस्तुतः वह एक ही भाषा है और उसका उद्गम-स्थल भी एक ही है। यदि उसे देवनागरी लिपि में लिखा जाय तो वह हिन्दी कही जाती है और यदि फारसी लिपि में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखा जाय तो उर्दू। अतः यदि कहीं अन्तर है तो वह लिपि में है, न कि भाषा में। यदि हिन्दू और मुसलमान सद्भावनापूर्वक विचार करने बैठें तो वही लिपि सर्वमान्य होगी जो सर्वाधिक लोगों द्वारा प्रयोग में लायी जाती हो। और वही लिपि राष्ट्रीय लिपि कहलायेगी। उन्होंने कहा कि यदि कुछ लोग फारसी लिपि में ही लिखना चाहें तो उन्हें पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिये और सरकार से उन्हें संरक्षण प्राप्त होना चाहिये।

यदि गंभीरतापूर्वक विचार किया जाय तो वास्तव में हिन्दी के अतिरिक्त अन्य कोई दूसरी भाषा नहीं है जिसमें पूर्वोक्त पाँचों गुण विद्यमान हों। बंगला भाषा का स्थान हिन्दी के बाद है, परन्तु बँगाली लोग स्वयं बंगाल के बाहर हिन्दी ही बोलते हैं। धार्मिक दृष्टिकोण से उत्तर भारत में आदिकाल से अन्य सभी प्रान्तों से तीर्थ-यात्री आते रहे हैं और उन्हें भाषा की समस्या कभी महसूस नहीं हुई। वस्तुतः हम विश्वास के साथ यह नहीं कह सकते कि मद्रास में केवल अंग्रेजी से ही हमारा काम चल जायेगा।

यह बात ग्रहण करने योग्य है कि मुसलमान लोग सम्पूर्ण भारत में उर्दू बोलते हैं, जिन्हें आप काफी संख्या में सभी प्रान्तों में प्राप्त कर सकते हैं। उर्दू भाषा के विकास का इतिहास यदि हम पढ़ें तो हमें ज्ञात होगा कि उर्दू भाषा के विकास में हिन्दी का ही योगदान रहा है। मुसलमान शासकगण अरबी या फारसी को देश की राष्ट्र-भाषा बनाने में असमर्थ रहे। उन्होंने हिन्दी व्याकरण का सहारा लेकर फारसी लिपि में फारसी एवं अरबी शब्दों के प्रयोग अपने भाषणों एवं लेखों में किया है। कारण स्पष्ट है कि उन्हें यह भय था कि वे सर्व-साधारण में विदेशी भाषा के माध्यम से सामंजस्य स्थापित नहीं कर सकते। अंग्रेजी के लिए भी यही बात लागू होती है। जो लोग मिलिटरी प्रशासन के बारे में जानते हैं उन्हें ज्ञात है कि हिन्दी एवं उर्दू में आज्ञा देने वाले शब्द तैयार किये गये थे।

अतः हम देखते हैं कि भारतीय भाषाओं में मात्र हिन्दी ऐसी भाषा है जिसमें राष्ट्र-भाषा होने की क्षमता है। गांधी जी ने यह अनुमान किया था कि अन्य प्रान्तों जैसे मद्रास, गुजरात, पंजाब एवं बंगाल के शिक्षित समुदाय को थोड़ी कठिनाई अवश्यम्भावी है, परन्तु यह ऐसी सरल भाषा है जिसे कोई भी आसानी से सीख सकता है। गांधी जी ने उस शैक्षणिक सम्मेलन में स्पष्ट शब्दों में कहा था कि हमलोग गैर हिन्दी भाषी शिक्षित समुदाय से निवेदन कर सकते हैं कि वे हिन्दी भाषा सीखें जो कि इसी मिट्टी से निकली है और जिसका विकास पूर्ण भारतीय परम्परा में हुआ है। वर्तमान युग में विदेशी भाषा का प्रयोग दासता का सूचक नहीं है तो और क्या है? किसी भी स्वतन्त्र देश के लिए विदेशी भाषा का प्रयोग माथे पर कलंक का टीका है। आपसी विवाद शान्त चित्त होकर देश-भक्ति की भावना से आसानी से सुलझाये जा सकते हैं।

काश! यदि भारतीय कर्णधारों ने गांधी जी की राष्ट्र-भाषा के प्रति उपर्युक्त बातों पर ध्यान दिया होता तो आज देश का नक्शा कुछ और ही होता और भाषावार प्रान्तों का संगठन नहीं होता एवं आपसी कटुता इस सीमा तक नहीं होती। हम गर्व के साथ कम से कम इतना तो कह सकते कि हम स्वतन्त्र हैं और हमारी राष्ट्र-भाषा है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

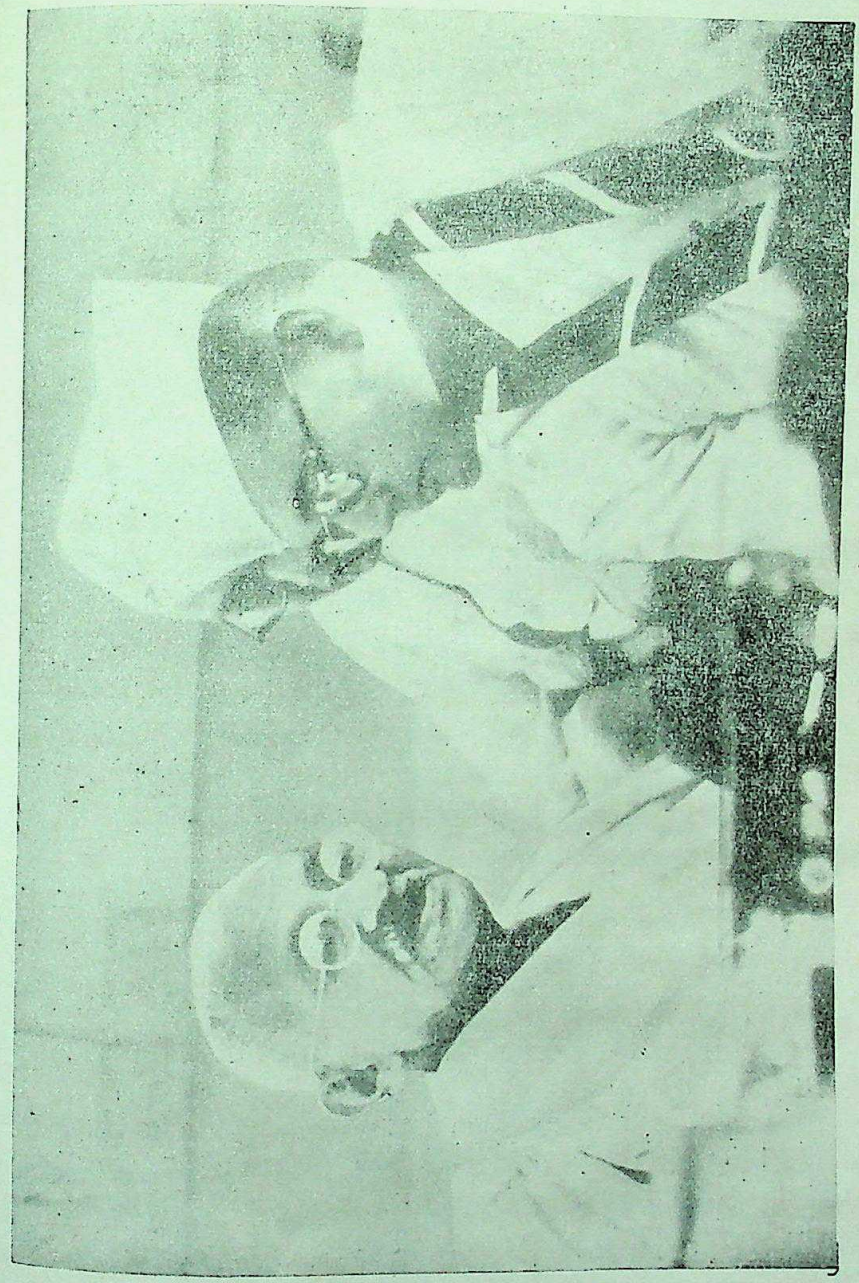

1938 के हरिपुरा कांग्रेस में सुभाषचन्द्र बोस के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुनियादी शिक्षा, पश्चिमी दर्शन व शिक्षा विचारक : गांधी जी के शैक्षणिक विचारों का एक विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ० सुदर्शन पाल अहलुवालिया,
रीडर, शिक्षा संकाय, का० हि० वि० वि०

'उन्होंने (महात्मा गांधी) कोई शैक्षिक सिद्धांत नहीं पढ़ा है, मैं नहीं सोचता कि उन्हें 'एमील' नामक पुस्तक के अस्तित्व की जानकारी है, और जब उन्होंने अपनी योजना की शिक्षा-शास्त्रियों के सम्मेलन में चर्चा की, वे एवट-वुड के प्रतिवेदन के अस्तित्व से भी परिचित नहीं थे।'[1]

आज के 'अंतरिक्ष-यात्रा युग' में किसी भी देश के विचारकों एवं विचार प्रणालियों का अन्य देशों के विचारकों एवं विचार प्रणालियों से प्रभावित हो जाना सर्वथा न्यायसंगत है। बुनियादी शिक्षा के विश्लेषणात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा-दर्शन, उद्देश्य, पाठ्य-सामग्री तथा अध्यापन शैली की दृष्टि से इस शिक्षण विचार में पश्चिमी शिक्षा-दर्शन एवं उनके प्रवर्त्तकों की एक अमिट और स्पष्ट झलक मिलती है और पाश्चात्य शिक्षा धाराओं के ये प्रभाव चिह्न ही इस भ्रम को जन्म देते हैं कि बुनियादी शिक्षा-सिद्धान्त गतिशील पश्चिमी शिक्षा-दर्शन की अनुकृति मात्र हैं। कुछ गैर जिम्मेदार व्यक्ति तो यहाँ तक कह डालते हैं कि महात्मा गांधी ने केवल रूसो और ड्युई की विचारधारा को दुहराया मात्र है। मेरा निश्चित मत है कि विचार-साम्य ही इस त्रुटिपूर्ण एवं दोषपूर्ण भ्रांति का मूल श्रोत है। हमें सदैव इस प्रचलित लोकोक्ति को ध्यान में रखना चाहिए—"बुद्धिमान् व्यक्ति सदैव एक समान ही सोचते हैं।" वस्तु स्थिति जानने के लिए यहाँ बुनियादी शिक्षण विचार का एक वैज्ञानिक विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है ताकि यह निर्णय किया जा सके कि किस सीमा तक यह विचार मौलिक तथा शुद्ध भारतीय है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो सके कि किस-किस क्षेत्र में बुनियादी शिक्षा और गतिशील पाश्चात्य शिक्षा-दर्शनों में समानता की एक अस्पष्ट झलक दिखाई देती है।

दार्शनिक पृष्ठ-भूमि

बुनियादी शिक्षा को प्रभावित करने वाली किसी एक दार्शनिक विचारधारा मात्र का सरलतापूर्वक नाम नहीं लिया जा सकता। इसकी जड़ें भौतिकवाद में धंसी दिखाई देती हैं जो बुनियादी शिक्षा को प्रेरणा देता है। महात्मा गांधी का कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति को कुछ उत्पादन करना चाहिए। यदि प्रत्येक व्यक्ति जितना खाता और पहिनता है उतना पैदा नहीं करता तो वह समाज के लिए भार मात्र ही है। अतः वह ऐसा समाज चाहते थे जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को कुछ न कुछ उत्पादन करना पड़े। अतः उन्होंने उत्पादन क्रिया को शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकार किया है। फलस्वरूप बुनियादी शिक्षा में

[1] Mahadeva Desai : "Primary Education and the Village" in the **Yearbook of Education** (London : Evans Bros. , 1940), p. 441.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल्यावस्था से ही रोटी के लिए कार्य करने की आदत डालने और अध्यापन में रोटी करने की आदत के लिए श्रम और वैज्ञानिक काल का समन्वय दक्षतापूर्ण करने का विचार प्रतिपादित किया गया है। यह स्पष्ट है कि बुनियादी शिक्षा में भौतिकवादी दृष्टिकोण, यदि प्रथम नहीं, तो विशिष्ट महत्ता अवश्य रखता है। अस्तु, बुनियादी शिक्षा का विवादास्पद विषय होना न्यायसंगत और व्यावहारिक प्रतीत होता है। यह भौतिकवादी दर्शन यद्यपि भारतीयों के लिए नया नहीं है फिर भी आंशिक रूप में यह एक पश्चिमी आयात ही लगता है। पहले आदर्शवाद और फिर भौतिकवाद की बात प्राचीन भारतीय दर्शन में भी इंगित की गई है। महात्मा गांधी ने 3 Rs के स्थान पर 3 Hs (Hand, Head and Heart) पर बल देने के विचार को प्रतिपादित किया है। केवल मस्तिष्क के विकास पर जोर देते हैं। जब कि मस्तिष्क और हृदय दोनों की शिक्षा पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। बुनियादी शिक्षा में मानसिक शक्तियों का गौण स्थान नहीं है। किन्तु गांधीजी इनके एकांगी विकास के विरोधी हैं। वे व्यक्ति के संतुलित विकास के पक्षपाती हैं जिसमें मानसिक, शारीरिक एवं नैतिक विकास को पूरा-पूरा समाज प्राप्त होता है। उनकी दृष्टि में व्यक्ति का संतुलित विकास समाज के निर्माण व उत्थान का प्रथम सोपान है। संभवतः इसी कारण, सत्य अहिंसा और सहयोग पर आधारित समाज व्यवस्था पर ही वे अधिक बल देते हैं। दो अन्य दार्शनिक विचारधाराएँ प्रकृतिवाद और प्रयोजनवाद भी शायद गांधी जी के ध्यान में थी। बालक की प्रवृत्तियों पर उचित जोर देते हुए बालक की रचनात्मकता का प्रस्फुरण और जो उद्योग उसे पसन्द है उसे चुनने की स्वतन्त्रता तथा नियंत्रित वातावरण में स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने का अवसर प्रकृतिवाद और प्रयोजनवाद के प्रभाव के रूप में देखे जा सकते हैं।

उद्योग के माध्यम से शिक्षा प्रोजेक्ट प्रणाली से अपना स्वरूप साम्य रखता है। बालक के मन में श्रम के प्रति निष्ठा उत्पन्न करना प्रगतिवादी दृष्टिकोण की प्रतिक्रिया कही जा सकती है। इस प्रकार बुनियादी शिक्षा सभी पाश्चात्य दार्शनिक विचार धाराओं का—भौतिकवाद, उपयोगितावाद प्रयोजनवाद, प्रगतिवाद, प्रकृतिवाद और आदर्शवाद आदि का इन्द्रधनुष प्रतीत होता है। यद्यपि प्राचीन काल से प्रतिपादित भारतीय दर्शन के शुद्ध आदर्शवाद को यह आधार के रूप में अपनाती है तथापि इसमें अन्य तत्वों का अभाव नहीं है।

उद्देश्य—स्वरूप एवं पूर्ति

जीवन दर्शन ही सदैव शिक्षा का उद्देश्य निर्धारित करता है। बुनियादी शिक्षा के मूलभूत संगम आदर्शवादी, भौतिकवादी और उपयोगितावादी दर्शन हैं। व्यावहारिक स्वरूप में इसके उद्देश्य सामान्यतः भौतिकवादी प्रतीत होते हैं। निस्सन्देह मानव की मूलभूत आवश्यकताओं—भोजन, वस्त्र तथा आवास की पूर्ति पर बुनियादी शिक्षा अत्यधिक ध्यान देती है। यद्यपि यह दृष्टिकोण भौतिकवादी प्रतीत होता है। फिर भी बालक के शारीरिक, नैतिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए यह उसकी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति अनिवार्य है। समग्र जीवन का यह एक महत्वपूर्ण अंग है जिसके लिए गांधी जी ने उद्योग शिक्षा का विधान किया। उद्योग का महत्व केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके व्यावसायिक रूप तक ही सीमित नहीं है वरन् वह बालक की शिक्षा और उसके विकास का साधन भी कहा गया है। जहाँ तक उसमें निहित घी-रोटी का दृष्टिकोण है वह भारत के लिए एक विदेशी वस्तु तथा पश्चिम का प्रभाव प्रतीत होता है।

बुनियादी शिक्षा का मुख्य लक्ष्य बालकों का प्रजातांत्रिक समाज के लिए, जिसे भारत ने एक आदर्श रूप में स्वीकार किया है, नागरिकता का प्रशिक्षण देना है। यदि बुनियादी शिक्षा के क्रमिक ऐतिहासिक विकास की ओर ध्यान दें तो इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि १९४७ में बुनियादी शिक्षा-विशारदों ने प्रजातन्त्र सम्बन्धी उद्देश्यों की घोषणा नहीं की थी। उस समय भारत स्वतन्त्र नहीं था और ब्रिटिश निवासी देश पर छाए थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति एक स्वप्न मात्र था। अतः नागरिकता का यह उद्देश्य भी शिक्षा को एक अमेरिकी देन दिखाई देता है।

शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक और सांस्कृतिक विकास संक्षेप में सर्वांगीण विकास पाश्चात्य शिक्षा शास्त्री पैस्टालाजी द्वारा सर्व संतुलित विकास का उद्देश्य नाम से प्रचारित किया गया था। अन्य प्रकृतिवादियों ने उसकी पुष्टि की थी। भारतीय परम्परा मूलरूप में केवल आध्यात्मिक एवं नैतिक है और यह मस्तिष्क के सुसंस्कृत बनाने पर अधिक जोर देती है। एक सभ्य व्यक्ति वह है जो उत्तम शरीर, उत्तम बुद्धि, उत्तम नैतिकता धारण करता है तथा अपने कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व से भलीभांति परिचित है एवं जिसके हृदय में असंतुलन की गुंजाइश नहीं है। बुनियादी शिक्षा में जीवन के सभी अंगों को अपने में समाविष्ट करने वाली संस्कृति के साथ ही स्वावलम्बन तथा समाज के योग्य सदस्य के रूप में धनार्जन पर अधिक ध्यान दिया गया है। महात्मा गांधी आध्यात्मिक तथा नैतिकता में अत्यधिक विश्वास रखते थे। नैतिकता के विकास के लिए उन्होंने धर्म शिक्षा को बुनियादी शिक्षा में अधिक महत्ता नहीं दी क्योंकि उनका विचार था कि बालक उपर्युक्त वातावरण में नैतिकता अप्रत्यक्ष रूप से अपने आप ही सीख सकते हैं। जान ड्युई के समान उनका विश्वास था कि जीवन के उच्चतर मूल्य पारस्परिक सहकार्य से स्वयं उत्पन्न हो जायेंगे। यही कारण है कि अमेरिकी प्रगतिवादी शिक्षा का दृष्टिकोण बुनियादी शिक्षा को रंगे हुए दिखाई देता है। प्रख्यात अंग्रेज शिक्षाशास्त्री सर टी० पी० नन के समान महात्मा गांधी आत्म-सिद्धि या आत्म-प्रत्यक्षीकरण के उद्देश्य में तथा फ्राबिल के समान विविधता में एकता लाने के पक्ष में गुप्त रूप में थे, खुले रूप में नहीं।

पाठ्य-सामग्री

बुनियादी शिक्षा की विषय वस्तु वास्तव में भारतीय ही है, अतः पढ़ाए जाने वाले विषयों की चर्चा करने की आवश्यकता नहीं। परन्तु यदि हम पाठ्य-क्रम निर्धारण तथा निर्माण के सिद्धान्तों का विवेचन करें तो पाश्चात्य प्रभाव की एक झलक दृष्टि-गोचर अवश्य होती है।

बुनियादी पाठ्य-क्रम के संयोजन में उद्योग को अत्यधिक महत्व दिया गया है। ऐसा सोचा गया कि उद्योग समाज तथा व्यक्ति के जीवन का एक अभिन्न अंग हो। महात्मा गांधी द्वारा प्रचारित एवं प्रसारित बुनियादी शिक्षा वस्तुतः जीवन के लिए जीवन द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन पर्यन्त शिक्षण है। इसका उद्देश्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना है जो शोषण तथा हिंसा से रहित हो। यह विचार ड्युई के कथन "शिक्षा सामाजिक पुनर्निर्माण की क्रिया है" और शिक्षा केवल भावी जीवन के लिए नहीं अपितु "स्वयं जीवन की एक प्रक्रिया है" के अत्यधिक निकट है। ड्युई के समान ही गांधी जी भी उद्योग को जीवन के लिए ही मानते थे। ड्युई ने गृहकार्य एवं काष्ठ कला जैसे उद्योग अपनी शिक्षा व्यवस्था में प्रारम्भ किये और महात्मा गांधी ने प्रारम्भ में कताई-बुनाई और अन्य उपयोगी तथा उत्पादक उद्योगों को स्थान दिया। पेस्टालाजी ने बालकों को शिक्षित बनाने के लिए कृषि तथा बागवानी का महत्व दर्शाया और खेतों में गीत गाते हुए कार्य करने का उदाहरण प्रस्तुत किया। यही विचार बुनियादी शिक्षा में भी कार्यान्वित किया गया है। विषय वस्तु के सम्बन्ध में एक दूसरी देन है हरबर्ट का एकीकरण और समवाय का सिद्धान्त। हरबर्ट पहला शिक्षाशास्त्री था जिसने पाठ्य-क्रम निर्माण के इन सिद्धान्तों का विश्लेषणात्मक विवेचन किया। उन्होंने इतिहास को समस्त विषयों का केन्द्र माना और इसी कारण इतिहास पर अधिक जोर दिया। महात्मा गांधी ने भी ठीक इसी प्रकार उद्योग को केन्द्रवर्ती विषय मानने के लिए तथा अन्य विषयों को उसके माध्यम से पढ़ाने पर जोर दिया है। गांधी जी की मौलिकता इस रूप में अवश्य है कि मूलोद्योग केन्द्रिय शिक्षा के रूप में बालक के ज्ञानार्जन में उसकी सक्रियता को शीर्ष स्थान दिया गया है। पाश्चात्य शिक्षा-शास्त्रियों ने भी विषय केन्द्रित शिक्षण को प्रभावपूर्ण एवं समन्वित रूप देने का प्रयत्न किया है। मूलोद्योग केन्द्रित शिक्षा में बालक मूलोद्योग-जन्य क्रियाओं पर आधारित विभिन्न विषयों का ज्ञान स्वाभाविक ढंग से कुछ स्वतः अर्जित करेगा और कुछ भाग की पूर्ति शिक्षक के द्वारा होगी।

एक पश्चिमी झलक इस बात में भी दिखलाई देती है कि अन्य विषयों को चुनने में किसी नए विषय का समावेश नहीं किया गया, अपितु पुराने विषय ही पाठ्य-क्रम के विषय समझे गये। मातृभाषा ही अध्यापन का माध्यम हो, यही एक नवीन बात पाठ्य-क्रम में जोड़ी गई।

अध्यापन-विधि

बुनियादी शिक्षा में मान्य अध्यापन विधि कार्य द्वारा शिक्षा एवं क्रियाशीलता के सिद्धान्त पर आधारित है। उद्योग व हस्तकार्य द्वारा शिक्षण और स्थानीय आवश्यकताओं और माँगों के अनुसार उद्योग का चुनना संभवतः पश्चिमी प्रभाव के कारण ही सर्वमान्य हुए हैं। रूसो से लेकर ड्युई तक समस्त पाश्चात्य शिक्षाशास्त्रियों ने कार्य द्वारा शिक्षण के महत्व को स्वीकार किया है। सभी शिक्षा विशारद एक मत हैं कि बालक सुस्त और अकर्मण्य श्रोता नहीं होना चाहिए बल्कि कार्य करने तथा सीखने के लिए उसे पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए। श्रम के प्रति सम्मान एक प्रकार का संवेगात्मक प्रशिक्षण है। यह स्पष्ट है कि महात्मा गांधी परिश्रम की कार्य-प्रणाली से भली-भांति परिचित थे और देश की वर्तमान स्थिति में इसकी विशेष आवश्यकता का उन्होंने अनुभव किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानेन्द्रियों के प्रशिक्षण का सिद्धान्त छोटे बालकों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। ज्ञानेन्द्रियों के प्रशिक्षण का यह सिद्धान्त फ्राबिल ने प्रतिपादित किया। तत्पश्चात् मान्टेसरी ने इस सिद्धान्त को अपनी अध्यापन विधि का आधार बनाया। अतः कोई भी व्यक्ति कह सकता है कि पूर्व बुनियादी स्तर का शिक्षण पाश्चात्य शिक्षाशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित विधि का अनुसरण मात्र ही है।

शिक्षाशास्त्रियों और गांधी जी में विचार-साम्य

पाश्चात्य विश्व के शिक्षा इतिहास में सर्व प्रथम रूसो ने बालक के व्यक्तित्व के स्वतन्त्र विकास के विचार को प्रतिपादित किया था। रूसो का विश्वास था कि बालक को सामाजिक कुरीतियों तथा शोषण से अलग रखा जाय। अपनी प्रख्यात पुस्तक 'एमील' के प्रथम वाक्य में ही उन्होंने लिखा कि "प्रत्येक वस्तु अच्छी है, क्योंकि वह प्रकृति के अपने हाथों द्वारा निर्मित है। परन्तु प्रत्येक वस्तु दोषपूर्ण हो जाती है जब वह मानव प्राणी के सम्पर्क में आती है।" उन्होंने प्रकृति की ओर लौटने का सुझाव दिया है। उन्होंने प्रतिपादित किया कि जो कुछ व्यक्ति को करना है वह प्राकृतिक ढंग से करे, प्राकृतिक वातावरण में करे और प्राकृतिक सुविधाओं द्वारा करे। बालक को प्रकृति की गोद में छोड़ दे और सीखने का अवसर दे, यह बात भी उसमें की गई है। प्रख्यात शिक्षाशास्त्री लॉक, जिनका व्यक्तिगत अनुभव में गहरा विश्वास था, कहा है "जो कुछ सीखा या पढ़ा जाता है उसका महत्व नहीं है अपितु महत्व इस बात का है कि कैसे सीखा और पढ़ा जाता है।" बुनियादी शिक्षा भी पुस्तकीय ज्ञान मात्र पर ही अवलम्बित नहीं है। रूसो बालक के समाज से दूर प्रकृति की गोद में शिक्षण पाने के हक में हैं किन्तु गांधी जी ने सम्पूर्ण शिक्षण को सामाजिक पृष्ठ-भूमि पर स्थापित किया है। बुनियादी शिक्षा प्रत्यक्ष अनुभव और व्यावहारिक ज्ञान पर अधिक जोर देती है। क्रिया द्वारा ज्ञानार्जन बुनियादी शिक्षा का प्राण है। इस प्रकार रूसो द्वारा प्रतिपादित समस्त सर्वमान्य सिद्धान्तों की झलक हम बुनियादी शिक्षा में पाते हैं।

प्रख्यात शिक्षाशास्त्री पेस्टालाजी ने प्रकृति तथा प्राकृतिक प्रसाधनों को शैक्षणिक प्रक्रिया में प्रयुक्त करने का सुझाव दिया। वे कृषि और बागवानी के माध्यम से गणित, भूगोल, भाषा, कला और संगीत पढ़ाने के पक्ष में हैं। वे प्रथम विचारक थे जिन्होंने ठोस अनुभव द्वारा शिक्षा प्राप्त करने की पद्धति प्रतिपादित की। 'स्थूल से सूक्ष्म' अध्यापन सूत्र का प्रयोग स्पष्ट करते हुए रेखागणित को बागवानी के माध्यम से पढ़ाने की सम्भावना प्रदर्शित की। बुनियादी शिक्षा में पेस्टालाजी की अध्यापन विधि की झलक मिलती है। पेस्टालाजी के समान ही महात्मा गांधी संगीत को आध्यात्मिक और नैतिक विकास का साधन मानते थे।

महात्मा गांधी और फ्राबिल में भी विचार-साम्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। फ्राबिल ने एक सच्चे भारतीय के समान प्रत्येक बालक में एक दैवी लौ देखी। वे चाहते थे कि बालक असीमित के साथ एकता व सम्बन्ध क्रीड़ा और रचनात्मक क्रियाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के द्वारा स्थापित करे। उनका आध्यात्मिक आदर्शवाद रचनात्मक क्रियाओं को उत्पादक बनाकर भौतिकवाद स्तर पर नहीं लाता है। यद्यपि उनके मस्तिष्क में शिक्षा की उपादेयता विद्यमान थी। बुनियादी शिक्षाक्रम में आध्यात्मिकता का पुट कम है। महात्मा गांधी बालक की शिक्षा उसे उपयोगी हस्तकार्य सिखला कर प्रारम्भ करना चाहते थे। वे चाहते थे कि जिस क्षण से उसकी शिक्षा प्रारम्भ हो वह कुछ न कुछ उत्पादन करना सीखे, इस भौतिकवादी दृष्टिकोण को अपनाते हुए भी बुनियादी शिक्षा से आध्यात्मिक विकास की उपेक्षा नहीं है।

बुनियादी शिक्षा और मान्टेसरी प्रणाली में विचार साम्य दो रूप में दृष्टिगोचर होता है। सर्वप्रथम हाथ और हृदय का प्रशिक्षण स्पष्टतः सीधा मान्टेसेरियन प्रभाव है। इसके पूर्व भारतीय शिक्षा हाथ और हृदय के समन्वय से अभावग्रस्त थी। इस सिद्धान्त से बुनियादी शिक्षा में दो अच्छी बातें सीखी हैं--(१) आत्म स्वावलम्बन का सिद्धान्त और (२) बालक के सामाजिक व्यक्तित्व का विकास। मान्टेसरी पद्धति में प्रतिपादित किया गया है कि बालक की व्यक्तिगत विशेषता अर्थात् उसका निजत्व स्वीकार किया जाए। प्रारम्भ से ही बालक के वैयक्तिक अन्तर की मान्यता देते हुए जाति, समुदाय और धर्म को महत्व न देना ही हितकर है। बुनियादी शिक्षा में शिशु शिक्षण पर ध्यान दिया जाना मैडम मान्टेसरी का, जो बालकों को अत्यधिक प्यार करती थी, एक स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

विभिन्न शिक्षाशास्त्रियों के समान ड्युई के शिक्षण विचार और बुनियादी शिक्षा में भी कुछ समानता दिखाई देती है। शिक्षा में उद्योग, प्राकृतिक वातावरण और सामाजिक वातावरण का संतुलित एकीकरण होना चाहिए, यह विचार सर्व प्रथम ड्युई द्वारा प्रतिपादित किया गया था। वे शिक्षा को स्वयं जीवन मानते थे, जीवन के लिए तैयारी नहीं। समाजोपयोगिता का सिद्धान्त उनका है। उनका अकाट्य मत है कि प्रजातांत्रिक शिक्षा सामाजिक परजीवी उत्पन्न नहीं करती अपितु समाजोपयोगी नागरिकों का निर्माण करती है। शिक्षा की कल्पना व्यक्ति की सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के एक साधन के रूप में होनी चाहिए। जिस प्रकार प्रोजेक्ट जीवन की एक समस्या है, उसी प्रकार उद्योग जीवन की वास्तविक क्रियाएँ हैं। वस्तुतः ड्युई का प्रोजेक्ट और महात्मा गांधी का उद्योग समानार्थक ही प्रतीत होते हैं। दोनों के दृष्टिकोण में यदि तात्विक अन्तर है तो यह कि ड्युई समाज के लिए शिक्षा का विधान करते हैं जबकि गांधी जी शिक्षा द्वारा नव समाज के निर्माण की कल्पना करते हैं।

शिक्षा व्यवस्था में समाज की आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए ही ड्युई अपने आपको भौतिकवादी स्तर से ऊपर नहीं उठा सके। उन्होंने जीवन के स्थायी मूल्यों की पूर्ण अवहेलना की। उनकी दृष्टि से मनुष्य अपने वातावरण में स्वतः मूल्यों का निर्माता है। इस विचार धारा में उनका उपयोगितावादी दृष्टिकोण ही प्रमुख है जबकि गांधी जी भौतिकवादी आधार को स्वीकार करते हुए भी अपने आपको आध्यात्मिकता के क्षेत्र तक ले जाते हैं। उनमें स्थायी मूल्यों के प्रति आस्था एवं समादर दिखाई देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरबर्ट और स्पेंसर का भी बुनियादी शिक्षा पर प्रभाव परिलक्षित होता है। नैतिकता का पुट हरबर्ट की देन कहा जा सकता है। उन्होंने ही शिक्षा के धार्मिक तथा नैतिक उद्देश्य पर सर्वाधिक जोर दिया है। जीवन सुरक्षित रखने के लिए शिक्षा की उपयोगिता स्पेन्सर का स्पष्ट प्रभाव है। बुनियादी शिक्षा औद्योगिक क्रांति से भी स्पष्ट प्रभावित दिखाई देती है। व्यवसाय के लिए शिक्षा इस क्रांति का ही प्रभाव है। बुनियादी शिक्षा में भी यह विचार अंतरंग धारा के रूप में प्रवाहित है। बुनियादी शिक्षा प्राप्त बालक से हम आशा करते हैं कि पाठशाला छोड़ने के उपरान्त उद्योग के अर्जित ज्ञान को उपयोग में ला सकेगा। बुनियादी और उत्तर बुनियादी शिक्षा-स्तर में इसीलिए उद्योग पर अधिक बल दिया जाता है ताकि बालक उद्योग में निपुणता प्राप्त कर सके।

कार्ल मार्क्स साम्यवाद के जनक व पूंजीवाद के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने धनी वर्ग तथा निर्धनों के बीच समानता लाने के विभिन्न सिद्धान्त प्रतिपादित किए। समानता लाने के लिए शोषित वर्ग का प्रशासन और उत्पादन पर नियंत्रण लाना होगा। यह तभी संभव है जबकि विकेन्द्रीकरण हो। गांधी जी भी कहा करते थे कि हमें ऐसे समाज का निर्माण करना है जो कि न्याय और नियम पर आधारित हो। ऐसा समाज जहाँ धनी और निर्धन में कोई अन्तर न हो, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को जीविकोपार्जन, विश्वास तथा स्वतंत्रता का अधिकार हो। वास्तव में यह शिक्षा व्यवस्था कम से कम भारतीयों के लिए एक आदर्शवादी व्यवस्था है। यद्यपि भारत रूस के पद चिह्नों पर नहीं चल सकता फिर भी महात्मा गांधी ने समानता, सामाजिक न्याय और स्वतंत्रता पर आधारित वर्गहीन तथा जातिहीन समाज रचना का विचार प्रतिपादित किया। उनकी विचार शैली का विश्लेषणात्मक अध्ययन बतलाता है कि उनके और मार्क्स के विचारों में काफी साम्य है। सत्यता तो यह है कि श्रम के प्रति निष्ठा मार्क्सवादी दर्शन की देन है। गांधी जी की विशेषता इस मान्यता के दर्शन को अहिंसा की पृष्ठभूमि पर खड़ा करना है। वे क्रांति के स्थान पर शिक्षा रचनात्मक कार्यक्रमों तथा जन सहयोग, श्रम के गौरव आदि के आधार पर इस व्यवस्था को लाना चाहते थे।

महात्मा गांधी की देन

यद्यपि बुनियादी शिक्षा और पाश्चात्य विचार धाराओं में पर्याप्त विचार साम्य दिखाई देता है फिर भी यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि बुनियादी शिक्षा में कुछ नवीनता है। शिक्षा-दर्शन, उद्देश्य, अध्यापन-विधि, विषय वस्तु चाहे पश्चिमी रंग में रंगा हो, परन्तु नवीनता इस बात में है कि शिक्षा क्रम एक अनूठे ढंग से संवारा गया है। बुनियादी शिक्षा को विदेशी शासन द्वारा लादी गई अनाचारपूर्ण शिक्षा-व्यवस्था का एक मात्र व्यावहारिक हल समझा गया और इसी कारण बुनियादी शिक्षा को सम्मान दिया गया, बल्कि आज तो उसे राष्ट्रीय शिक्षा योजना का आधार भी बनाया गया है। पश्चिमी जगत् के लिए उद्योग केन्द्रित शिक्षा नई नहीं है परन्तु भारत के लिए यह एक क्रांतिकारी विचार है जो भारतीय शिक्षा के इतिहास में आज तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अज्ञात ही था। महात्मा गांधी ने जब सम्पूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया को उत्पादक उद्योग के माध्यम से चलाने का विचार रखा, हमें उन्हें एक क्रांतिकारी शिक्षा दृष्टा कहने के लिए बाध्य होना पड़ा। महात्मा गांधी की अद्वितीयता इस बात में है कि उन्होंने विभिन्न दार्शनिक विचारों का सुन्दर समन्वय स्थापित किया है। महात्मा गांधी की वास्तविक महानता यह है कि उन्होंने आदर्शवाद, प्रकृतिवाद और प्रगतिवाद दार्शनिक विचारों को पृथक नहीं समझा अपितु उनके शिक्षा दर्शन में हम सभी दार्शनिक विचारों को एकरस प्रवाहित देखते हैं। इस एकता में निहित उनका भारतीय परिस्थितियों और उनकी समस्याओं को हल करने वाला जीवन दर्शन है।

हम यह निःसंकोच कह सकते हैं कि बुनियादी शिक्षा तथा उसके मूलभूत सिद्धान्तों में एक बड़ी सीमा तक पाश्चात्य शिक्षा-शास्त्रियों के विचारों का साम्य दिखाई देता है परन्तु महात्मा गांधी ने अपनी निजी मौलिकता के कारण एक ऐसा सुन्दर समन्वय स्थापित किया है कि हमें सदैव बुनियादी शिक्षा पूर्णतः नवीन और मौलिक दिखाई देती है। केवल एक गहरे विश्लेषणात्मक अध्ययन द्वारा ही इस भ्रांति की आंशिक सत्यता प्रदर्शित की जा सकती है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाँधी की अहिंसा शक्ति

भगवतीप्रसाद राय

महात्मा जी क्रान्तदर्शी युगपुरुष थे। उन्होंने पुरा कल्प की संचित क्षीर-राशि को मन-कर्म से मथ कर सत्य-अहिंसा जैसे नवनीत से अपने देशवासियों को प्रभविष्णु बनाया। खादी और स्वदेशी की अर्थनीति चाहे किन्ही अर्थशास्त्रीय नियमों के अनुकूल न पड़ती हो, पर उससे उत्पन्न मानसिक तोष और आत्म-विश्वास से अनेक भारतीयों की नैतिक तुष्टि और पुष्टि हुई। गाँधी और उनके प्रभाव का अध्ययन कई दृष्टियों से किया जा सकता है। यहाँ हम उनके वर्ग-संघर्ष की धारणा पर विचार करते हैं। उनकी मान्यता थी कि स्पंदनशील चेतन प्राणियों के प्रति हिंसा कभी नैतिक नहीं हो सकती। वह वैध नैतिक सिद्धान्तों के प्रतिकूल है। इसलिए उन्होंने अहिंसा का उपदेश दिया। उसकी विशेषता केवल सिद्धान्त निरूपण के रूप में नहीं है। वह भारतीय परम्परा के प्रवाह में युग-युग से चला आ रहा मान्य सिद्धान्त है। उसके निर्वचन और अनुपालन की अवधारणा प्रस्तुत करने में महात्मा जी की विशिष्टता है। उन्होंने वर्ग-संघर्ष के लिए अहिंसा-संकल्प को व्यवहार्य लक्ष्य माना। कुछ व्यक्तियों ने शंका की कि इतिहास की साक्ष्य पर कह सकते हैं कि अहिंसा राजनीति के क्षेत्र में व्यवहार्य नहीं है। इसका उत्तर देते हुए डॉ० राधाकृष्णन ने कहा कि मानव जिस दिन अपने दो पैरों पर चला उससे पहले उसका इतिहास देखकर कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि वह चतुष्पद से द्विपद होगा। गाँधी जी ने पूरी तरह समझा कि अहिंसा निष्क्रिय सिद्धान्त नहीं है, उसकी अत्यन्त व्यावहारिक उपयोगिता है। वर्ग-संघर्ष के लिए उसे असफल समझना ठीक नहीं। वहाँ भी वह कारगर है। उन्होंने बताया कि अहिंसा सामाजिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संघर्षों में अवश्य अपनानी चाहिए। महात्मा जी के उपदेशों का मौलिक पहलू उनका मानव का विवरण और निर्वचन है तथा अपने संघर्षों के संकल्प की उसकी योग्यता का उद्बोधन है।

हिंसा की भर्त्सना करने में कोई मौलिकता नहीं है। उसे हर कोई कर सकता है। महात्मा जी की जीव-हिंसा की निंदा अन्य उपदेशकों से बहुत भिन्न नहीं है पर उसकी संकल्पना उनसे अधिक अर्थपूर्ण है। अपने साथी मानवों के प्रति हिंसा और असहिष्णुता का भाव हमारी नैतिक दुर्बलता का प्रतीक है। अहिंसा में उनका अटूट विश्वास था। उसे वे विश्वकल्याण का साधन समझते थे। एक बार उन्होंने चर्चिल से कहा कि यदि वे न्यूक्लीय आयुधों की लड़ाई छोड़कर अहिंसात्मक तरीकों से युद्ध करें तो उनके पक्ष का नेतृत्व गाँधी जी स्वयं करेंगे। इससे ध्वनित होता है वे अहिंसात्मक साधनों के प्रयोग से पक्षी-प्रतिपक्षी की ही नहीं, बल्कि जीवमात्र के कल्याण की कामना करते थे। एक बार मि० होम्स ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में भाषण करते हुए बड़े विश्वास के साथ घोषित किया कि न्यूक्लीय आयुधों का यदि दुनिया में कोई उत्तर है तो अहिंसा। अहिंसा-सिद्धान्त का प्रतिपादन पुराकाल से अब तक के सभी धर्मगुरुओं, दार्शनिकों और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वानों ने किया है। भारत का यह प्राचीन मंत्र है और इसकी व्याप्ति समस्त जीव जगत तक है। धर्मक्षेत्र में इसकी प्राण-प्रतिष्ठा अत्यन्त प्राचीन है पर वर्ग-संघर्ष के लिए इसकी उद्भावना शायद ही कहीं मिले। प्रियदर्शी अशोक की अहिंसा-भावना घोर हिंसा के प्रति उसकी घृणा-वृत्ति से उत्पन्न हुई। वर्ग-संघर्ष के निमित्त उसका अभ्युदय नहीं हुआ। वर्ग-संघर्ष के क्षेत्र में अहिंसा नीति को सदा अव्यवहार्य माना गया। महात्मा जी की मौलिकता यही है कि उन्होंने वर्ग-संघर्ष के लिए इसको उपयुक्त समझा और दृढ़तर शब्दों में इसका आख्यान किया। उनकी 'जीवनी' या 'सत्य के उनके प्रयोग' इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

गाँधी विचारधारा को समझने का केन्द्र विन्दु मानव के प्रति उनका दृष्टिकोण जानना है, उसकी सम्भावनाएँ ज्ञात करनी हैं। हिंसा के बिना जन-आन्दोलन की सम्भावना में उनका अटल विश्वास ज्ञात करना है। उन्होंने अहिंसा का आचरण करके व्यक्ति को प्रभावित किया। अपनी इस धारणा को उन्होंने दक्षिणी अफ्रीका में कार्य रूप में परिणत किया। वर्ग-संघर्ष के लिए अहिंसा की साधना का यह पहला अवसर था। गाँधी जी की विशिष्टता यह है कि उन्होंने ठीक संधान किया कि मानव विधेयतः क्या करने में सक्षम है, उसे पूरा करने की उसकी क्या शक्ति है। उनके उपदेश व्याख्यात्मक थे। उन्होंने अधिकार की जगह कर्त्तव्य की दीक्षा दी। व्यक्तिगत अधिकारों के विषय में उन्होंने कहा कि मनुष्य का कोई मौलिक अधिकार नहीं है, कर्त्तव्य ही उसका मूल अधिकार है। गाँधी जी की मान्यता थी कि अहिंसा में विश्वास की परख आदमियों के साथ उसकी व्यावहारिकता पर निर्भर है। इसलिए सत्य का उतना ही अंश उनके लिए अपना था जिसकी जाँच वे स्वयं कर सकते थे। इस तथ्य का सत्यापन उनके विभिन्न प्रयोगों की जाँच से सुगमतापूर्वक हो सकेगा।

सन् १९१३ में दक्षिण अफ्रीका के उच्चतम न्यायालय के एक निर्णय से वहाँ के भारतीय बहुत क्षुब्ध हुए। उस निर्णय के अनुसार ईसाई पद्धति से सम्पन्न विवाह ही वैध माने जाते। इसलिए भारतीय माताएँ अविवाहित समझी जातीं, यदि उनका विवाह ईसाई रीति-रिवाज से न होता। इस कानून के विरुद्ध महिलाओं ने आन्दोलन छेड़ा जो उस समय को देखते हुए आश्चर्यजनक था। अधिकतर महिलाओं को गाँधी जी ने इस कार्य के लिए प्रेरित किया। उनके लम्बे जुलूस को वे खानों तक ले गए। अबला समझी जाने वाली स्त्रियों को व्यापक संघर्ष के लिए उन्होंने उद्बुद्ध किया। उन्होंने खानों में काम करने वाले श्रमिकों से काम बन्द करने का आग्रह किया और उस विरोध-प्रदर्शन में भाग लेने का अनुरोध किया। इस प्रदर्शन के फलस्वरूप भारतीयों की बेइज्जती असह्य रूप से बढ़ा दी गई। उनकी औरतों को पुरुष अपराधियों के कमरों में फेंक दिया गया। गाँधी जी ने खान के क्षुब्ध और सरोष श्रमिकों से अनुनय किया कि वे जो कुछ करें उसमें हिंसा का प्रयोग न हो। बिना हिंसा और नैतिक सिद्धान्तों को तोड़े वे अपने लक्ष्य सर्वोत्तम रीति से पा सकते हैं। खान के कर्मचारियों पर इसका आशातीत प्रभाव हुआ। वे किसी प्रकार की हिंसा का प्रयोग न कर पाँच छः हजार की संख्या में ट्रांसवाल गए। रास्ते में न केवल पुलिस ने उनका दमन किया बल्कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें आपद् और बुभुक्षा का सामना करना पड़ा। इस प्रदर्शन की सफलता ने गाँधी जी के विश्वास को दृढ़ बनाया कि साधारण जन अहिंसा के अर्थ को ग्रहण करने में समर्थ हैं। प्रदर्शनकारी पूर्णतः अशिक्षित थे। वे संस्कृत और प्रबुद्ध नागरिक नहीं थे, न ही शान्त और सहिष्णु व्यक्ति थे। वे कुचले हुए क्रोधान्य जन थे जो दमन तथा विभेद-नीति का विरोध करने के लिए एकत्र हुए थे। इस तरह के व्यक्तियों के साथ गाँधी जी ने अहिंसा का सफल प्रयोग किया।

दूसरा उदाहरण इससे भी अधिक उज्जवल है। अफ्रीका के गोरे रेलवे कर्मचारियों ने भी हड़ताल कर दिया और सरकार को 'मार्शल ला' घोषित करना पड़ा। उस समय गाँधी जी का आन्दोलन प्रगतिशील था। एकाएक सरकार की हालत नाजुक हो गई। गाँधी जी के हाथ उत्तम अवसर आ गया। ऐसी स्थिति में राजनीतिक कौशल यही है कि विपक्षी की दयनीय स्थिति का पूरा लाभ उठाया जाए और लक्ष्य का पहले से अधिक विस्तार कर दिया जाए। गाँधी जी ने इस परिस्थिति का अनुचित लाभ नहीं उठाया और अपनी पूर्ववर्ती माँगों पर डटे रहे। उन्होंने जातीय भेदनीति समाप्त करने की माँग की। इतना ही नहीं, उन्होंने अपना आन्दोलन ठप कर दिया जब तक रेल मजदूरों की हड़ताल समाप्त नहीं हुई। राजनीतिक आन्दोलनों के इतिहास में यह अनन्य उदाहरण है। इसका गहरा प्रभाव पड़ा। गाँधी जी के विरोधियों ने अच्छी तरह समझ लिया कि उनका मन्तव्य ठीक वही है जो वे कहते हैं, उससे अन्य नहीं। गाँधी जी ने स्पष्ट रूप से कहा कि इस आन्दोलन में मेरा काम्य केवल यही है, न कम, न अधिक। उस उत्तम अवसर का अनुचित लाभ न उठाकर गाँधी जी और उनके अनुयायी अपने लक्ष्य के प्रति सत्यनिष्ठ रहे। इससे प्रभावित हो विपक्षी भी गाँधी जी का सहयोग करने को प्रेरित हुए। गाँधी जी की धारणा थी कि अहिंसा के व्यवहार से जितनी शक्ति मिलेगी विपक्षियों पर उसका उतना ही गहरा प्रभाव होगा।

यहाँ अहिंसा विषयक गाँधी जी की अवधारणा का विश्लेषण प्रसंग प्राप्त है। उन्होंने कभी यह दावा नहीं किया कि जिन तरीकों का उन्होने प्रयोग किया वे सभी काल और परिस्थितियों के लिए सुकर हैं। साधनों के रूप में उसके प्रयोगकर्ता के दृष्टिकोण और व्यक्तित्व से अलग उसकी कोई विशिष्ट महत्ता या वैधता नहीं है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जो उसका प्रयोग करता है उसे उनके धर्म और दृष्टिकोण को अवश्य अपनाना चाहिए। उनका भाव यह था कि अहिंसक तरीके का प्रयोग कुछ सामान्य लक्षणों से युक्त जीवन दृष्टि के अनुसार हो सकता है। गाँधीवादी अहिंसा के कुछ लक्षण इस प्रकार हैं :

(१) आत्मानुभूति का तात्पर्य सत्य के लिए हमारी जिज्ञासा है।

(२) अंततोगत्वा सभी प्राणी एक हैं।

(३) अपने प्रति हिंसा पूर्ण आत्मानुभूति के मार्ग में बाधक है।

गाँधी जी ने अनुभव किया कि मानव को ब्रह्माण्ड में अपनी स्थिति और अन्य प्राणियों के साथ अपनी स्थिति का बोध होना चाहिए। उसे ज्ञान होना चाहिए कि अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहभोगियों के साथ उसका क्या हिस्सा है तथा, थोड़े में, सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सत्य वह है जो सभी जीवधारियों के लिए समानधर्मी हो। इसलिए मानव जीवन का कानून किसी प्रकार जंगल का विधान नहीं हो सकता। उन्होंने वन और जन के विधान का विरोधाभास प्रदर्शित किया और बताया कि मानवता का इतिहास सदा वन से जन की ओर उन्मुख होता जाएगा। पर इस विश्वास की क्या वैधता है? यह भाव हमारी संवेदना को उद्बुद्ध करता है। इसका गहन चिंतन करने पर जो कुछ हमारे हाथ लगता है उसका सार यही है कि सभी प्राणी अपने प्रेय और श्रेय में अंततः एक हैं, उनका अभिप्रेत एक है। उनके प्रति हिंसा का व्यवहार किसी को गंतव्य तक नहीं पहुँचा सकता। सछिद्र नौका कभी-न-कभी धार में अवश्य डूबती है, सबके हित की सुदृढ़ नाव के किसी अंश को हिंसापूर्वक अपना कर अथवा उसमें छेदकर कोई पार नहीं जा सकता, यह ध्रुव है।

उपर्युक्त सिद्धान्तों के विलोम सूत्र में भी उतने ही सत्य हैं, यथा—

(४) किसी जीवधारी के प्रति हिंसा अपने ही प्रति की गई हिंसा है।

(५) किसी जीवधारी के प्रति हिंसा से आत्मानुभूति असम्भव है।

(६) लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जैसे साधनों का हम प्रयोग करते हैं वैसा ही परिणाम होता है। गाँधी जी ने इस बात पर जोर दिया कि अनुचित साधनों से कभी सत्य की विजय नहीं हो सकती और हिंसा शांति की ओर नहीं ले जा सकती।

जगत् से दूर हटकर विजन में रहकर अहिंसा का अभ्यास गाँधी जी को अभिप्रेत नहीं था। वे अहिंसा भाव से किसी जन-संघर्ष के केन्द्र बिन्दु के चतुर्दिक आकृष्ट थे। उन्हें कर्मयोगी कहना अधिक उपयुक्त है। कर्मयोगी वह है जो अपने उत्कृष्ट लक्ष्य की प्राप्ति कर्मपूर्वक करता है। वह संघर्ष से अपने को अलग नहीं करता। उसके मध्य अधिष्ठित होता है। अपने साथियों के संघर्ष को अपना समझकर उसमें लीन हो जाता है। अहिंसा के लिए संघर्ष का तिरस्कार करने की अपेक्षा उसमें से हिंसा साधन का अधिकतम बहिष्कार करता है। अहिंसा के उपयोग का परम सौंदर्य वर्ग-संघर्ष के भीतर ही कृतार्थ हो सकता है। इसलिए उन्होंने सिद्धान्त अपनाया कि वर्ग-संघर्ष में कार्य करो, और इस प्रकार करो कि वह हिंसा के दीर्घकालिक और सार्वत्रिक न्यूनत्व के लिए अभीष्ट हो। उन्होंने कहा कि "सत्य की सार्वत्रिक और सर्वव्याप्त आत्मा को आमने-सामने देखने के लिए मानव को क्षुद्रतम जीव से प्यार करना होगा। जो यह अभिलाषा रखता है, वह जीवन क्षेत्र से बाहर नहीं जा सकता। इसलिए सत्य के प्रति मेरी निष्ठा मुझे राजनीति में खींच लाई।" अहिंसा का मतलब निष्क्रियता नहीं है।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम के परिणामों के विषय में आशाजनक भविष्यवाणी करते समय गाँधी जी कहा करते थे कि हमें सफलता रचनात्मक कार्यक्रमों को बढ़ाने से मिलेगी। परन्तु ये कार्यक्रम कभी गाँधी जी के अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकें। इसलिए असामयिक आलोचना के विषय बने। क्या इसका अर्थ यही लगाया जा सकता है कि वे गलत थे। राष्ट्रीय आन्दोलन का सारा प्रयत्न अंग्रेजों के विरोध में व्यय हुआ। इसलिए रचनात्मक कार्यक्रमों पर शक्ति केन्द्रित करने की उनकी राय कभी गंभीरतापूर्वक नहीं मानी गई क्योंकि उनके अनुयायी राजनीतिज्ञ दिखावे मात्र के लिए उनके पीछे थे। वास्तव में वे अधिकार भावना से प्रेरित थे और सत्ता के चक्कर में थे। इसलिए गाँधी जी की राय का कम असर हुआ। उसके लिए अनुशासन और आत्मत्याग की आवश्यकता थी, जिससे हम भारतीयों का अब दूर का नाता है।

गाँधी जी के उपदेशों का सबसे क्लिष्ट अंश उसका रचनात्मक सिद्धान्त है। वे जल्दी पकड़ में नहीं आते। रचनात्मक कार्यों को लेकर वे व्यक्ति के दैनिक जीवन में प्रवेश करते, उसे रहन-सहन के नए रास्ते की ओर प्रेरित करते और कहते कि अंततः भारतीयों को अपने पैर खड़ा होना होगा। गाँधी जी के कितने अनुयायी और प्रशंसक उनके कंधे से कंधा मिलाकर चले। कितने उनकी बात को हृदयंगम किए और उसे ठीक समझकर उसके अनुसार आचरण किए। संम्भवतः कोई नहीं। राजनीतिज्ञों में भी कोई नहीं, नेहरू भी नहीं, न तो उनके कृत्यों के रोजमर्रा के प्रशंसक ही। उनके प्रभाव के बावजूद उनके सिद्धान्तों पर बाद में अमल नहीं किया गया। इसका एक कारण यह भी है कि अन्य राजनीतिज्ञों ने अहिंसा साधनों को केवल नीति के रूप में माना। उसकी व्यावहारिक उपयोगिता के प्रति आश्वस्त नहीं थे। अफ्रीका में उन्हें अपने कार्यक्रम में जितनी सफलता मिली, उतनी भारत में नहीं। इस प्रकार गाँधी जी अपने अहिंसक तरीकों के लिए अपने अनुयायियों की आलोचना के विषय बन गए। उन्हें अच्छी तरह मालूम था कि किसी अल्पकालिक आन्दोलन में लाखों व्यक्तियों को बटोर लेना जितना सरल है उतना ही मुट्ठी भर लोगों के स्वभाव में परिवर्तन लाना कठिन है।

पर इससे हतप्रभ हो अहिंसा और सत्य में गाँधी जी की निष्ठा डिगी नहीं। वे अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रहे। सत्याग्रह उनके अहिंसा कार्यक्रम का व्याहारिक रूप है। यह बात उन्हें अच्छी तरह ज्ञात थी कि अहिंसा दृढ़प्रतिज्ञ और निडर व्यक्ति का मार्ग है, इसलिए यदि शतशः कायर उसका ठीक आचरण नहीं करते तो कोई चिंता की बात नहीं। एक बार मनु बेन ने अपनी शील रक्षा के लिए किसी दुराचारी के मुँह पर चप्पल मार दी। उन्हें बाद में पाश्चाताप हुआ कि मैंने हिंसा पूर्ण कार्य किया। वे सलज्ज बापू के निकट गईं और सारा वृत्तान्त सुनाया। उसे सुनकर महात्मा जी बड़े खुश हुए। उन्होंने कहा कि अहिंसा का अर्थ कायरता नहीं है। तुमने ठीक किया। यदि कायरता और हिंसा में से एक को चुनना हो तो मैं हिंसा को वरण करूँगा। नोआखाली के कुछ सज्जनों ने महात्मा जी के सामने अपनी दुर्दशा निवेदित की। उन्होंने बड़े करुण भाव से बताया कि कैसे उनके सामने उनकी बहू-बेटियों पर अनाचार हुआ। सब कुछ सुनकर गाँधी जी ने कहा कि मुझे दुःख है कि आपलोग यह सुनाने के लिए जिंदा हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य के प्रति उनकी गहरी निष्ठा थी। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट होगी। सन् १९३१ ई० में वे अरक्षित ही इंगलैण्ड के वस्त्र निर्माण क्षेत्र में गये, यद्यपि लोगों ने उन्हें बहुत समझाया कि यदि वे ऐसा किए तो मार डाले जाएँगे। गाँधी जी के स्वदेशी आन्दोलन के कारण वस्त्र उद्योगों के श्रमिकों के पास कोई काम नहीं रह गया था। वे बिल्कुल बेकार हो गए थे। भारतीय लोग विदेशी वस्त्र पहले की अपेक्षा बहुत कम खरीदते थे। गाँधी जी का स्वदेशी आन्दोलन सफल हुआ और उसका इंगलैण्ड के व्यापार पर गहरा प्रभाव पड़ा। इसलिए ब्रिटिश समाचार पत्र गाँधी जी के प्रतिकूल आग उगलते थे और घटनाओं को अतिरंजित कर छापते थे।

सारी चेतावनी के बावजूद, गाँधी जी श्रमिकों के पास दृढ़ विश्वास के साथ अरक्षित गए। श्रमिकों की वास्तविक स्थिति को देखकर उन्होंने कहा कि आप लोग गरीब भारतीयों की अपेक्षा कहीं संपन्न हैं। इससे उनका उत्तेजित होना स्वाभाविक था, पर गाँधी जी ने जिस परिहास, विश्वास, आदर और सद्भावना के साथ कहा उसका विरोध करना उनके लिए कठिन था। श्रमिकों ने उन्हें बोलने का अवसर दिया जिससे उनकी घृणा तिरोहित हुई। उन्होंने वैर-भाव त्याग दिया और गाँधी जी के नेक सहकर्मी बन गए। गाँधी जी ने सत्य के प्रति अपने इस सिद्धान्त का प्रसार किया कि केवल मानव ही नहीं, बल्कि पशु भी सत्य के भाव को पहचानते हैं। इस संदर्भ में एक रोचक आख्यान का उद्धरण देना प्रासंगिक होगा जिसका उल्लेख श्री प्यारेलाल ने अपनी पुस्तक 'महात्मा गाँधी द लास्ट फेज' में किया है। गाँधी जी नोआखाली में शिविर डालकर पड़े हुए थे। उनके पास एक कुत्ता आता था और बड़ी करुण ध्वनि कर रोता था। लोगों ने उसे कई बार मार भगाया। फिर जब वह लौट आकर उसी भाव से रोया तो गाँधी जी ने कहा कि इसे मारो नहीं। यह मुझसे कुछ कहना चाहता है। कुत्ता गाँधी जी के पास आया और उन्हें अपने पीछे चलने का भावप्रदर्शित किया। गाँधी जी के साथ कई व्यक्ति उसके पीछे-पीछे गए। वह उन्हें अपने स्वामी के घर के पास के गड्ढ़े के समीप ले गया जो परिवार सहित आततायियों द्वारा मौत के घाट उतर चुका था। उनके शव के पास जाकर वह स्वामिभक्त कुत्ता भयंकर नाद कर विलख उठा।

जो संदेह की भावना का पोषण करता है वह संदेहास्पद का वास्तविक शत्रु होता है। गाँधी जी ने सत्य को भगवान् कहा और जैसे-जैसे उनका अनुभव उनकी धारणा को पुष्ट करता गया, उन्होंने भगवान् को सत्य रूप माना।

गाँधी जी ने कहा कि "मेरे जीवन-दर्शन में साधन और साध्य परस्पर परिवर्तनीय हैं।" उनके अनुसार किसी आन्दोलन में कुछ नैतिक सिद्धान्तों का पालन अनिवार्य है। इससे व्यक्ति के मन्तव्य की शुद्धता लक्षित होती है तथा दूसरे व्यक्ति के प्रति आदर भाव दीखता है। किसी साध्य के साधन रूप में अन्य व्यक्ति को नीचा दिखाने की प्रवृत्ति का अभाव प्रदर्शित होता है। आन्दोलन के समय भी सत्कार्यों का सम्पादन होना चाहिए, इसलिए नहीं कि हम उनके अनुपालन से कोई लाभ पाने की आशा रखते हैं बल्कि इसलिए कि वे सर्वथा करणीय हैं। बाह्य रूप से देखने पर सत्याग्रह किसी साध्य का साधन लक्षित होता है पर गाँधी-दर्शन के अनसार वह हमारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाभाविक धर्म होना चाहिए। उससे सदा-सर्वदा मानवता का पथ निष्कंटक होगा। इस पर टिप्पणी करते हुए रवि बाबू ने लिखा है कि बहुत दिन तक अहिंसा का परित्याग मुश्किल होगा जबकि हमारा मस्तिष्क उन विचारों से भरा है जो घृणा उत्पन्न करते हैं। पूर्ण अहिंसा तभी संभव है जब ऐसे विचारों का मूलोच्छेदन हो। शत्रुभाव के परिहार के लिए गाँधी जी ने दो विचार रखे—(१) अपने और प्रतिपक्षी के उभयनिष्ठ हितों के विषय में स्पष्ट होना तथा (२) उसका सहयोग प्राप्त करने की अपनी योग्यता में विश्वास रखना। घृणाभाव से मुक्त मस्तिष्क जीवन का उदार दृष्टिकोण विकसित करेगा और प्रतिपक्षी की परिस्थिति के साथ सहिष्णुता और सहानुभूति का भाव अपनायेगा। यदि इन बातों को ठीक हृदयंगम नहीं किया जाएगा तो सफल सत्याग्रह नहीं हो सकता। इस प्रकार गाँधी जी के अनुसार सत्य का तात्पर्य प्रेमभाव है। इस परम भाव का उदय तब होता है जब हम अपने पक्ष को ही सत्य न मानकर प्रतिपक्षी की दृष्टि से भी परिस्थिति की आलोचना करने में सक्षम हो जाते हैं। इससे हम अपने और प्रतिपक्षी के हितों को देखते हुए समन्वय का मंगल सूत्र ढूँढ़ने में सफल होते हैं। मालवीय जी ने भी कहा, "आत्मानः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।"

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीति में सत्य का प्रयोग

कु० चित्रलेखा चौहान

भारतीय जन-मानस को प्रभावित करनेवाली विभूतियों में गाँधी जी का स्थान अन्यतम है। गाँधी जी ने अपने व्यक्तित्व से सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक जीवन के सभी क्षेत्रों को समान रूप से प्रभावित किया। वे सच्चे अर्थों में सत्यान्वेषी थे। सत्य अखण्ड और शाश्वत है इसलिए वैयक्तिक जीवन और सामाजिक जीवन या व्यष्टि और समष्टि के सत्य अलग-अलग नहीं हो सकते। सत्य ही ईश्वर है। ईश्वर सर्वव्यापी है। इसलिए सत्य सर्वव्यापी है। इस सर्वव्यापक को ढूँढ़न के लिए गाँधी जी ने राजनीति में भाग लिया। गाँधी को राजनीति के क्षेत्र में आते देख लोगों ने शंकाएँ की कि सत्य के अन्वेषक महात्मा गाँधी राजनीति की डगर पर कैसे आ गए, जिसका सत्य से बहुत कम संबंध है। गाँधी का उत्तर था—A man who aspires after that (realisation of all pervading spirit of Truth) cannot afford to keep out of any field of life. 'That is why' he says 'my devotion of truth has drawn me into the field of politics.'

महात्मा गान्धी ने राजनीति और सत्य के समन्वय पर जोर दिया। वे अपनी राजनीति को अपने धर्म से पृथक् करके नहीं देखते थे। वास्तव में गाँधी का व्यक्तित्व मूलतः एक राजनीतिज्ञ का व्यक्तित्व था ही नहीं। वे तो धार्मिक पुरुष थे। वे स्वयं स्वीकार करते थे कि उनके जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है। वे राजनीति में आये तो अपने इसी लक्ष्य की, मोक्ष की, प्राप्ति के लिए ही। उन्होंने स्वयं लिखा है, "मेरे एक भी निर्णय पर मेरे व्यक्तित्व के राजनीतिक पक्ष का प्रभाव कभी मुख्य नहीं रहा है। और यदि मैं राजनीति में भाग लेता हुआ जान पड़ता हूँ तो इसका कारण केवल यही है कि आज राजनीति ने साँप की गुंजलक की तरह चारों ओर से हमें इस प्रकार घेर रखा है कि कोई कितना भी प्रयत्न क्यों न करें, उससे निकल ही नहीं सकता।···चूँकि मैं नितान्त स्वार्थभाव से अपने चारों ओर गरजते हुए तूफान में शांतिपूर्वक रहना चाहता हूँ इसलिए मैं राजनीति में धर्म का समावेश करके अपने और अपने मित्रों के साथ प्रयोग कर रहा हूँ।"

इस प्रकार राजनीति के क्षेत्र में कार्य करना अर्थात् जनहित के लिए कर्त्तव्य परायण होने को आवश्यक मानते हुए भी गाँधीजी धर्म को न छोड़ सके क्योंकि धर्म उनका प्राण था। वही उनके व्यक्तित्व का प्रकृत पक्ष था। उनका यह धर्म कोई संकीर्ण धर्म नहीं था। अपने धर्म की व्याख्या करते हुए वे लिखते हैं, "धर्म से मेरा मतलब हिन्दू धर्म नहीं है जिसको मैं बेशक और सब धर्मों से ज्यादा मूल्यवान् समझता हूँ। मेरा मतलब उस मूल धर्म से है जो हिन्दू धर्म से कहीं उच्चतर है, जो मनुष्य के स्वभाव तक का परिवर्तन कर देता है, जो हमें अन्तर के सत्य से अटूट रूप से बाँध देता है और निरन्तर अधिक शुद्ध और पवित्र बनाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता है। वह मनुष्य की प्रकृतिका स्थायी तत्त्व है जो अपनी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए कोई भी कीमत चुकाने को तैयार रहता है और उसे तब तक बिलकुल बेचैन बनाये रखता है जबतक उसे अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं हो जाता, अपने स्रष्टा का ज्ञान नहीं हो जाता तथा स्रष्टा के और अपने बीच का सच्चा सम्बन्ध समझ में नहीं आ जाता।"

वास्तव में धर्म गाँधीजी के जीवन का मूल तत्व था। उनके लिए धार्मिक भावना ही सबसे बड़ी शक्ति थी। प्रत्येक कार्य के पूर्व वे उसका धार्मिक पहलू अवश्य देख लेते थे। धार्मिक भावना के कारण गाँधी जी ने राजनीति में सत्य और अहिंसा को सबसे ऊँचा स्थान दिया। वे मनसा, वाचा, कर्मणा हिंसा का विरोध करने की सलाह देते थे।

किसी भी राजनीतिक लक्ष्यकी प्राप्ति में उन्हें हिंसा और झूठ का रास्ता स्वीकार नहीं था। सन् १९२० के मद्रास के अपने भाषण में उन्होंने स्पष्ट कहा था—"जिस क्षण भारत तलवार के सिद्धान्त को स्वीकार कर लेगा, उसी क्षण भारतीय के रूप में मेरे जीवन का अन्त हो जाएगा। ऐसा इसलिए कि मैं मानता हूँ, भारत को दुनिया को सन्देश देना है, और इसलिए कि मेरे विचार से हमारे प्राचीन पुरुषों ने सदियों के अनुभव के बाद यह निष्कर्ष निकाला है कि इस धरती के किसी भी मनुष्य के लिए हिंसा पर आधारित न्याय सच्ची चीज नहीं है, बल्कि सच्ची चीज आत्मबलिदान पर आधारित यज्ञ और कुर्बानी से प्राप्त न्याय है, इस सिद्धान्त पर मेरी अटूट आस्था है और अन्त तक रहेगी।"

गाँधी की दृष्टि में सम्पूर्ण मानवता एकात्मक है। इसलिए सम्पूर्ण मानवता के अभ्युदय से ही व्यक्ति का मोक्ष सम्भव है। इस मोक्ष के लिए सत्याग्रही होना आवश्यक है।

सत्याग्रही का अहिंसात्मक होना आवश्यक है, सत्य में शक्ति होती है। उन्होंने कहा है—"सत्य की आराधना भक्ति है, और भक्ति 'सिर हथेली पर लेकर चलने का सौदा' है, अथवा वह 'हरि का मार्ग' है, जिसमें कायरता की गुंजाइश नहीं है, जिसमें हार नाम की कोई चीज ही नहीं। वह तो मर कर जीने का मन्त्र है।" यह शक्ति अनिवार्यतः अहिंसात्मक विरोध के रूप में प्रकट होती है। इसलिए अहिंसात्मक विरोध—जिसे गाँधी ने स्वराज्य आन्दोलन के बीच सविनय अवज्ञा के रूप में प्रयुक्त किया था—सत्य की प्रतिष्ठा का सर्वोत्तम साधन है। गाँधी के अनुसार अहिंसात्मक विरोध के लिए चार गुणों का होना आवश्यक है। 'हिन्दी स्वराज' में इस तथ्य को प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं—'अपने दीर्घ अनुभव के बल पर मैं कह सकता हूँ कि जो लोग देश की सेवा के लिए अहिंसात्मक विरोध करना चाहते हैं उन्हें पूर्णतः नैतिक और पवित्र होना चाहिए, गरीबी को स्वीकार करना चाहिए, सत्य का अनुसरण करना चाहिए और निर्भय होने का अभ्यास करना चाहिए।"

सत्याग्रही के लिए निर्भय होना आवश्यक है। अनेक विद्वानों की दृष्टि में गाँधी का अहिंसा सिद्धान्त तत्कालीन परिस्थितियों से प्रेरित एक प्रकार का आपद् धर्म है। इस प्रकार की व्याख्या करना गाँधी के सिद्धान्तों की हत्या करना है। यह हो सकता है कि गाँधी के अनुयायियों में से कुछ के मन में यह बात रही हो कि ब्रिटिश साम्राज्य के शक्तिशाली पंजों की पकड़ में थोड़ा ढीलापन लाने के लिए विनयी हो जाना ही अच्छा है, किन्तु जहाँ तक गाँधी का प्रश्न है उनका दृढ़ विश्वास था कि निर्भय हुए बिना अहिंसात्मक विरोध एक कदम भी आगे नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ सकता है। 'हिन्दी स्वराज' में वे कहते हैं—"Passive resistance cannot proceed a step without fearlessness. Those alone can follow the path of passive resistance who are free from fear, whether as to their possessions, false honour, their relatives, the government, bodily injuries or death." प्रकट है कि गाँधी का सत्याग्रही मृत्युभय से मुक्त होकर ही अहिंसा पथ पर चल सकता है। अन्यायी और उत्पीड़क के अनाचार से घबड़ा कर निष्क्रिय रह जाने से अच्छा है कि हम उसका सशस्त्र विरोध करें, किन्तु सशस्त्र विरोध भयप्रेरित प्रतिकार है, जो निर्भय है वह प्राणों का उत्सर्ग कर के भी अनाचार का विरोध कर सकता है।

गाँधी जी चाहते थे कि देश अपने भीतर इतनी नैतिक शक्ति संचित करे, जिससे अंग्रेजी साम्राज्य समाप्त हो जाए। वे किसी भी कार्यक्रम के नैतिक पहलू पर सबसे पहले विचार करते थे। नैतिक दृष्टि ही गाँधी की राजनीति की सबसे बड़ी शक्ति है। गाँधी जी साधन और साध्य दोनों की पवित्रता पर जोर देते थे। वे अनुचित साधनों द्वारा महान् लक्ष्य भी प्राप्त करने को तैयार नहीं थे। उनका विश्वास था कि असत् साधन से सदुद्देश्य प्राप्त हो ही नहीं सकता है। इस सम्बन्ध में उनका कथन है—"मैं यदि कुछ चाहता हूँ तो केवल सत्य की विजय चाहता हूँ। मैंने कभी इस पर विश्वास नहीं किया और आज भी नहीं करता कि लक्ष्य ही सब कुछ है। आप भले लक्ष्य को बुरे साधनों के जरिए प्राप्त नहीं कर सकते।"

गाँधी की राजनीति इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने आजादी जैसे महान् लक्ष्य की प्राप्ति में भी अनुचित साधनों का कभी प्रयोग नहीं किया। इस प्रकार स्पष्ट है कि गाँधी जी नैतिकता और धर्म के आग्रह से ही राजनीति में सक्रिय हुए।

धर्म और राजनीति का मेल खतरनाक संयोग है। राजनीति व्यवहार की वस्तु है, धर्म का संबंध परमार्थ से है। दोनों का मेल असम्भव है। धार्मिक व्यक्ति ब्रह्म में लीन होकर आवागमन के बन्धन से मुक्त होना चाहता है पर देशभक्त राजनीतिज्ञ बार-बार जन्म लेकर अपनी मातृ-भूमि की सेवा करना चाहता है। गाँधी जी इस भेद को नहीं मानते थे। वास्तव में गाँधी जी के व्यक्तित्व में जीवन और राजनीति दोनों का अन्तर बिलकुल मिट गया था। उनका व्यक्तित्व दुहरा नहीं था, बल्कि वह स्फटिक के समान निर्मल था। वे आस्थावान व्यक्ति थे और अपनी अनुशासित अन्तरात्मा की आवाज को ईश्वर की आवाज मानते थे। उनका मार्गदर्शक वही थी। सत्य, प्रेम, धर्म, आस्था, आदर्श और नीति के बिना वे जीवन को सार्थक नहीं मानते थे। वास्तव में वे राजनीति में किसी सत्ता के लोभ या आत्मप्रचार की भावना से नहीं आये थे, इसीलिए वे सत्ता की होड़ा-होड़ी में कभी नहीं पड़े। राजनीति उनके लिए साधन थी, उन्होंने उसे साध्य कभी नहीं माना। उनका साध्य सदैव मनुष्यता रहा है और उसी की सेवा का संकल्प लेकर वे राजनीति में आये थे। महात्मा गाँधी की यह राजनीति सारी दुनिया के लिए आदर्श राजनीति का उदाहरण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GANDHIJI ON EDUCATION

As a nation we are so backward in education that we cannot hope to fulfil our obligations to the nation in this respect, in a given time during this generation, if the programme is to depend on money. I have therefore made bold, even at the risk of losing a reputation for constructive ability, to suggest that education should be self-supporting. By education I mean an all-round drawing out of the best in child and man—body, mind and spirit. Literacy is not the end of education nor even the beginning. It is only one of the means whereby man and woman can be educated. Literacy in itself is no education. I would therefore begin the child's education by teaching it a useful handicraft and enabling it to produce from the moment it begins its training. Thus every school can be made self-supporting.

I hold that the highest development of the mind and the soul is possible under such a system of education. Only every handicraft has to be taught not merely mechanically as is done to-day, but scientifically, i.e., the child should know the why and wherefore of every process.

* * *

If all the collegians were of a sudden to forget their knowledge, the loss sustained by the sudden lapse of the memory of say a few lakhs of collegians would be as nothing compared to the loss that the nation has sustained through the ocean of darkness that surrounds three hundred millions. The measure of illiteracy is no adequate measure of the prevailing ignorance among the millions of villagers.

I would revolutionize college education and relate it to national necessities. There would be degrees for mechanical and other engineers. They would be attached to the different industries which should pay for the training of the graduates they need. Thus the Tatas would be expected to run a college

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

for training engineers under the supervision of the State; the mill associations would run among them a college for training graduates whom they need. Similarly for the other industries that may be named. Commerce will have its college. There remain arts, medicine and agriculture. Several private arts colleges are to-day self-supporting. The State would, therefore, cease to run its own. Medical colleges would be attached to certified hospitals. As they are popular among monied men, they may be expected, by voluntary contributions, to support medical colleges. And agricultural colleges to be worthy of the name must be self-supporting. I have a painful experience of some agricultural graduates. Their knowledge is superficial. They lack practical experience. But if they had their apprenticeship on farms which are self-sustained and answer the requirements of the country, they would not have of gain experience after getting their degrees and at the expense of their employers.

* * *

Given the right kind of teachers, our children will be taught the dignity of labour and learn to regard it as an integral part and a means of their intellectual growth and to realize that it is patriotic to pay for their training through their labour. The core of my suggestion is that handicrafts are to be taught, not merely for productive work, but for developing the intellect of the pupils.

* * *

I must confess that all I have up to now said is that manual training must be given side by side with intellectual training, and that it should have a principal place in national education. But now I say that the principal means of stimulating the intellect should be manual training. I have come to this conclusion because the intellect of our boys is being wasted. Our boys do not know what to do on leaving schools. True education is that which draws out and stimulates the spiritual, intellectual and physical faculties of the children. The education ought to be for them a kind of insurance against unemployment.

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

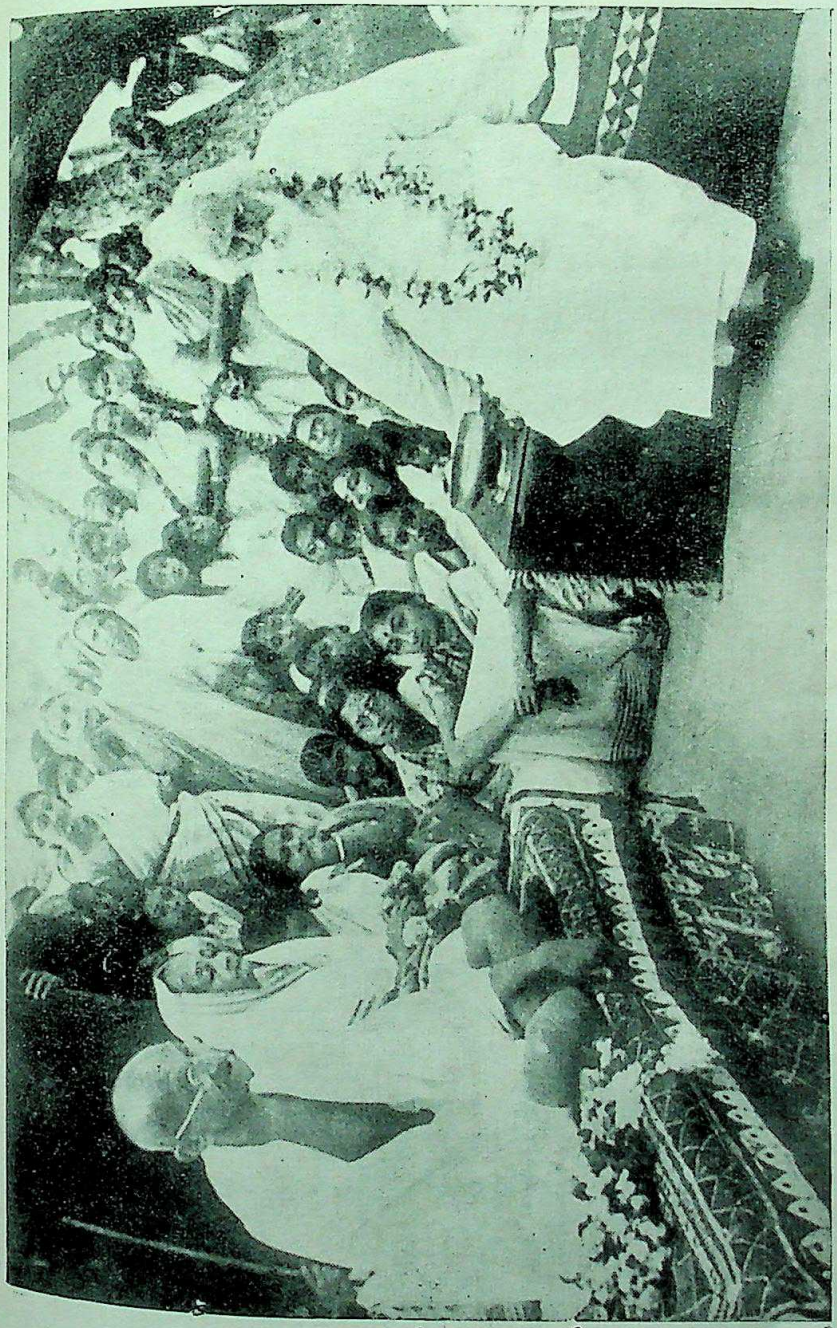

शान्तिनिकेतन में रवीन्द्रनाथ टैगोर का स्वागत स्वीकार करते हुए महात्मा गांधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The present system of education does not meet the requirements of the country in any shape or form. English, having been made the medium of instruction in all the higher branches of learning, has created a permanent bar between the highly educated few and the uneducated many. It has prevented knowledge from percolating to the masses. The excessive importance given to English has cast upon the educated class a burden which has maimed them mentally for life and made them strangers in their own land.

* * *

The medium of a foreign language through which higher education has been imparted in India has caused incalculable intellectual and moral injury to the nation. We are too near our own times to judge the enormity of the damage done. And we who have received such education have to be both victims and judges—an almost impossible feat.

* * *

I know now that what I took four years to learn of arithmetic, geometry, algebra, chemistry and astronomy, I should have learnt easily in one year, if I had had to learn them not through English but Gujarati. My grasp of the subjects would have been easier and clearer. My Gujarati vocabulary would have been richer. I would have made use of such knowledge in my own home. This English medium created an impassable barrier between me and the members of my family, who had not gone through English schools. My father knew nothing of what I was doing. I could not, even if I had wished it, interest my father in what I was learning. For though he had ample intelligence, he knew not a word of English. I was fast becoming a stranger in my own home.

* * *

I must not be understood to decry English or its noble literature. The columns of *Harijan* are sufficient evidence of my love of English but the nobility of its literature cannot avail the Indian nation any more then he temperate climate or the

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

scenery of England can avail her. India has to flourish in her own climate and scenery, and her own literature, even though all the three may be inferior to the English climate, scenery and literature. We and our children must build on our own heritage. If we borrow another, we impoverish our own. We can never grow on foreign victuals. I want the nation to have the treasures contained in that language.

* * *

Absence of vocational training has made the educated class almost unfit for productive work and harmed them physically. Money spent on primary education is a waste of expenditure in as much as what little is taught is soon forgotten and has little or no value in terms of villages or cities. Such advantage as is gained by the existing system of education is not gained by the chief tax-payer, his children getting the least.

For the all-round development of boys and girls, all training should, so far as possible, be given through a profit-yielding vocation. In other words, vocations should serve a double purpose —to enable the pupil to pay for his tuition through the products of his labour and at the same time to develop the whole man or woman in him or her, through the vocation learnt at school.

Higher education should be left to privte enterprise and for meeting national requirements whether in the various industries, technical arts, belles-letters or fine arts. The State Universities should be purely examining bodies, self-supporting through the fees charged for examinations.

Universities will look after the whole of the field of education and will prepare and approve courses of studies in the various departments of education. No private school should be run without the previous sanction of the respective Universities. University charters should be given liberally to any body of persons of proved worth and integrity, it being always understood that the Universities will not cost the State anything except that it will bear the cost of running a Central Education Department.

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

College education is largely an urban proposition. I would not say that it is an unmitigated failure as primary education certainly is, but the results are fairly disappointing. Why should any one of the graduates have to be unemployed ?

* * *

The late Madhusudan Das was a lawyer, but he was convinced that without the use of hands and feet the brain would be atrophied, and even if it worked it would be the home of Satan. Tolstoy taught the same lesson through many of his tales.

* * *

I may tell you that even if there was to be no loss of revenue and our exchequer was full, this education would be a *sine qua non* if we did not want to urbanize our boys. We have to make them true representatives of our culture, of our civilization, of the true genius of our nation.

* * *

Europe is no example for us. It plans its programmes in terms of voilence because it believes in violence. I would be the last person to minimize the achievement of Russia, but the whole structure is based on force and violence. If India has resolved to eschew violence, this system of education becomes an integral part of the discipline she has to go through. We are told that England spends millions on education. America also does so ; but we forget that all that wealth is obtained through exploitation. They have reduced the art of exploitation to a science, and might well give their boys the costly education they do. We cannot, will not, think in terms of exploitation, and we have no alternative but this plan of education which is based on non-violence

* * *

We have to make this training school for the solution of all our ills, of which the chief one is our communal troubles. For this purpose we shall have to concentrate on non-violence Hitler's and Mussolini's schools accept as their fundamental principle violence.....All our problems have therefore to be

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

solved non-violently. Our arithmetic, our science, our history will have a non-violent approach, and the problems in these subjects will be coloured by non-violence. When Madame Halide Edib Hanum delivered her address to the Jamia Millia Islamia on Turkey, I remarked that whereas generally history is a chronicle of kings and their wars, the future history will be the history of man. That can be or is only non-violent. Then we shall have to concentrate not on city industries but on rural industries, that is to say, if we want to keep all the 7,00,000 of our villages alive and not only a fraction of them, we have to revive our village handicrafts. And you may be sure that if we can impart scholastic training through those crafts, we can bring about a revolution. Our text-books will have also to be prepared with the same end.

* * *

We have left out the teaching of religions from the Wardha scheme of education because we are afraid that religions as they are taught and practised today lead to conflict rather than unity. But on the other hand, I hold that the truths that are common to all religions can and should be taught to all children. These truths cannot be taught through words or through books—the children can learn these truths only through the daily life of the teacher. If the teaher himself lives up to the tenets of truth and justice, then alone can the children learn that truth and justice are the basis of all religions.

* * *

The truth that all religions are the same in essentials, that we must love and respect others' faiths as we respect our own, is a very simple truth, and can easily be understood and practised by children of seven. But of course, the first essential is that the teacher must have this faith himself.

* * *

You might well ask me why I picked up the takli out of many other existing handicrafts. Because the takli was one of the first crafts that we found out and which has subsisted

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

through the ages. In the earliest ages all our cloth used to be made of takli yarn. The spinning wheel came later, and the finest counts could not be produced on the spinning wheel, one had to go back to the takli. In devising the takli, man's inventive genius reached a height that had not been reached before. The cunning of the fingers was put to the best possible use. But as the takli was confined to the artisans who were never educated, it fell into disuse. If we want to revive it today in all its glory, if we are to revive and reconstruct the village life, we must begin the education of children with the takli. My next lesson would therefore be to teach the boys the place the takli used to occupy in our daily life. Next I would take them into little history and teach them how it declined. Then would follow a brief course in Indian history.

Next would follow a few lectures on cotton, its habit and its varieties, the countries and the provinces of India where it is at present grown, and so on. Again some knowledge about its cultivation, the soil best suited for it, and so on. That would make us launch into a little agriculture.

You will see that this takes a fund of assimilated knowledge on the part of the teacher before he can impart it to his pupils. The whole of elementary arithmetic can be taught through the counting of yards of spinning, finding out the count of the yarn smaking up of hanks, getting it ready for the weaver, the number of cross threads in the warp to be put for particular textures of cloth, and so on. Every process from the growing of cotton to the manufacture of the finished product —cotton picking, ginning, carding, spinning, sizing, weaving— all would have their mechanics and history and mathematics correlated to them.

The principal idea is to impart the whole education of the body and the mind and the soul through the handicraft that is taught to the children. You have to draw out all that is in the child through teaching all the processes of the handicraft, and all your lessons in history, geography, arithmetic will

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

be correlated to the craft. If such education is given, the direct result will be that it will be self-supporting. But the test of success is not its self-supporting character but that the whole plan has been drawn out through the teaching of the handicraft in a scientific manner. In fact, I would reject a teacher who would promise to make it self-supporting under any circumstances. The self-supporting part will be the logical corollary of the fact that the pupil has learnt the use of every one of his faculties. If a boy who works at a handicraft for three hours a day will surely earn his keep, how much more a boy who adds to the work a development of his mind and soul!

* * *

Whilst the child will be encouraged to spin and help his parents with agricultural jobs, he will also be made to feel that he belongs not only to his parents but also to the village and to the country, and that he must make some return to them.

* * *

All instruction must be linked with some basic craft. When you are imparting knowledge to a child of seven or ten through the medium of an industry, you should, to begin with, exclude all those subjects which cannot be linked with the craft. By doing so from day to day you will discover ways and means of linking with the craft many things which you had excluded in the beginning. You will save your own energy and the pupils', if you follow this process of exclusion to begin with. We have today no books to go by, no precedents to guide us. Therefore we have to go slow. The main thing is that the teacher should retain his freshness of mind. If you come across something that you cannot correlate with the craft, do not fret over it and get disheartened. Leave it, and go ahead with the subjects that you can correlate. May be another teacher will hit upon the right way and show how it can be correlated. And when you have pooled the experience of many, you will have books to guide you, so that the work of those who follow you will become easier.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

How long, you will ask, are we to go on with this process of exclusion. My reply is, for the whole lifetime. At the end you will find that you have included many things that you had excluded at first, that practically all that was worth including has been included, and whatever you have been obliged to exclude till the end was something very superficial that deserved exclusion. This has been my experience of life. I would not have been able to do many things that I have done, if I had not excluded an equal number.

Our education has got to be revolutionized. The brain must be educated through the hand. If I were a poet, I could write poetry on the possibilities of the five fingers. Why should you think that the mind is everything and the bands and feet nothing ? Those who do not train their hands, who go through the ordinary rut of education, lack 'music' in their life. All their faculties are not trained. Mere book knowledge does not interest the child so as to hold his attention fully. The brain gets weary of mere words, and the child's mind begins to wander. The hand does the things it ought not to do, the eye sees the things it ought not to see, the ear hears the things it ought not to hear, and they do not do, see or hear, respectively, what they ought to. They are not taught to make the right choice and so their education often proves their ruin. An education which does not teach us to discriminate between good and bad, to assimilate the one and eschew the other is a misnomer.

* * *

Let me further elaborate the idea. Just as a biologist, in order to become a good biologist, must learn many other sciences besides biology, the basic education, if it is treated as a science, takes us into interminable channels of learning.

* * *

What we need is educationists with originality, fired with true zeal, who will think out from day to day what they are going to teach their pupils. The teacher cannot get this knowledge through musty volumes. He has to use his own

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

faculties of observation and thinking and impart his knowledge to the children through his lips with the help of a craft. This means a revolution in the method of teaching, a revolution in the teacher's outlook.

* * *

If we can solve the educational problem of seven lakhs of villages, it will be enough for the present. No doubt educationists are thinking of the cities too.

* * *

I am not opposed to education even of the highest type attainable in the world.

The State must pay for it wherever it has definite use for it.

I am opposed to all higher education being paid for from the general revenue.

It is my firm conviction that the vast amount of the so-called education in arts, given in our colleges is sheer waste and has resulted in unemployment among the educated classes. What is more, it has destroyed the health, both mental and physical, of the boys and girls who have the misfortune to go through the grind in our colleges.

* * *

Basic Education is generally interpreted as education through craft. This is true to a certain extent, but it is not the whole truth. The roots of Nai Talim go deeper. It is based upon truth and non-violence in inividual and collective life. Education is that which gives true freedoom. Untruth and violence lead to bondage and can have no place in education.

* * *

This education is for life and through life.

* * *

It cannot be given through the dry leaves of books. It can only be given through the book of life.

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

We must not rest content with our present achievements. We must penetrate the homes of the children. We must educate their parents. Basic education must become literally the education for life... it should include the education of every body at every stage of life.

* * *

We cannot throw away what is in our blood, but we must develop it in such a way that it will help the cultural development of the individual, of the society in which he moves, and of humanity as a whole.

* * *

That every boy and girl in India should grow up as a citizen of a new social order based on co-operative work, with an understanding of the rights, responsibilities and obligations conferred by membership of such a society ; secondly, that each individual should have the fullest opportunity for the balanced and harmonious development of his personality.

* * *

It means a new social order. My plan to impart primary education through the medium of village handicrafts like spinning and carding etc, is thus conceived as the spearhead of a silent social revolution fraught with the most far-reaching consequences. It will provide a healthy and moral basis of relationship between the city and the village and thus go a long way towards eradicating some of the worst evils of the present social insecurity and poisoned relationship between the classes.

Nai Talim or New Education has extended its scope today to the whole span of life from the moment of conception to the hour of death. The work has increased but the workers are the same.

This Nai Talim is not dependent on money. The running expenses of this education should come from the educational process. Whatever may be the criticisms, I know that the only true education is that which is self-supporting. The idea is new ; it is revoultionary. But I am not ashamed of it. If

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

you can work, it you prove that this is the true way for the development of the mind, those who mock at us today will become our admirers. Nai Talim will become universal and the numerous villages which indicate our all-round poverty today will constitute our prosperity. That prosperity cannot come from without, but must be evolved from within. This is the objective of Nai Talim ; nothing less than this. May God, who is Truth, help us to realise the truth of this objective.

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

NON-VIOLENCE AS AN ETHICAL PRINCIPLE

UNTO TĀHTINEN.

Ahiṁsā, non-violence is the central conception of Indian ethic Philosophy. Its verbal root can be traced in the Ṛgveda and Atharvaveda, however it for the first time appears as a substantive in the Chāndogya Upaniṣad.[1] The Yogins and the Jainas emphasize ahiṁsā as the basis of all other virtues. The Anuśāsana Parva coincides the famous sentence "ahiṁsā paramo dharma", non-violence is the highest religious duty.[2]

The etymological meaning of ahiṁsā is non-killing or physical non-injury, yet during the development of ethical theories it has got different meanings in Hindu, Jain and Buddhist Literature. The Vedic definition, appearing for instance in the Manusmṛti, means absence of injury done to living beings which has no sāstric sanction.[3] This means that according to the Vedic interpretation punishing criminals or waging a "justified" war would indeed be acts of ahiṁsā. So Vedic ahiṁsā is like a synonym or component of Vedic justice, and consequently has no independent meaning.

The Yogins understood ahiṁsā as abstinence from causing duḥkha, pain or suffering to any sentient creature. This differs from Manu's conception due to its generalized character. The heterodox school of the Jainas and Buddhists have further generalized it by refuting the Vedic authority. Ahiṁsā came to mean non-injury (by thought, word or deed) to any sentient creature at any time and at any circumstances; and many casuistic exceptions for the maintenance of Vedic social order were not approved any more in the name of ahiṁsā.

[1] Ṛgveda, 1. 141. 5; 5. 64. 3.; 10. 22. 13.; Atharva, 9. 8. 13.; Chāndogya. 17. 4. 3. Anuśāsana Parva, 115. 25.

[3] Cf. Manusmrti, 5. 44.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Modern conception of ahiṁsā is largely based on the life-work of Mahatma Gandhi. It has through him become socially positive and identical with love. In contemporary representation it has also largely been assimilated with Christian charity. Originally it was negative and purely individual, practised for one's own religious undefilment; Gandhi made it positive and social, nay, even a political and economic concept. But nowadays to some reason or other adjective "negative" has become a much despiced word and everybody, whether a Hindu, Jain or Buddhist claims that his ethical concepts are positive.

A famous German philosopher Immanuel Kant explains practical imperative as treating humanity in one's own person or in the person of any other never simply as a means, but always at the same time as an end. It can in a way provide us a key to explain the moral conception of ahiṁsā as non-exploitation. Naturally according to Indian traditions humanity has to be replaced by care of all sentient creatures. Therefore Gandhian conception of ahiṁsā means not using any creature sentient for pain and suffering simply as a means to the pleasure of another, but always at the same time as an end itself. A good definition of modern ahiṁsā would include both negative and positive aspects. I have defined it as "allowing and helping sentient creatures to realize their ends", where "allowing" is a negative and "helping" a positive attitude. I do not think that only injury done to higher values is violence; also unwilling injury done to "lower" physical and material values is hiṁsā. According to the doctrine of Puruṣārthas there are four ends of life—artha, kāma, dharma and mokṣa; injury done to any of these values is to be termed as hiṁsā.

The modern conception of ahiṁsā differs from the traditional one by laying more emphasis on the object than on the acting subject. Originally ahiṁsā was practised for one's own good, but modern ahiṁsā like Christian ethics takes another being in the searchlight. From a self-regarding virtue it has become an other-regarding virtue.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

I think that the original root of ahiṁsā is the need for the security of life and freedom from pain. Opposition to the religious sanction of animal sacrifices championed by the Kṣatriyas and the heterodox schools has greatly emphized the importance of ahiṁsā. In a way the popular meaning of ahiṁsā so often connected with vegetarianism and animal life shows that it was not originally so much a reaction against hiṁsā done to human beings than animals. I do not think that the metaphysical doctrine of the unity of life is essential for ahiṁsā though men with Vedic scholarship are mostly tempted to think so. The Jainas and the Buddhists do not share this background and particularly the Jaina conception of Mokṣa radically differs from the two others because a jiva will for ever remain a separate unit. Rather I think that the Golden Rule provides an universal basis for ahiṁsā being accepted by the Hindus, Jainas and Buddhists. Also the Christ and Congfutse mentioned the Golden Rule. It means that one should never do that to another which he considers as injurious to his own self.[1]

The Jainas, Patañjali and the South Indian Tirukkural place ahiṁsā before satya (truth or truthfulness) as the first of the five cardinal virtues. Mahatma Gandhi seems to differ on this point from above mentioned systems. But he might agree with the common Hindu tradition that satya has to be in harmony with human welfare, therefore ahiṁsā is the criterion—not of truth—but of the moral value of 'truth'.

To say that ahiṁsā is the means, truth the end, is a very rough generalization. Rather I should say that ahiṁsā has partly an intrinsic value, as an end itself, because without life no other values can be realized ; and it has partly an instrumental value, as a means to other higher values like truth, justice and freedom. All ethical values include ahiṁsā, because no ethical principles can be practised in absence of life. But on the other hand life alone does not have an intrinsic value.

[1] Cf. Anuśāsana Parva, 113. 8 ; Bhagavad Gītā, 6. 32 ; Sūtrakṛtāṅga Sūtra, 1.2.2.8 ; Dhammapada, 129.-30 ; St. Matthew, 7.12 ; St. Luke, 6.31,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Traditionally there is no pacifism in Indian thought. War was considered to be a necessary and permanent institution. The science of warfare was regulated and limited by many rules and traditions, but the effort to limit war is different from the effort to abolish it. Mahatma Gandhi deliberately wanted to abolish war as a method solving international disputes. He brought forward two ancient principles of decentralization and self-sufficiency. Indian morality aimed at the autonomy (swarāj) of the individual, and ideals of swarāj and swadeshi were practised in their spiritual meaning. Gandhi in a new way applied this ancient tradition into modern circumstances on social, economic and political field.

Traditionally ahiṁsā was not applied into politics and even Gandhi's efforts to do so did not totally succeed at the end of his life. It seems that even when people are ready in principle or on a limited scale to approve the values of non-violence and lasting peace, they are not yet ready to approve their conditions. Lasting peace can be based only on absence of actual as well as potential violence and this requires application of ahiṁsā in all fields of human life. The invention of atomic weapons seems to force humanity to choose between total global destruction and between all-round ahiṁsā. So formerly being an individual problem ahiṁsā is becoming a global problem, a necessary condition of maintenance of life on our planet.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी-दर्शन में सत्य और अहिंसा का व्यावहारिक रूप

हृदयनारायण त्रिपाठी

मानवता के पुजारी एवं शांति के देवदूत माहात्मा गाँधी जी का जीवन एक सफल सत्यान्वेषी का जीवन रहा है। उन्होंने आत्मानुभूति को मानव-जीवन के परम साध्य रूप में देखा। ईश्वर एवं निरपेक्ष सत्य का साक्षात्कार तथा आत्मज्ञान उनकी साधना का लक्ष्य था जिसका दर्शन उन्हें मानव की सेवा तथा जन-जीवन के आध्यात्मिक विकास हेतु किये गय प्रयास में हुआ।

गाँधी जी का सम्पूर्ण जीवन-दर्शन सत्य एवं अहिंसा की ज्योति से प्रकाशित है। इनका स्वरूप-बोध ही गाँधी जी की आत्मा का प्रत्यक्ष दर्शन है। सत्य तथा अहिंसा के परम्परागत रूपों को तद्वत् ग्रहण न कर उन्होंने उन्हें युगानुरूप नवीन कलेवर प्रदान किये जो वस्तुतः युगपुरुष का ही कार्य था। उनकी साधना में सत्य साध्य था तथा अहिंसा साधन थी।

अनुभूति के प्रकाश में गाँधी जी ने सत्य को दो रूपों में देखा, जिनमें प्रथम रूप था साधनरूप सत्य तथा द्वितीय था साध्यरूप पूर्ण एवं निरपेक्ष सत्य। सत्य के प्रथम रूप का ज्ञान व्यक्ति को परिस्थितिविशेष में होता है। द्वितीय रूप परमेश्वर, परमानन्द अथवा सच्चिदानन्द की यथाथ संज्ञा है। यही निरपेक्ष सत्य अस्तित्ववान तथा अविनाशी है और 'सत्' शब्द की सार्थकता का चरम निदर्शन है। वह अद्वितीय ज्योति है जिसका साक्षात्कार मानव की क्षणभंगुर देह द्वारा संभव नहीं। स्वयं विकसित अध्यात्म से परिष्कृत गाँधी जी की आत्मा भी उस परम ज्योति की झलक मात्र से ही अपने को पूर्ण काम एवं कृतकृत्य समझ लेती है।

शुद्ध एवं निरपेक्ष सत्य के अनुसन्धान में गाँधी जी द्वारा किये गये प्रयोग उनकी अपरिमेय कष्ट-सहिष्णुता, अध्यवसायिता एवं उनके असीम धैर्य के प्रमाण हैं। उनकी अनुसन्धान-पद्धति निरीक्षण एवं प्रयोग की सामान्य वैज्ञानिक पद्धति है। उचित प्रतीत होने वाले मार्ग की परीक्षा वे दूसरों पर न करके सर्वप्रथम अपने पर ही करते थे। इस परीक्षण में यदि मार्ग औचित्यपूर्ण सिद्ध हुआ तो वे लोक-सेवा एवं लोक-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुनर्निर्माण हेतु उसका आश्रय ग्रहण करने में संकोच न करते थे और आवश्यकता पड़ने पर इस हेतु अपना सर्वस्व संकट में डालने के लिए भी तत्पर रहते थे। इसके विपरीत यदि मार्ग औचित्य की अवहेलना करने वाला सिद्ध हुआ तो वे अपनी भूल स्वीकार करने तथा पथ-परित्याग में भी नहीं चूकते थे।

अब प्रश्न उठता है कि निरपेक्ष सत्य अनुभवगम्य कैसे हो ? हम इसकी ओर अग्रसर कैसे हों ? गाँधी जी के मतानुसार किसी विशेष समय पर एक शुद्ध हृदय जो कुछ अनुभव करता है तथा अन्तरात्मा जिसे सत्य समझती है वही वस्तुतः सत्य है। वही शाश्वत सत्य की अनुभूति का मार्ग है तथा निरपेक्ष सत्य के साक्षात्कार हेतु प्रकाश-स्तभ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य कोई दूरस्थ वस्तु नहीं है। वह हमारे अति समीप है। जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत हम जिसकी छाया में पलते हैं तथा जो हमारे प्रत्येक क्रिया-कलापों का नियमन एवं प्रवर्तन करती है, स्वयं वह प्रकृति ही 'सत्य' है किन्तु अपूर्ण मानव इतनी निकटस्थ वस्तु को भी अज्ञान के कारण दूरस्थ एवं दुर्लभ समझता है। गाँधी जी विशुद्ध आचरण को ही इस अज्ञान के निवारण का अमोघ बाण तथा निरपेक्ष सत्य तक पहुँचने का सोपान मानते थे।

गाँधी जी के 'सत्य' की विशिष्टता प्रधानतया इसी बात में निहित है कि उनका सत्य केवल सन्त-महात्माओं तक ही सीमित नहीं है। उसका प्रयोजन केवल सत्य-भाषा से ही नहीं, वरन् कार्यगत एवं विचारगत सत्य से भी है जिसकी परिधि के अन्तर्गत समाज-सेवा. जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नव-जागृति का प्रयास तथा विस्तृत अर्थ में स्वदेश एवं अन्य देशों की राजनीतिक स्वतंत्रता भी सम्मिलित है। वंचक-वृत्ति, पक्षपात एवं अवास्तविक कथन को तो सत्य में कोई स्थान है ही नहीं, सत्यान्वेषी के लिए यह भी परमावश्यक है कि भ्रम अथवा दैव-संयोग वश यदि उसने विरुद्ध मार्ग का आश्रय ले लिया है तो भूल ज्ञात होने पर वह भ्रामक-पथ से विमुख होने में भय अथवा संकोच का लेशमात्र भी अनुभव न करे। इसी प्रकार पारस्परिक सहिष्णुता का अवलम्बन तथा कटुता एवं कट्टरता का परित्याग भी सत्य के ही अत्याज्य अंग हैं। कटुता भेदक है; विभाजक है तथा आध्यात्मिक एकता में व्याघात उत्पन्न करती है।

सत्य के प्रयोग में हमारे समक्ष उपस्थित दो प्रश्न बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। प्रथम प्रश्न तो यह है कि सत्य के आचरण हेतु दूसरों को बाध्य करना कहाँ तक उचित है? द्वितीय प्रश्न यह कि यदि सत्य कटु है, उसके शब्द कठोर हैं तथा प्रयास करने पर भी सत्य का विनम्र कथन सम्भव नहीं है तो ऐसी स्थिति में हम क्या करें? क्या कटु सत्य का कथन श्रोता की हिंसा नहीं है? प्रथम प्रश्न का समाधान करते हुये गाँधी जी कहते हैं। कि सत्य व्यक्तिगत आचार हेतु सच्चा पथ-प्रदर्शक है किन्तु दूसरों को उसी प्रकार का आचरण करने के निमित्त बाध्य करना उनकी अन्तरात्मा की स्वतंत्रता के साथ असह्य हस्तक्षेप है। द्वितीय प्रश्न का समाधान उन्होंने इस प्रकार किया कि यदि हम सत्य का भाषण विनम्रतापूर्वक नहीं कर सकते तो उसे न कहना ही अच्छा है। अहिंसा के बिना 'सत्य' सत्य नहीं, वरन् असत्य है किन्तु अहिंसात्मक सत्य अथवा विनम्र भाषण का अर्थ यह नहीं है कि बात कपटपूर्ण रीति से अथवा घुमा-फिरा कर कही जाय। कटु सत्य भले ही विनम्रता से कहा जाय किन्तु पढ़ने में शब्द तो कठोर होंगे ही। सत्यवादी होने के लिए झूठे को झूठा कहना ही होगा।

सत्यान्वेषण में गाँधी जी को इस तथ्य का स्पष्ट अनुभव हुआ कि अपने मौलिक प्रयास से सत्य की अनुभुति करने वाली महान् आत्माओं के लिए उच्च कोटि की नैतिक एवं बौद्धिक योग्यता नितान्त अपेक्षित है। उनके लिए उत्कृष्ट नैतिक जीवन अपरिहार्य वस्तु है तथा निरन्तर अभ्यास, वासनाओं से विरक्ति और सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय एवं अपरिग्रह के व्रत परमावश्यक हैं। गाँधी जी के अनुसार ये यम-नियम ही सत्य की सार वस्तु हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाँधी जी के जीवन-दर्शन में 'सत्य' के उपरान्त अहिंसा का स्थान आता है। वस्तुतः इन दोनों का पृथक् अस्तित्व नहीं है। दोनों अन्योन्याश्रित हैं। एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व ही अपूर्ण है। हाँ, इतना अवश्य है कि सत्य के प्रयोग में व्यवहारगत सुविधाओं को दृष्टि में रखते हुये गाँधी जी ने 'सत्य' को साध्य एवं 'अहिंसा' को साधन की संज्ञा दी। वस्तुतः यह उनकी सूक्ष्म दृष्टि का ही परिणाम था और इस वर्गीकरण का आधार भी संगत ही था क्योंकि सत्य के मनन एवं अनुसन्धान में ही उन्हें अहिंसा-रत्न की प्राप्ति हुई थी। उनके लिए सत्य हेतु अहिंसा का बलिदान सम्भव था किन्तु सत्य का परित्याग वे कठिन से कठिन परिस्थिति में भी करने की उद्यत नहीं थे। उन्हें दृढ़ विश्वास था कि सत्य से नाता तोड़कर वे अहिंसा की व्यवहारगत जटिलताओं का समुचित समाधान कभी न कर सकेंगे। सत्य का अस्तित्व देश-काल की सीमा से परे है जबकि अहिंसा ससीम है तथा जीवों के पारस्परिक व्यवहार से अधिक सम्बद्ध है। सत्य की अनुगामिनी बनकर अहिंसा विमुक्ति का द्वार खोलती है किन्तु उससे असहयोग करके वह अधोगति का साधन बन जाती है। सत्य के अभाव में अनुभूत प्रेम विशुद्ध प्रेम नहीं हो सकता; वह बुद्धिविरोधी एवं अन्धप्रेम होगा। उसे हम वासनामय अनुराग कह सकेंगे। सत्य सर्वोच्च नियम है तथा अहिंसा सर्वोच्च कर्त्तव्य है।

इस प्रसंग में यह स्मरणीय है कि पूर्वोक्त साध्यसाधनगत भेद केवल उन्हीं साधकों के लिए है जो सत्य-प्रयोग की पाठशाला में अभी-अभी प्रवेश किये हैं। साध्य एवं साधन के बीच की दूरी तभी तक है जब तक हम मार्ग में हैं। क्रमशः, यह दूरी कम होती जाती है और गन्तव्य स्थान की प्राप्ति होते ही दोनों एकरूप हो जाते हैं। जहाँ तक व्यवहार का प्रश्न है, जनता को अहिंसा की ही शिक्षा देनी चाहिये क्योंकि प्राकृतिक रूप से दैनिक जीवन में हमारा सम्बन्ध उसके साथ सत्य की अपेक्षा अधिक है। अहिंसा की शिक्षा से सत्य की शिक्षा स्वयमेव सुलभ हो जायगी।

अब साधक की प्रतीति हेतु संक्षेप में यह भी विचार कर लेना आवश्यक होगा कि अहिंसा 'सत्य' कैसे है? यदि अहिंसा सत्य है तो हिंसा असत्य क्यों है? अहिंसा को सत्य सिद्ध करने के लिए गाँधी जी सर्वप्रथम हिंसा को असत्य सिद्ध करते हैं। उनके मतानुसार स्वार्थपरता, क्रोध, वासना आदि हिंसक प्रवृत्तियों का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष परिणाम 'कटुता' है जो विभाजक, पृथक्कारी, विघटनकारी अथवा अन्य शब्दों अस्तित्वविनाशिनी असत् प्रवृत्ति है। असत् का अर्थ ही होता है 'अस्तित्वहीनता'। इस प्रकार हिंसा के असत्य सिद्ध होते ही अहिंसा के सत्य सिद्ध होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता।

हिंसा असत्य क्यों है? हिंसा का सामान्य अर्थ होता है 'विरोधी के साथ बल-प्रयोग'। इस बल-प्रयोग का हेतु होता है 'कष्ट देकर विरोधी की भूलों का सुधार करना'। विचारणीय तो यह है कि हमने कैसे समझ लिया कि अमुक व्यक्ति ने भूल की है। मेरे विचार अमुक व्यक्ति के विचारों से मेल नहीं खाते तथा मेरे हित में बाधक भी सिद्ध होते हैं, यह इस बात का ठोस प्रमाण नहीं है कि उसने भूल की है। मनुष्य द्वारा ज्ञात सत्य सदैव आंशिक एवं आपेक्षिक होता है। वह पूर्ण शुद्ध एवं निरपेक्ष नहीं होता। हम वस्तु को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखते हैं, अतएव इसका दावा नहीं कर सकते कि हमारी बात ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शत प्रतिशत सही है तथा निरपेक्ष सत्य है। अतः विरोधी के साथ बल-प्रयोग अर्थात् हिंसा असत्य है। उसका असत्य रूप में तभी परिणत होने लगता है जब हम विरोधी की भूल-सुधार हेतु धैर्य, विवेक एवं सहानुभूति की शरण लेते हैं और यदि अपनी ही भूल ज्ञात हुई तो स्वयं कष्ट सहकर उसका प्रायश्चित करते हैं। बहुत सम्भव है कि आत्म-परिष्कार का हमारा यह विवेकपूर्ण प्रयास उस व्यक्ति में भी अनुकूल भावों का उदय कर सके तथा उसे यथार्थ मानव बनने की प्रेरणा प्रदान कर सके। इस प्रकार हिंसा की असत्यता भी प्रतिपादित हो जाती है।

हिंसा को असत्य सिद्ध करने वाला स्पष्ट एवं मूल प्रमाण तो यह है कि हिंसात्मक व्यवहार बाह्य होते हैं जबकि हमारे अनुसन्धान का विषय 'सत्य' आन्तरिक है। दोनों के पथ पृथक् एवं परस्पर विरोधी हैं। हम कठिनाइयों को जन्म देने वाले हिंसात्मक कार्य जितने ही अधिक करते हैं उतने ही अधिक सत्य से दूर होते जाते हैं। काल्पनिक एवं बाह्य शत्रु से निष्फल युद्ध करने के प्रयास में हम आन्तरिक एवं वास्तविक शत्रु की उपेक्षा करते हैं।

सत्य, असत्य एवं हिंसा के सन्दर्भ में अहिंसा का सामान्य अर्थ समझ लेने के उपरान्त अब उसकी शक्ति, उसके स्वरूप एवं गाँधी जी के अनुसार उसके युगानुरूप अर्थ पर कुछ विचार कर लेना आवश्यक हो जाता है।

अहिंसा चेतनशक्ति है क्योंकि निरपेक्ष सत्य की उपलब्धि में साधनरूप से प्रतिष्ठित सर्वोच्च शक्ति जड़ नहीं हो सकती। जड़ता आते ही उसका साधन-रूप नहीं रह जाता। कोई भी शक्ति साधन का कार्य तभी तक कर सकती है जब तक उसमें प्रेरक तत्व वर्तमान होते हैं। प्रेरक तत्व का अभाव ही उसकी जड़ता है, निस्पन्दता है। प्लेटो की भाँति गांधी जी का भी दृढ़ विश्वास है कि विश्व का संचालन प्रेम द्वारा होता है। आकर्षण पर आधारित विश्व की संयोगात्मक शक्ति का नाम ही प्रेम है तथा यही अहिंसा की प्रेरक शक्ति है। प्रेम ही जीवन है तथा घृणा ही विनाश है।

अहिंसा के प्रयोग को लेकर स्वभावतः यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में क्या बिना किसी अपवाद के इसका प्रयोग हो सकता है? सर्वत्र इसका प्रयोग न करके जीवन के कतिपय चुने क्षेत्रों में ही हम इसका प्रयोग क्यों न करें? इन प्रश्नों के मूल में वस्तुतः दो बातें निहित हैं। प्रथम, यह कि हमने अहिंसा को एक दुःसाध्य तप समझ लिया है और द्वितीय, यह कि अपनी दैनिक आवश्यकताओं की संतुष्टि एवं स्वार्थ-साधन में रत हम क्षुद्र जीव इस कठिन गत के निर्विघ्न समापन के प्रति सशंकित रहते हैं। गाँधी जी के मतानुसार अहिंसा सर्वकालीन एवं सर्वव्यापक नियम है तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में निर्विवाद रूप से इसका प्रयोग हो सकता है। अहिंसा जीवन-नियम के रूप में ग्राह्य बनकर ही पूर्ण सफल कही जा सकती है। हिंसा का स्पर्शमात्र भी अहिंसा को जीवन के नैतिक नियम की पदवी से च्यूत कर देता है तथा उस परम धर्म की अपर्याप्तता की ओर संकेत करता है। अहिंसा को जीवन-नियम के रूप में ग्रहण न करना हमारे अनभ्यास, हमारी भीरुता एवं अकर्मण्यता का दुष्परिणाम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित, अहिंसा के निषेधात्मक, विधायक एवं निरपेक्ष रूपों को समझ लेना भी आवश्यक होगा। अहिंसा का निषेधात्मक रूप स्वयं 'अहिंसा' शब्द की व्युत्पत्ति से ही स्पष्ट है। अहिंसा का शाब्दिक अर्थ है 'हिंसा का निषेध'। इस परम व्रत तथा सर्वोच्च धर्म की स्वतन्त्र परिभाषा के स्थान पर निषेधात्मक परिभाषा का होना ही इस तथ्य का द्योतक है कि हिंसा शारीरिक जीवन की अत्याज्य आवश्यकता है, अर्थात् न चाहते हुये भी सामाजिक प्राणी होने के नाते किसी न किसी प्रकार हमसे हिंसा हो ही जाती है। गाँधी के दृष्टिकोण से हिंसा का अर्थ व्यापक है। इसके अन्तर्गत जीव-हत्या के अतिरिक्त हृदयविदारक कटु वचन, एकपक्षीय कठोर निर्णय, क्रोध, क्रूरता, घृणा, प्राणि-मात्र को यंत्रणा देना, अपमान एवं निर्बल पर अत्याचार आदि भी सम्मिलित हैं। शोषण गाँधी जी के विचार से, सबसे बड़ी हिंसा है तथा हमें अपना शत्रु समझने वाले के प्रति भी अनुदार न होना हमारी सबसे बड़ी निषेधात्मक अहिंसा है।

गाँधी जी के मतानुसार निश्चित रूप से मृत्यु के परिणाम तक पहुँचाने वाले असह्य कष्ट के निवारणार्थ किसी जीव की हत्या करना 'अहिंसा' के ही अन्तर्गत आता है। उन्होंने अपने आश्रम के एक बछड़े को स्वयं विष दिलवा दिया था क्योंकि उसकी असह्य वेदना का कोई सफल उपचार उन्हें दृष्टिगोचर नहीं होता था। इतना ही नहीं, आत्मसम्मान के पीछे अपने प्राणों तक की आहुति दे देने को तत्पर, गुंडे द्वारा घिरी हुई तथा अपनी इच्छाओं को व्यक्त कर सकने में असमर्थ किसी असहाय नारी की हत्या उसकी सम्मानरक्षा हेतु स्वयं कर डालना और अपने को उसे गुंडे की क्रोधाग्नि के समक्ष उपस्थित कर देना गाँधी जी के मतानुसार शुद्धतम प्रकार की अहिंसा है।

अहिंसा के विधायक रूप के अन्तर्गत समग्र सृष्टि के प्रति प्रेम-भावना आती है। अहिंसा का निषेधात्मक स्वरूप यदि उसका शरीर है तो विधायक रूप उसका प्राण है। हिंसा का निषेध यदि अहिंसा के बाह्य रूप का विधान करता है तो प्रेम उसमें प्राण-संचार करता है जिसके अभाव में अहिंसा निष्क्रिय है, निष्प्राण है।

प्रश्न उठता है कि अहिंसा तथा प्रेम का इतना अभिन्न सम्बन्ध होते हुये भी गाँधी जी ने दोनों को पृथक् क्यों रक्खा? क्या उन्हें समीकृत रूप नहीं दिया जा सकता था। इस सम्बन्ध में उनका मत है कि अहिंसा विशुद्ध आध्यात्मिक शक्ति है किन्तु प्रेम निःस्वार्थ, वासनामय एवं अंधप्रेम भी हो सकता है। किसी युवक तथा युवती का परस्पर प्रेम जिसमें उनके भविष्य तथा हित का कोई विचार न हो, वासनात्मक प्रेम का उदाहरण है तथा अनैतिक कार्यों में प्रवृत्त, समाज का अनिष्ट करने वाले पुत्र के प्रति भी माता की सहज ममता अंधप्रेम का उदाहरण है। गाँधी जी ने अहिंसा के निष्कलुष आध्यात्मिक स्वरूप से प्रेम के इन विविध रूपों का अन्तर स्पष्ट करने के लिए ही दोनों को पृथक् रक्खा। उनकी दृष्टि में अहिंसा का प्रेम वह वास्तविक एवं विशुद्ध प्रेम है जो अपने को मिटा देता है और प्रतिफल भी नहीं चाहता।

गाँधी जी के मतानुसार कलुषित भावना रखने वाले के प्रति भी प्रेम-भाव रखना तथा बुराई पर भलाई द्वारा विजय प्राप्त करने का प्रयास करना प्रेम के सर्वोत्तम उदाहरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि बुरे तथा अन्यायी व्यक्ति के प्रति निष्क्रिय आत्मसमर्पण कर दिया जाय। यह तो कायरता है। अन्यायी का विरोध अपने प्राणों की आहुति देकर भी करना चाहिये। इतना अवश्य है कि विरोध का मार्ग नैतिकतापूर्ण हो तथा आत्म-परिष्कार एवं हृदय-परिवर्तन की पवित्र भावना से युक्त हो। हिंसात्मक विरोध बुराई करने वाले के प्रति अपनी आध्यात्मिक एकता का निषेध है तथा भूलों का पुनराख्यान है।

इसी सन्दर्भ में मनुष्येतर घातक एवं विषैले जीवों की हत्या के औचित्य एवं अनौचित्य का प्रश्न भी आता है। गाँधी जी के मतानुसार संकट उपस्थित होने पर आत्म-रक्षा एवं जनकल्याण हेतु इनकी हत्या हिंसा होते हुये भी क्षम्य है फिर भी उनका विश्वास है कि ईश्वर न किसी भी जीव की रचना हमारे विनाश हेतु नहीं की है। प्रकृति की व्यवस्था में सभी जीवों का कुछ न कुछ स्थान अवश्य है। हम अपने साथी जीवों के निकट शांतिपूर्वक रहने की कला सीख नहीं पाये हैं। अज्ञान के कारण हम उनसे भयभीत रहते हैं तथा हिंसा की कलुषित वृत्ति में अभ्यस्त होने के कारण उनका विनाश कर डालते हैं। जिस जीवन को हम उत्पन्न नहीं कर सकते, उसके विनाश का भी हमें कोई अधिकार नहीं है।

'निरपेक्ष अहिंसा' अहिंसा की वह स्थिति है जहाँ अज्ञानजन्य हिंसा, क्रोध, दुर्भावना तथा घृणा का अस्तित्व ही नहीं रह जाता है। यह ईश्वर का गुण है तथा निरपेक्ष सत्य की ही भाँति अपूर्ण मनुष्य के अनुभव एवं व्यवहार की सीमा से परे इसकी स्थिति है। समग्र अहिंसा एक शक्ति है जब कि निरपेक्ष अहिंसा असीम शक्ति है।

हमारे नित्य के जीवन में अनिवार्य रूप से हो जाने वाली हिंसा के सम्बन्ध में गाँधी का विचार है कि ऐसी हिंसा हमें तभी करनी चाहिये जब उससे बचने का कोई मार्ग शेष न रह जाय और यथा संभव उसके पीछे दया, विवेक, नियंत्रण, अनाशक्ति एवं स्वाभाविकता अवश्य होनी चाहिए। अहिंसा के विकास हेतु यह आवश्यक है कि साधक वही धन्धा करे जिसमें हिंसा की कम से कम सम्भावना हो। आश्रितों की रक्षा हेतु की गई हिंसा वैध हिंसा है। किसी जीव को उसके हित के अतिरिक्त अन्य किसी भी हेतु से मारना हिंसा है, वह हेतु अन्य दृष्टिकोण से उच्च ही क्यों न हो। इसी संदर्भ में गांधी जी ने यह भी बतलाया कि निरामिष भोजन से ही कोई पक्का अहिंसावादी नहीं बन जाता। शाकाहारी भोजन की उपादेयता कभी भी अस्वीकार नहीं की जा सकती, तथापि विशेष महत्वपूर्ण तो है उस भोजन के पीछे किया गया आत्मत्याग एवं आत्मनियंत्रण।

नैतिक दृष्टि से गाँधी जी ने अहिंसा के तीन स्तर बतलाये हैं—वीरों की अहिंसा, दुर्बल की अहिंसा तथा कायर की अहिंसा। वीरों की अहिंसा उच्च कोटि के आन्तरिक विश्वास पर आधारित तथा अतुल शक्ति सम्पन्न होती है जिसके समक्ष पर्वत भी विचलित हो उठते हैं। दुर्बल की अहिंसा का आधार उच्च कोटि का नैतिक विश्वास नहीं, वरन् व्यावहारिकता एवं निष्क्रिय प्रतिरोध है। अतएव आवश्यकता पड़ने पर इसमें हिंसा-प्रयोग की छूट भी मिल सकती है। गाँधी जी की दृष्टि में दुर्बल की अहिंसा जैसी कोई वस्तु नहीं है क्योंकि अहिंसा एवं दुर्बलता में स्वयं पारस्परिक विरोध है। भारत का स्वतंत्रता-संग्राम अहिंसा के इसी स्तर पर आधारित था। गाँधी जी के मतानुसार कायर की अहिंसा वस्तुतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नपुंसकता पर अहिंसा का आवरण है। ऐसे अहिंसक की अपेक्षा कहीं हिंसक होना उनकी दृष्टि में श्रयस्कर है क्योंकि ईश्वर के प्रति श्रद्धारहित कायर कभी अहिंसक नहीं बन सकता जब कि आत्मबल-सम्पन्न हिंसक व्यक्ति अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होने पर अहिंसक बन सकता है। सच्चे अहिंसक के लिए अपेक्षित आत्म-बलि का संकल्प किसी न किसी रूप में हिंसक में भी वर्तमान रहता ही है।

सत्य और अहिंसा कोई नवीन आदर्श नहीं हैं। जीवन के शाश्वत नियम रूप में विश्व सहस्त्रों वर्षों से इनका अभिनन्दन करता चला आ रहा है। हमारे सुविख्यात सूत्र 'सोऽहम्' तथा तत्वमसि जिस निरपेक्ष तत्व की ओर संकेत करते हैं, सत्य एवं अहिंसा का भी प्रतिपाद्य वही है किन्तु युग पुरुष महात्मा गाँधी से पूर्व ये आदर्श सन्त-महात्माओं के प्रयोग तक ही सीमित थे अथवा दुर्बलों एवं कायरों के आवरण मात्र थ। गाँधी जी ने इन मूलभूत नियमों की पुनर्व्याख्या आधुनिक जीवन की पृष्ठभूमि में की। संशयवादी विश्व के समक्ष उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि सत्य एवं अहिंसा मनुष्य की सबसे बड़ी शक्तियाँ हैं। वह उस युगद्रष्टा एवं युगस्रष्टा की सूक्ष्म दृष्टि एवं अपूर्व शक्ति का ही परिणाम है जो आज विश्व इन आदर्शों की परम्परागत सीमित परिधि से बाहर निकल कर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सत्य एवं अहिंसा की दिव्य ज्योति से आलोकित हो रहा है तथा निरन्तर शक्ति प्राप्त कर रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामानव : गांधी

डॉ० नन्दलाल सिंह

अध्यक्ष, स्पेक्ट्रास्कोपी विभाग,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

गाँधी जी का जन्म २ अक्टूबर १८६९ को हुआ। सन् १९६९ में केवल भारतवर्ष में ही नहीं, भूमण्डल के लगभग सभी देशों में उनकी जन्मशती मनायी जा रही है। कहीं उनके नाम पर स्मारक बन रहे हैं, कहीं उनके नाम के टिकट और सिक्के चलाये ज. रहे हैं। उनके नाम की सड़कें खोली जा रही हैं और कहीं उनकी मूर्तियाँ स्थापित की जा रही हैं। उनका जन्म साधारण शिशु के समान हुआ। शिक्षा-दीक्षा साधारण बालक के समान हुई। पढ़ाई-लिखाई में भी वे कोई विलक्षण प्रतिभा के नहीं रहे। उनके जन्म तथा बाल्यकाल के संबंध में कोई ऐसी अलौकिक बात नहीं सुनाई पड़ी, जैसा कि हमारे समाज में किसी अवतारी पुरुष जैसे राम, कृष्ण आदि के बारे में प्रचलित है। तब भी आज गाँधी जी को हम अवतार मानते हैं। क्या साधारण मनुष्य भी अवतारी पुरुष हो सकता है? हमें इसी पर विचार करना है।

गाँधी जी का जीवन पूर्णतः प्राकृतिक रहा। वे कृत्रिम जीवन से दूर रहे। वे मातृ-भक्त, पितृ-भक्त थे। गाँधी जी में प्रथमतः वे सब गुण आये जो उनकी माता में थे। माता जी अनेक व्रत करती थीं, जिनमें कई निर्जला व्रत थे, झूठे व्यवहार से दूर भागती थीं। पिता जी भी बड़े संयमी और धार्मिक प्रवृत्ति के थे। सदाचार, सत्यव्रत, कर्त्तव्यनिष्ठा, परमार्थ आदि सात्विक भावनाओं की नींव उनके बाल्यकाल ही में पड़ी। उन्हें गाँधी जी अपने जीवन में विकसित किये, न तो उनकी अवहेलना की और न उन्हें दबाने की कोशिश की। उन्होंने अपना जीवन सत्य के प्रयोग में बिताया। जहाँ कहीं उन्होंने सत्य के आधार पर आन्दोलन शुरू किया, चाहे अफ्रीका में या हिन्दुस्तान में, अपने निर्मल विचारों को सदा सत्य की कसौटी पर कसते रहे। जब कभी उन्हें किसी अवसर पर अपने अथवा जनता के व्यवहार में सत्य के प्रयोग में त्रुटि दिखाई पड़ी, उन्होंने तुरन्त आन्दोलन बन्द कर दिया और आत्मशुद्धि करने बैठ गये। कारण कि उन्हें सत्य और अहिंसा के मार्ग में हिंसात्मक कारगुजारियाँ लेशमात्र भी मान्य नहीं थी। वे अनशन किसी व्यक्ति, समाज अथवा शासन पर दबाव डालने के लिए नहीं करते थे; स्वार्थ सिद्धि के लिए नहीं, बल्कि आत्मशुद्धि और अपनी कार्यनीति में सत्य, अहिंसा को सुदृढ़ करने के लिए। देश और विदेश की जनता के हित में अपना सुख और ऐश्वर्य त्यागकर उन्होंने अनेक कष्ट और अपमान सहन किया। उन्होंने जीवन पर्यन्त निम्नलिखित सूत्रों का पालन किया :

(१) सत्य ही ईश्वर है और ईश्वर ही सत्य है।

(२) किसी से घृणा न कर प्रेम करना उत्तम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) लड़ाई झगड़े न कर सुलह करके शान्ति रखना अच्छा है।

(४) पारस्परिक सहयोग विग्रह की अपेक्षा वांछित है।

(५) बल प्रयोग के स्थान पर अनुनय विनय से समझाना अभीष्ट है।

गाँधी जी के विचार और उच्चतम कल्पनाएँ समाज के हित के लिए विभिन्न क्षेत्रों में विस्तृत थीं। उनके धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक विचार मानव-समाज के हर क्षेत्र में लागू होते हैं। उन्होंने विचारों को कहीं एक स्थान पर संकलित नहीं किया। उनके विचार उनके भाषणों और लेखों में उसी प्रकार निहित हैं जैसे दूध के भीतर मक्खन। जनता के हित के लिए जैसी कार्य व्यवस्था उन्होंने निश्चित की, उन्हीं को उन्होंने जनता के समक्ष रक्खा और स्वयं उनका पालन कर आदर्श कायम किया। पालन करने के लिए उन्होंने किसी से आग्रह नहीं किया। उनका हृदय जनता के हृदय से मिलकर एक हो गया। जनता में जागृति आयी और देश गुलामी की जंजीरों से मुक्त हुआ। अन्य देशवासी उन्हीं के मार्ग का अनुसरण किये और स्वतंत्रता प्राप्त की।

गाँधी जी की जीवनी से हमें जीवन के हर क्षेत्र के लिए शिक्षा मिलती है। उसे ग्रहण करने के लिए श्रद्धा होनी चाहिए और आत्मसात करने के लिए आत्मबल और निष्ठा। यदि हम साधारण स्तर से ऊपर उठना चाहते हैं और सार्थक जीवन व्यतीत करना चाहते हैं तो हमें सतर्कतापूर्वक आत्म-निरीक्षण करते रहना चाहिए कि हम क्षण-क्षण आत्मोन्नति कर रहे हैं, या नहीं। गाँधी जी केवल सदाचारी ही नहीं थे, उन्हें विश्वास था कि इस रक्त-मांस के पिंजड़े में बैठा जीव ईश्वर का अंश है और वह निरंतर विकसित होने की चेष्टा करता है ताकि वह स्वयं ईश्वर की व्यापकता प्राप्त कर ले। किन्तु उसके विकास में उसके मन की कमजोरी से इन्द्रियजनित अनेक बाधाएँ उत्पन्न होती हैं और प्राणी लक्ष्य से डिगने लगता है। गाँधी जी अपनी भीतरी कमजोरियों को जानते थे। उन्होंने मन की बुराइयों को लेखनी के हवाले कर सर्व विदित कर दिया है साथ ही उन पर विजय पाने और उन्हें शमन दमन करने की क्रिया भी लिखी है। हम भी अपने मनोविकारों को जानते हैं उन्हें व्यक्त करने में लजाते हैं बल्कि अपने ही को धोखा देकर उन्हें छिपाते हैं उनके निग्रह की चेष्टा नहीं करते तब भी हम इच्छुक रहते हैं और भीतर-भीतर तडफड़ाते हैं कि हमारा नाम हो, हमें सभी ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ प्राप्त हो जाँय। ऐसे तुमुल में विजयी होने के लिए हमें गाँधी जी ही के जीवन से प्रेरणा मिलती है। गाँधी जी ने अपने और साधारण जनता के बीच कोई अन्तर नहीं समझा, अपने को कहीं ऐश्वर्यवान नहीं झलकाया। उन्होंने सदा यही इंगित किया कि जो कुछ हमने किया है अथवा कर रहा हूँ वह कोई भी मनुष्य कर सकता है। आत्म-सम्मान ही जीवन सार्थक बनाने की कुँजी है। गाँधी जी की इतनी प्रतिष्ठा और ख्याति न तो दैवी संयोग से हुई और न उनके भाग्य चक्र से, वे केवल आत्म-संयम से इतने ऊपर उठे। उनसे भी शारीरिक और मानसिक भूलें हुई, लड़खड़ाते भी दिखाई पड़े किन्तु उन पर विचार कर आत्म-चिन्तन कर सम्हलते रहे और अन्त में प्रतिभावान सदाचार की मूर्ति माने गये। निजी प्रयास से दैहिक सुखों से मुक्त होकर भीतरी आध्यात्मिक सुख का अनुभव किया—कबीरदास की वाणी

"मुझे कहां तू खोज रे बन्दे मैं तो तेरे पास में"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनुसार ईश्वर का साक्षात्कार किया। प्रार्थना सभा में सीने पर गोली लगी। मुख से केवल 'राम' निकला, मानो वे ब्रह्म में लीन हो गये।

आत्म-चिंतन और आत्म-संयम से गांधी जी परम योगी हो गये। जनता उन्हें महात्मा गाँधी कह कर सम्बोधित करने लगी, किन्तु वे उन योगियों से भिन्न थे जो जंगल, अथवा पहाड़ों की गुफा में योग साधन करते हैं। उनके साधन का क्षेत्र जनसमूह ही रहा। गौतम बुद्ध भी सांसारिक विपत्तियों को देख, विराग धारणकि ये और निर्जन स्थान में जाकर साधना की, फिर ज्ञानोदय होने पर बौद्ध धर्म का प्रवर्तन किया। गाँधी जी जनता की विपत्तियों में उसके साथ रहे; चाहे अफ्रीका के नैटाल क्षेत्र में अथवा हिन्दुस्तान के जलियानवाला कांड और नोआखाली में। जनसमूह में उनकी परमार्थ भावना उदय हुई, उन्होंने जनता के साथ आँसू बहाया। निःस्वार्थ भाव से सेवाएँ की। उन्हें नरसी मेहता का यह गीत प्रिय था :

"वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीर पराई जाने रे
पर दुःखे उपकार करे तोये मन अभिमान न माने रे।"

गाँधी जी के जीवन का एक दूसरा उसूल था :

"बुराई के बदले भलाई करना"

यह भावना उनके मन में बचपन से माँ की वाणी से एक गुजराती गीत सुनते-सुनते जागृत हुई थी। कबीरदास ने कहा है :

"जो तोकूँ काँटा बुवै ताहि बोय तू फूल।
तोकूँ फूल को फूल है वाकूँ है तिरसूल॥"

परन्तु गाँधी जी कबीरदास से भी ऊपर चले गए। उन्होंने अपकारी का बदला उपकार से चुकाया किन्तु यह भावना नहीं रखी कि उसके उपकार के प्रतिफल में उसको कष्ट पहुँचे। बल्कि इस उद्देश्य से करते रहे कि उसके हृदय का परिवर्तन हो और वह समाज का सच्चा सेवक बने।

व्यक्तियों से समाज का निर्माण होता है और व्यक्ति का अस्तित्व समाज पर आधारित है। व्यक्ति समाज का प्राण है तो समाज व्यक्ति का निवास स्थान है। दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं। इसी उत्प्रेरणा से गाँधी जी ने व्यक्ति के चरित्र-निर्माण पर आत्म-संयम द्वारा प्रभाव डाला और फिर उसे समाज में निष्काम कर्म करने की प्रेरणा दी। उनके विचार से निःस्वार्थ भाव से जन-सेवा ही मनुष्य का परम कर्त्तव्य है और यह सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों से बढ़कर है। इन कर्मों में आदान-प्रदान की भावना निहित होती है जबकि जनसेवा बिना त्याग और आत्म-संयम के नहीं हो सकती। गाँधी जी के विचार से आदर्श समाज वह है जिसमें न शासक हों, न शासित, जिसमें नियंत्रण के लिए किसी शासन-तंत्र की आवश्यकता न हो। प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए स्वयं शासक हो, उसे किसी का भय न हो। जहाँ प्रत्येक प्राणी निष्ठापूर्वक मानवता के कल्याण के लिए सदा उद्योग करता रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

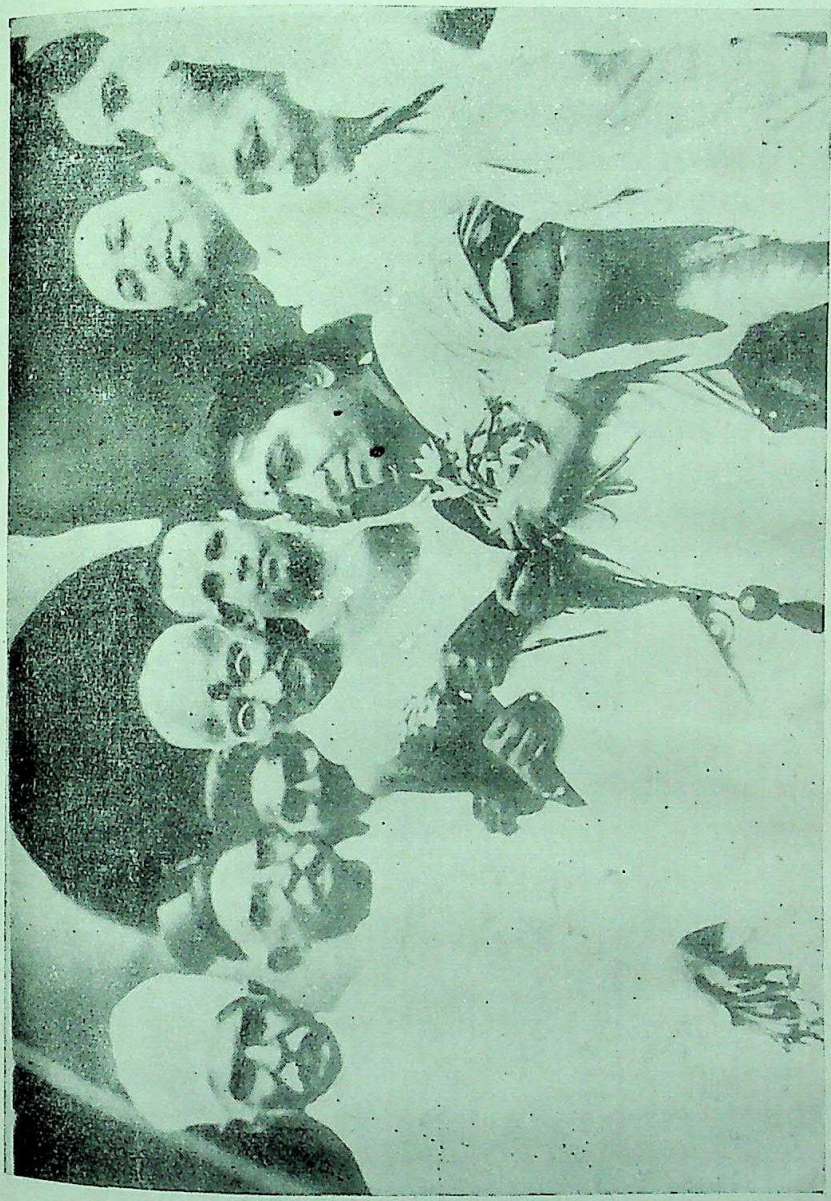

29 अगस्त, 1931 को गोलमेज कांफेरेंस, लन्दन में जाने से पहले महात्मा गाँधी मालवीय जी के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाँधी जी के विचार कुछ मौलिक बातों पर आधारित थे—(१) समाज की सभ्यता का स्तर जन-साधारण के व्यक्तित्व से ही ऊपर उठता है न कि उनकी आवश्यकताओं को बढ़ाने से। (२) किसी भी रीति से धन-संग्रह नहीं होना चाहिए। सच्चे मार्ग से प्राप्त धन का सदुपयोग करने से ही मनुष्य को आन्तरिक सुख मिलता है और उसका असर समाज पर पड़ता है। (३) मनुष्य को धन का गुलाम नहीं होना चाहिए, बल्कि धन पर मनुष्य का अनासक्ति भाव से प्रतिबंध होना चाहिए। (४) उचित मार्ग से धन उतना ही संग्रह करना चाहिए, जितने की आवश्यकता हो। लालच में पड़कर अधिक धन इकट्ठा करना और उसका सदुपयोग न करना पाप है।

आज प्रायः सुनने में आता है कि भारतवर्ष गांधी जी को भूल गया है, किन्तु ऐसी बात नहीं है। क्योंकि साधारण जनता के मन में गांधी जी अवतार रूप में बैठ गए हैं। और नेता वर्ग चाहे वे कांग्रेसी हों अथवा अन्य किसी राजनीतिक दल के हों सभी अपने भाषणों में उन्हीं के नाम की दुहाई देते हैं और उन्हीं को उद्धृत करते हैं किन्तु खेद है कि उसका आचरण नहीं करते। इसी कारण उनके भाषण हवा में विलीन हो जाते हैं और जनता पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता।

गाँधी जी ने बताया कि देश की गरीबी, भुखमरी और बेकारी तब तक समाप्त नहीं की जा सकती, जब तक कि छोटे-छोटे गाँवों में खेती के साथ-साथ छोटे-छोटे कारखाने न खोले जाँय। जब तक प्रत्येक गाँव अपने निजी कारबार और उद्योगों सहित हर प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं नहीं कर पायेंगे और बड़े शहरों की ओर उन्मुख रहेंगे तब तक देश की गरीबी नहीं मिट सकती और तब तक सामाजिक जीवन का विकास नहीं हो सकता। पंचवर्षीय योजनाओं के अंत में आज हमें यही बात स्पष्ट होती है। हम देख रहे हैं कि गत वर्षों में इन पंचवर्षीय योजनाओं में अपरिमित धन व्यय हुआ। सामाजिक स्तर उठाने की दृष्टि में बड़े-बड़े नगरों की चमक-दमक बढ़ी, भव्य मकान बन गये, अनेकानेक सुन्दर सड़कें निकल गयीं, बहुत-सी पहाड़ी नदियों में बाँध डालकर उनके पानी से बिजली उत्पादन और सिंचाई का कार्य होने लगा। कई बड़े-बड़े कारखाने भी खोले गये किन्तु अभी तक साधारण जनता की भुखमरी नहीं जा सकी, न तो उनके रहने के लिए छोटे-मोटे घर बन सके और न पहनने के लिए कपड़े। स्त्रियों के शरीर पर उनके मैले कुचैले चिथड़ों में कुछ भी परिवर्तन नहीं हो पाया है। नगरों के बाहर गाँवों में नंगे, भूखे बिलखते बच्चों को देखकर गाँधी जी की बातें स्मरण हो जाती है।

शहरों में भी कुछ घरों को छोड़कर, जिनके यहाँ कोई पुस्तैनी व्यापार चल रहा है अथवा जो नौकरी में अच्छी तनख्वाहें पा रहे हैं अन्य की दशा वैसी ही शोचनीय है जैसी की स्वराज्य के पहले थी। यहाँ पर बेकारों की संख्या अधिक पायी जाती है जिनमें बहुत से वे हैं जो गाँवों की दर्दनाक स्थिति से ऊबकर शहरों में काम-काज ढूँढ़ने आए हैं। यदि गाँधी जी के अनुसार गाँवों में छोटे-छोटे उद्योग विकसित किये गये होते तो उन गरीब स्त्री-पुरुषों को जो शहरों की चमक-दमक में नौकरी ढूँढ़ने आते हैं और काम न मिलने पर भीख माँगते हैं सड़कों की पटरियों पर सोते हैं या मंदिरों अथवा मस्जिदों के सामने हाथ जोड़े बैठे एक रोटी का आसरा देखते रहते हैं उन्हें गाँव के उद्योग धधों में लगकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी जीविका कमा लेने का अवसर मिल जाता। वे अपने तथा बाल बच्चों के लिए छोटा-मोटा घर बना लेते और उन्हें कुछ साफ-सुथरे कपड़े दे सकते तथा उनके साथ अपना रहन-सहन ऊँचा कर सकते। परिणाम यह होता कि गाँवों का एवं पूरे समाज का जीवन-स्तर ऊँचा हो जाता। खादी-प्रचार का उद्देश्य यही था और इसीलिए गाँधी जी ने ब्रिटिश साम्राज्य के सम्मुख चरखे का चक्र चलाया किन्तु इसका भी समर्थन और प्रचार कुछ थोड़े से व्यक्तियों ने ही किया। अधिकांश लोग शहरी चकाचौंध में ओझल हो विदेशी या स्वदेशी मिलों के नफीस कपड़ों से ही लिपटे रहे। चरखे से इंगलैंड की बड़ी मिलें टुटीं किन्तु देशी मिलों की वृद्धि से धनी ही धनी हुये, गरीब जनता जहाँ की तहाँ रह गई।

शिक्षित बेकारों की संख्या बढ़ेगी, यह गाँधी जी को पहले ही दीख गया था। शिक्षा को अर्थकरी होनी है, अतः उन्होंने बुनियादी शिक्षा की दीक्षा दी। बालक-बालिकाएँ ऐसी शिक्षा पाएँ, जिससे वे अपना खानदानी व्यवसाय चलावें अथवा कोई ऐसा हुनर सीखें, जिसका उपयोग किसी उद्योग में लगाकर निजी धंधा खोलें। शिक्षा को लेकर तरह-तरह के प्रयोग किये गए। कई कमीशन नियुक्त किए गए। उनकी रिपोर्टें प्रायः इंगलैंड, अमेरिका, रूस आदि समृद्ध देशों की शिक्षा-प्रणाली के आधार पर लिखीं गई, अपने देशी वातावरण के अनुकूल नहीं, जिससे बेकारों की संख्या बढ़ी। एम० ए०, बी० ए०, एम० एस-सी०, बी० एस-सी० पासूदों को कौन कहे हजारों की संख्या में इंजीनियरी पास विद्यार्थी बेकार बैठे हैं। अध्ययन काल में इन पर किसी प्रकार का सामाजिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक प्रकाश पड़ता नहीं कि वे परिस्थिति के अनुकूल अपने को संतुलित रख सकें। उन्हें घर का काम-काज करने में लज्जा मालूम पड़ती है। जब तक हम शिक्षा को क्रियात्मक ढंग से इन स्नातकों को निजी उद्योग करने की ओर नहीं बढ़ायेंगे और जब तक उनमें श्रम करने की भावना नहीं जगा सकेंगे और साथ ही जब तक उनकी योग्यतानुसार ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे-मोटे उद्योग-धंधे नहीं खोल सकेंगे, तब तक बेकारों की संख्या बढ़ती जायेगी और आगे चलकर हमारी स्वतंत्रता पर भी आघात पहुँचेगा।

नशाबंदी के विरुद्ध गाँधी जी ने जोरदार आवाज उठायी। उसका कुछ प्रभाव भी पड़ा। कहीं-कहीं शराब की दुकानों पर लोगों ने धरना दिया, अनशन किया। उन सब का असर भी हुआ, किन्तु कुछ ही समय बाद आज देश में चारों ओर इसकी वृद्धि ही दिखाई पड़ती है। नशाबंदी के लिए कानून बनाये गए, किन्तु उन्हें पूरी तरह से लागू नहीं किया जा सका। किसी-किसी विधान सभा में नशाबंदी कानून का प्रस्ताव लाने पर कतिपय विधायकों ने घोर विरोध किया। कहा कि ऐसा कानून लागू करने पर सरकार की आमदनी बहुत घट जायेगी। जहाँ कहीं कानून लागू हुआ, वहाँ भी शराबखोरी बन्द न की जा सकी। पूरे देश के आँकड़ों से मालूम होता है कि नशेबाजी और शराबखोरी निरंतर वृद्धि पर है और क्यों न हो जब कि हमारे बड़े-बड़े नेता जो जनता के लिए आदर्श स्वरूप हैं इसके रसास्वादन से नहीं चूकते। इससे जनता के स्वास्थ्य पर और उनके आचरण पर जो प्रभाव पड़ रहा है वह हर एक क्षेत्र में सर्वविदित है। इन सबके कारण हमारा नैतिक आचरण ढीला होता जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाँधी जी ने सबसे अधिक जोर राष्ट्र की एकता बनाये रखने पर दिया। उन्हें जातिभेद, वर्णभेद, धर्मभेद से घृणा थी। वे सब धर्मों को एक समान मानते थे। अस्पृश्यता निवारण का अथक प्रयत्न उन्होंने जाति-भेद और वर्ण-भेद दूर करने के लिए ही किया और इसी उद्देश्य से उनकी प्रतिदिन की प्रार्थना सभाएँ होती थीं पर गाँधी जी की इस दूरदर्शिता तक हम पहुँच नहीं सके। हमने उनके प्रज्जवलित दीप को स्नेह नहीं दिया और तो और भाषावार प्रान्तों का गठन कर डाला। प्रान्तीयता की भावना पहले से थी, भाषा की उसके ऊपर। उसका परिणाम क्या हुआ—आंध्र और मद्रास विलग हुए, पंजाब और हरियाणा बने, तेलंगाना का सर दर्द आया तथा शिवसेना आदि अनेक सेनाएँ दिनानुदिन बनीं। इन सबका उद्देश्य किसी कार्य के प्रति निष्ठावृत्ति नहीं है; अर्थात् जो हिन्दी का बहिष्कार कर अन्य प्रान्तीय भाषाओं की माँग करते हैं, उनका लक्ष्य अपनी मातृभाषा का विकास करना नहीं होता। शायद वे उसकी गंभीरता तक पहुँचते ही नहीं। उसका साहित्य भी नहीं पढ़ते। हिन्दी को ही लीजिए। हिन्दी राष्ट्रभाषा है, इसके प्रसार के लिए कितने नारे लगाये जाते हैं, अंग्रेजी बोर्डों के ऊपर तारकोल पोते जाते हैं और नानाविध उत्पात होते हैं। क्या इसका अर्थ यह है कि वे लोग सचमुच हिन्दी के प्रति आस्थावान हैं, हिन्दी की सेवा कर रहे हैं? शायद बात इसके बिल्कुल विपरीत है। जैसे सरकार, वैसे ही जनता भी हिन्दी को राजनीतिक अस्त्र बनाए हुए है। भाषा के विषय में गांधी जी की धारणा अत्यन्त स्पष्ट थी। वे पूरे देश के लिए एक ऐसी सर्वमान्य भाषा की तलाश में थे जिसका व्यवहार सबके लिए सुविधाजनक हो। इसलिए उन्होंने हिन्दुस्तानी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने की अपील की। हिन्दुस्तानी से उनका तात्पर्य उर्दू मिश्रित उस हिन्दी से था जिसका प्रयोग कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में अपने दैनिक व्यवहार में एक भाषाभाषी दूसरे से करता है। इस हिन्दुस्तानी के माध्यम से उन्होंने देश की एकता को स्थिर बनाने का स्वप्न देखा था किन्तु अब तक उसके साकार होने का दिन नहीं आ सका। राष्ट्रभाषा प्रचार समितियों का गठन कर भाषा विषयक धारणा को गांधी जी ने मूर्त रूप दिया। मद्रास जाकर उन्होंने हिन्दुस्तानी में भाषण किया, जिसका विरोध करने का साहस उस समय किसी ने नहीं दिखाया। पर जिस दिन राष्ट्रभाषा राजनीतिक लक्ष्य बन गई, उसमें निहित सद्भावना भी विनष्ट हो गई। लोगों ने इसे कोई कुचक्र समझा और संदेह की दृष्टि से भाषा के प्रश्न पर विचार करना शुरू किया। संदेह को मन में पोष कर हम हठात् एक दूसरे के विरूद्ध हो गए। संदेह हमारे विरोध भाव का बीज है।

गांधी जी की कल्पना देश में रामराज्य स्थापित करने की थी, जिसका दिव्य वर्णन तुलसीदास जी ने किया है:

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज्य नहिं काहुहि व्यापा॥
बयरु न कर काहू सन कोई। रामप्रताप विषमता खोई॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥
सब निर्दम्भ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब उदार सब पर उपकारी । बिप्र चरण सेवक नर नारी ।।
फूलहिं फरहिं सदा तरुकानन । रहहिं एक संग गज पंचानन ।।
खग मृग सहज बयरु बिसराई । रहहिं परस्पर प्रीति बढ़ाई ।।
लता विटप मांगे मधु चवहीं । मनभावतो धेनु पय स्रवहीं ।।

किन्तु गांधी जी की कल्पना स्वप्नवत् रह गई । उनके निधन के बाद २०-२२ वर्ष में देश की दशा दयनीय हो गई है । पारस्परिक ईर्ष्या, डाह, द्वेष, बैर बढ़ गया है । एक दूसरे पर विश्वास नहीं रह गया है । जातिभेद, वर्ण-भेद व्यापक हो गया है । जयहिंद के स्थान पर जय तेलंगाना, जय हरयाना, जय पंजाब, जय बंगाल के नारे लग रहे हैं । राष्ट्र-एकता निरंतर विघटित हो रही है । सच है "यथा राजा तथा प्रजा" जैसे शासक हैं वैसे ही तो जनता हो रही है । हम गाँधी जी का स्मरण तो करते हैं किन्तु हम उनके आदर्शों और आदेशों की अवहेलना करते हैं । यदि हमें व्यक्तिगत तथा सामाजिक सुधार कर राष्ट्र का उत्थान करना वांछित है तो हमें उन्हीं की जीवनी का अनुसरण करना चाहिए ।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाँधी जी और बकरी का दूध

डॉ० देवनारायण पाण्डेय

गाँधी जी अहिंसा के पुजारी थे। वे मांस तथा दूध एवं दूध से बने पदार्थों का उपभोग करना पाप समझते थे। एक बार उनकी पसलियों में सूजन आकर बहुत तेज दर्द उत्पन्न हुआ। डॉ० जीवराज मेहता ने बीमारी से छुटकारा पाने के लिए उनसे दूध पीने का आग्रह किया किन्तु वे न माने। अन्त में यह शिकायत गोखले जी तक पहुँची। गोखले जी ने उनसे पूछा और गांधी जी ने यह जबाव दिया कि "मैं सब कुछ करूँगा, किन्तु आप एक चीज का आग्रह न कीजिए। मैं दूध और दूध के पदार्थ सेवन नहीं करूँगा। इन्हें न लेने से देहपात होता हो, तो वैसा होने देने में मुझे धर्म मालूम देता है।" ऐसी कड़ी प्रतिज्ञा देखकर गोखले जी ने उनसे दूध लेने का आग्रह नहीं किया और धीरे-धीरे अन्य आहारिक प्रयोगों द्वारा उनकी तबियत में कुछ सुधार हो गया।

कुछ दिनों बाद गाँधी जी को पेचिश की शिकायत हो गई। जिसके कारण उनके पेट में दर्द रहता था तथा १५-१५ मिनट पर पाखाना जाना पड़ता था। उन्हें काफी कष्ट था, अतः एक मित्र ने गाँधी जी को डॉ० दलाल को दिखाया। डॉ० दलाल ने कहा कि आप को दूध का सेवन करना चाहिए तथा लोहे और आर्सेनिक का इन्जेक्शन लगवाना चाहिए। गाँधी जी ने जबाव दिया कि इन्जेक्शन तो लगा दीजिए किन्तु मैं दूध नहीं लूँगा। डॉक्टर दलाल ने ऐसी प्रतिज्ञा का कारण पूछा। इसके उत्तर में गाँधी जी ने बताया कि गाय, भैंस पर फूँके की क्रिया की जाती है, अतः मुझे दूध से नफरत हो गई है। उन्होंने यह भी कहा कि दूध मनुष्य का आहार नहीं है इसीलिए मैंने उसे छोड़ रखा है। उनकी धर्मपत्नी कस्तूरबा गाँधी उनके पास खड़ी थीं। गाँधी जी का उत्तर सुनकर उन्होंने कहा कि तो फिर आप बकरी का दूध तो ले ही सकते हैं। डॉक्टर दलाल ने भी इस बात का समर्थन किया और गाँधी जी बकरी का दूध पीने को राजी हो गए। उन्होंने बकरी पाल ली और अन्त में उसका दूध पीकर ही उन्हें स्वास्थ्य लाभ हुआ, जिसके कारण वे आगे सत्याग्रह की लड़ाई लड़ने में सफल हुए।

मनुष्य के आहार में प्राचीन काल से ही बकरी के दूध का विशिष्ट स्थान रहा है। वैसे तो अपने संगठन में यह गाय के दूध से मिलता-जुलता है किन्तु यह अधिक पौष्टिक, शीघ्र पाचक, सुमधुर आदि गुणों के कारण बच्चों तथा मरीजों के लिए अधिक हितकर होता है। बकरी के दूध में ४ प्रतिशत वसा, ३.७ प्रतिशत प्रोटीन, ४.२ प्रतिशत लैक्टोज तथा १२.८ प्रतिशत कुल ठोस पदार्थ होते हैं।

आयुर्वेद में भी दूध के गुणों की बहुत बड़ी महत्ता दी गई है। बकरी का दूध हल्का, दस्त-रोधक, चिकना, औषधगुण सम्पन्न, रक्त-पित्त का शमन करने वाला, शीतल, मधुर, जीवन बढ़ाने वाला एवं पित्त के विकारों को नष्ट करने वाला बताया गया है। बकरी का दूध क्षय रोग से ग्रसित रोगियों के लिए विशेष गुणकारी होता है। यह दमा और खाँसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को नाश करता है। बकरी के दूध तथा छाछ के सेवन से प्रमेह, अर्श, संग्रहणी, अपच, अतिसार, भगन्दर, पीलिया, शोथ, कफ, कोढ़, कृमि, वायु दोष, शूल एवं विषम ज्वर आदि नष्ट होते हैं। बकरी का दूध बल-वर्धक तथा पुरुषत्व प्रदान करने वाला होता है। अपने में उपर्युक्त गुणों के कारण ही डॉक्टर लोग इसके सेवन की विशेष राय देते हैं और इसी कारण गाँधी जी ने भी इसे ग्रहण किया।

शरीर को स्वस्थ रहने के लिए कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन खनिज लवण तथा विटामिन जैसे पोषक-तत्वों की आवश्यकता पड़ती है। ये समस्त तत्व बकरी के दूध में समुचित मात्रा में मौजूद रहते हैं। प्रोटीन शरीर की वृद्धि एवं विकास के लिए आवश्यक है। शरीर का मांस प्रोटीन से बनता है। दूध में उपस्थित शर्करा तथा स्टार्च शरीर को शक्ति प्रदान करती हैं। दूध के खनिज लवण विशेषकर कैल्शियम तथा फास्फोरस शरीर की अस्थियों तथा दाँतों को मजबूत बनाते हैं। दूध में कई प्रकार के विटामिन पाये जाते हैं जो शरीर को बीमारियों के प्रति सहन-शक्ति प्रदान करके उसे स्वस्थ रखने में अपना योगदान देते हैं।

दूध को छोड़कर संसार में कोई भी अन्य ऐसा खाद्य-पदार्थ नहीं है, जिसमें शरीर के लिए आवश्यक सभी पोषक-तत्व समुचित मात्रा में मौजूद हों। इसी कारण बकरी के दूध को लगभग एक पूर्ण आहार माना गया है। और इसी कारण गाँधी जी ने अपने जीवन में इसे विशिष्ट स्थान दिया। वे अपनी पालतू बकरी को सदैव अपने साथ रखते थे। वैसे तो बकरी ऐसा पशु है जिसके खान-पान पर विशेष ध्यान नहीं देना पड़ता, क्योंकि यह हर प्रकार की घास-पात खाकर अपना पेट भर लेती है। किन्तु, खराब पत्तियाँ तथा दूषित खर-पतवार खाने से बकरी के दूध में एक प्रकार की गंध आने लगती है जिसके कारण आमतौर पर लोग इसे पीना पसंद नहीं करते। यदि बकरी के आहार पर थोड़ा-सा ध्यान देकर उन्हें गंदी घास-पात खाने से रोका जाय तो उससे प्राप्त दूध गाय की भाँति ही स्वादिष्ट होता है। गाँधी जी अपनी बकरी के खान-पान पर स्वतः ध्यान देते थे और उसे अच्छे-अच्छे पदार्थ खिलाते थे। इसी कारण उनकी बकरी का दूध साधारण बकरियों के दूध की अपेक्षाकृत अधिक रुचिकर होता था।

गाय-भैंस की अपेक्षा बकरी बहुत ही थोड़े खर्च पर पाली जा सकती है जिससे गरीब लोग भी इसे आसानी से रख सकते हैं। दूध के अतिरिक्त मांसाहारी लोगों के लिए यह उच्च कोटि का मांस भी प्रदान करती है। मरने के बाद बकरी के बाल तथा खाल भी मनुष्य के काम आते हैं। कश्मीर की अंगोरा बकरी से 'पश्मीना' नामक उच्च कोटि की ऊन प्राप्त होती है जो शाल तथा दुशाले बनाने के काम आती है। इसे आसानी से शहरों तथा गाँवों में पाला जा सकता है। बकरी की मेंगनी से अच्छी किस्म की खाद बनती है जो खेतों को उपजाऊ बनाने के काम आती है। अपने में मौजूद उपयुक्त गुणों के कारण ही बकरी को 'गरीब की गाय' कहा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GANDHI JI'S CONTRIBUTION TO INDIAN CULTURE

DR. T. R. SHARMA
Shastri, M.A. (Hons.) Ph.D.

Whenever I think of Gandhi Ji I am reminded of non-violence, passive resistance, satyagraha, simplicity, self-Control, self-introspection, ahimsa (love for all) and morality in all actions of life. Actually Gandhi Ji's unparalleled greatness lies in his qualities of a philosopher-king combined with the virtues of a saint; he was himself a great thinker and gave practical shape to all of his thoughts; he touched the heights of success in all the domains, he worked and loveably ruled the minds of the people not only of his land but of the entire world. His greatest contribution to Indian Culture was to love what is all Indian, awakening of the Indian masses, uplift of the down-trodden and the distressed, uprooting of all the evils which had sprung in Indian life as an outcome of the Moghul and British rule in India and Checking the people when they were proceeding in a reverse direction.

He gave a practical shape to the basic principles of Indian Culture which he presented before the people in a revised and improved form. He taught as how to live, how to eat, how to work and how to progress. We may try to count all this in the proceeding lines.

Gandhi Ji's belief in God was a great force in his soul. He took pride in calling himself a 'sanatani Hindu'.[1] Gandhi Ji believed in the Vedas, the Upanishads, the Puranas and all that goes by the name of Hindu scriptures and therefore in avataras and rebirth. He did not oppose Idol worship.

In all his trials at the time of difficulty he looked to God and got what he desired.[2] He had full faith in God and searched

[1] Radhakrishnan, S., *Mahatma Gandhi, Essays and Reflections*, P. 359 cf. Young India, October 6, 1921.

[2] Gandhi, M. K., The Story of My Experiences with Truth (ed. 1963) P. 44.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Him in truth and morality.[1] He did not consider worship or prayer to be a lip-homage ; rather it springs from the heart and purifies it. Prayer needs no speech. Gandhi Ji considered it to be an unfailing means of cleaning the heart of passions, but it needs to be combined with the utmost humility.[2] It may be noted that people were going averse to prayer or worship when Gandhi Ji emphasised its value. Truth, Morality and God were the three things which formed the edifice of all that Gandhi Ji could build up.

In spite of being a staunch sanatanist Hindu, Gandhi Ji took interest in the comparative study of religions. He never went against his conscience and boldly expressed his opinion. Several times he visited church in the company of a christian friend's family and the impressions he delineates in his Autobiography, "The church did not make a favourable impression on me. The sermons seemed to be uninspiring. The congregation did not strike me as being particularly religions. They were not an assembly of devout souls ; they appeared rather to be worldly—minded people, going to church for recreation and in confirmity to custom."[3] With the result soon he gave up attending it.

He did not spare even Hinduism of its concurrent faults. On his visit to the famous Vishwanath Temple at Benares, he narrates in his Autobiography, how he was treated by greedy pandas. The atmosphere around the temple was full of filth and dirt. The approach was through a narrow and slippery lane. When he reached the temple he was greeted at the entrance by stinking mass of rotten flowers. He felt the absence of an atmosphere of meditation and communion. *Still he could observe devout sisters, who were absorbed in meditation, entire unconscious of the environment.*" "But for this the authorities of the temple could scarcely claim any credit. The authorities should be responsible for creating and maintaining about the temple a pure, sweet and serene atmosphere, physical as well as moral. Instead

[1] Bose, Nirmal Kumar, *Selections from Gandhi*, P. 1.
[2] Gandhi, M. K., *The Story of My Experiences with Truth*, P. 45.
[3] Ibid P. 98.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

of this I found a bazar where cunning shopkeepers were selling sweets and toys of the latest fashion."[1] The surroundings of the Jñana-vapi (Well of knowledge) too he found dirty and so he was not in a good mood.

Gandhi Ji had respect for all religions and believed in the oneness of God. "The Allah of Islam is the same as the God of the christians and the īśvara of the Hindus. Even as there are numerous names of God in Hinduism, there are many names of God in Islam. The names do not indicate individuality but attributes,[2] though He is above all attributes, Indescribable, Immeasurable. Living faith in this God means equal respect for all religions. It would be the height of intolerance—and intolerance is a species of violence—to believe that your religion is superior to other religions and that you should be justified in wanting others to change over to your faith."[3]

India which in earlier times had monarchy as its chief form of government has been a country devoted to moral values, was loosing them in modern times. Politics which affects the masses at the National and International level was going without moral values ; this would have created an uncontrollable chaos had Gandhi Ji not saved the situation. Gandhi Ji gave a blend of moral values to Politics. Politics without ethics is a great nuisance. Gandhi Ji fought with the British with the help of his weapon of morality at a plane where the users of machine-guns had no weapon. He fought with the weapons of non-violence, passive resistance and non-cooperation all of which are one and the same being complimentary to each other. Gandhi Ji believed non-violence to be the soul of Hinduism as he says, "If India takes up the doctrine of the sword she may gain a momentary victory, then India will cease to be the pride of my heart. I believe absolutely that India has a mission for the

[1] Gandhi, M. K., The Story of My Experiences with Truth (ed. 1963), P. 148.

[2] Cf. Ṛgveda : एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति ।

[3] Radhakrishnan, S., *Mahatma Gandhi, Essays and Reflections*, P. 15. Cf. Harijan, May 14, 1938.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

world ; however India's acceptance of the doctrine of the sword will be the hour of my trial. My life is dedicated to the service of India *through the religion of non-violence, which I believe to be the root of Hinduism.*"[1] The transfer of power on August 15, 1947, marked the end of the struggle.

Gandhi Ji wanted free India to form a classless society in which all communities shall live in perfect harmony. He hated the distinction between foreign and indigenous.[2] He believed in the Varnashrama Dharma in a sense strictly Vedic, but not in its present popular and crude sense.[3] He worked to stop disunity and friction between social group. He drove a march against untouchability. He regarded traditional nomenclature to be inconsistent with fundamental ethics. A person should be judged by his performance and actions rather than by any superiority of caste and class or occupation. Though he believed in the theory of varṇa, he also believed in the theory of evolution. "I regard varnashrama as a healthy division of work based on birth. The present ideas of caste are a perversion of the original. There is no question with me of superiority or inferiority. It is purely a question of duty. I have indeed stated that varna is based on birth. But I have also said that it is possible for a shudra, for instance to become a vaishya. But in order to perform the duty of a vaishya he does not need the label of a vaishya. He who performs the duty of a brahman will easily become one in the next incarnation."[4] He believed in interdining and even intermarriage and hence a fusion of castes. 'The four divisions define a man's calling, they do not restrict or regulate social intercourse."[5] But he also remarked,"Prohibition against

[1] Radhakrishnan, S., *Mahatma Gandhi, Essays and Reflections.* P. 264. cf. Bose, Nirmal Kumar, *Selections from Gandhi.* Pp. 154-55 : Gandhi J preferred violence to cowardice but considered non-violence to be infinitely superior to violence.

[2] Ibid. P. 265.

[3] Ibid, Appendix I, P. 359.

[4] Bose, Nirmal Kumar, *Selections from Gandhi,* P. 231 No. 661 ; Young India, 23-4-25, P. 145.

[5] Ibid. P. 234 No. 674.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

intermarriage and interdining is essential for the rapid evolution of the soul."[1] But he believed that there should be no restriction on the choice of a bride to a particular group. He also tried to bring about Hindu-Muslim unity; the friction being largely due to outside political factors. For Gandhi Ji, Ahimsa 'in its positive form meant the largest love, the greatest charity."[2]

Gandhi Ji gave a new interpretation, life, light and fresh colour to the basic truths of Indian Culture. He gave a practical shape to the practice of fast in Indian Culture which he believed was a must for the strength of the soul; whenever there is a distress which one cannot remove, one must fast and pray.[3] He used this weapon for his theory of passive resistance (resistance without violence) and non-cooperation. The height of practical shape in this direction was fast into death. Gandhi Ji kept long fasts to bring out Hindu-Muslim unity. Thus he introduced religion into politics as he says, "If I seem to take part in politics it is only because politics to-day encircle us like the coils of a snake from which one cannot get out no matter how one tries. I wished to wrestle with the snake..... I am trying to introduce religion into politics."[4] He was a great protagonist of Brahmacharya which was a great strength which could be attained by keeping fast and taking spiceless and uncooked food; i.e. fruits, nuts etc. He was actually not in the favour of control of population and if at all birth-control was to be maintained (on biological grounds) it should be done with the help of self control rether than with contraceptives. Fasting, according to Gandhi Ji, was an external aid to Brahmacharya.[5] He quotes the Gita in this context.[6] He was in

[1] Ibid. P. 235.

[2] Radhakrishnan, S., *Mahatma Gandhi, Essays and Reflections*, P. 242.

[3] Bose, Nirmal Kumar, *Selections from Gandhi*. P. 215; Young India, 25-9-24, P. 319.

[4] Radhakrishnan, S., *Mahatma Gandhi, Essays and Reflections*, P. 175.

[5] Gandhi, M.K.; *The Story of My Experiments with Truth* Pp. 126, 128; Bose, Nirmal Kumar, Selections from Gandhi, Pp. 248-49.

[6] Gandhi, M. K., *The Story of My Experiments with Truth* P. 129:

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

favour of a vegetarian diet and opposed non-vegetarian food on ethical grounds with the support of his new interpretation, "It does not matter, that animal sacrifice is alleged to find a place in the Vedas. It is enough for us, that such sacrifice cannot stand the fundamental tests of tuth and non-violence."[1] Similarly he throws a new light on the famous ancient Indian dictum, "Satyam bruyat priyam bruyat ne bruyat satyam-priyam". (speak the truth which is acceptable, do not speak unacceptable truth), which is as follows :—

> "In my opinion the Sanskrit text means that one should speak the truth in gentle language. One had better not speak it, if one cannot do so in a gentle way; meaning thereby that there is not truth in a man who cannot control his tougue."[2]

Gandhi Ji was an Indian in its truest sense. He knew India lives in villages and hence wanted to develop village culture in an improved form. He wanted a synthesis of rural and urban life. He was against industrialisation which disturbed the family life and increased unemployment and utilised foreign goods. He was against fashionable dresses which were dragging away the Indian masses from simple living and high thinking. He was a supporter of cottage industries and wanted to develop villages as self-supporting units in all fields. He was a protagonist of wearing of khadi and himself lead a very simple end ascetic life.[3] He was against the education system introduced by the British and wanted a job-oriented education. He was against all hypocrisy and so-called sophisticated behaviour which is the impact of Western influences due to wrong type of education. His views on education are as follows in his own words, "In my opinion the existing system of education is defective,

---

[1] Bose, Nirmal Kumar, *Selections from Gandhi*, P. 238 (685) cf. Regarding Manusmriti in this Context, Gandhi, M. K. *The Story of My Experiments with Truth* (ed. 1963), P. 21.

[2] Ibid. P. 239, Young India, 17-9-25, P. 318.

[3] Radhakrishnan, S; *Mahatma Gandhi, Essays and Reflections*, P. 21.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

apart from its association with an utterly unjust Government, in three most important matters :-

(1) It is based on foreign culture to the almost entire exclusion of indigenous culture,

(2) It ignores the culture of the heart and the hand, and confines itself simply to the head,

(3) Real education is impossible through a foreign medium."[1]

Gandhi Ji strongly opposed some of the defective systems in Indian culture which were introduced into it due to time-factor. He detested child-marriages. Marriage to him was a spiritual union through the physical, the human love being its base. Wife was not a bondslave, but his companion and his helpmate, and equal partner in all his joys and sorrows—as free as the husband to choose her own path.[2] He throws a fresh light and gives a new interpretation to the word 'kanyadan' in these words. "What is kanyadan in the case of little children ? Has a father any rights of property over his children ? He is their protector not owner. And he forfiets the privilege of protecting when he abuses it by seeking to barter away the liberty of the ward."[3] He opposed the Dowry system and supported free marriages by the fundamental right of the free choice of mate.[4] He supported widow remarriage on human grounds claiming, "Widow remarriage is no sin—if it be, it is as much a sin as the marriage of a widower is."[5] Gandhi Ji wanted women to come out of purdah and pleaded higher education for women. He opposed co-education but agreed to it as an experiment.[6] The purpose of education, according to him, was character building : "I would try to develop courage, strength, virtue and ability to

[1] Bose, Nirmal Kumar, *Selections from Gandhi*, P. 251 Also see : गांधी जी, शिक्षा की समस्या (अनु० चौधरी रामनारायण) ed. 1954, Pp. 364-65.

[2] Bose, Nirmal Kumar, *Selections from Gandhi*, P. 242.

[3] Ibid. P. 243.

[4] Ibid. Pp. 244-45.

[5] Ibid. P. 247.

[6] Ibid. P. 248.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

forget oneself in working towards great aims. This is more important than literacy, academic learning is only a means to this greater end."[1]

He wanted higher education to relate to national necessities. His views in this context are worth quoting : "It is my firm conviction that the vast amount of the so-called education in arts, given in our colleges, is sheer waste and has resulted in unemployment among the educated classes. What is more, it has destroyed the health, both mental and physical, of the boys and girls who have the misfortune to go through the grind in our Colleges."[2]

Gandhi Ji's greatness lies in doing what he preached . He worked zealously throughout his life for the improvement and benefit of country. He accepted the greatest shameful truth about himself and tried to improve by accepting his mistakes. A few instances need to be quoted here. The first instance is relating to the death of his father. It was 10-30 or 11 P.M. He was giving the massage to his father who was seriously ill. In the meanwhile his uncle offered to relieve him. He readily agreed, went straight to his bed-room, woke up his wife who was asleep and got engaged in satisfying his lust. After five or six minutes the servant knocked at the door telling him to get up since father was very ill. He sprang out of bed but when he reached his father he was not alive and further in his own words, "I saw that if animal passion had not blinded me, I should have been spared the torture of separation from my father during his last moments. I should have been massaging him, and he would have died in my arms."[3] He also counts when his friend took him to a brothel as he writes, "I sat near the woman on her bed, but I was tongue-tied. She naturally lost patience with me and showed me the door, with abuses and insults. I then felt as though my manhood had been injured, and wished to sink into

[1] Ibid. P. 254.

[2] Ibid. P. 261.

[3] Gandhi, M. K., *The Story of My Experiments with Truth.* (ed. 1963), Pp. 18-19.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

the ground for shame. But I have ever since given thanks to God for having saved me. I can recall four more similar incidents in my life ; and in most of them my good fortune rather than any effort on my part, saved me."[1] Thus Gandhi Ji was a true follower of the Gita's sermon, "Improve self by self and do not give injury to self."[2]

---

[1] Ibid. P. 14.

[2] 'उद्धरेदात्मनात्मानं, नात्मानमवसादयेत् ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा गांधी का समाज-दर्शन

मुकुट बिहारी लाल

महात्मा गांधी मानव अधिकार तथा स्वतन्त्रता संघर्षों के वीर नेता थे। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के मानव अधिकार के संघर्ष का नेतृत्व करने के बाद उन्होंने भारत के स्वतन्त्रता संघर्ष का लगभग २५ वर्ष नेतृत्व किया। वे जो कुछ करना चाहते थे उसे नहीं कर पाये। उनके नेतृत्व में दक्षिण अफ्रीका निवासी भारतीयों को कुछ सफलता जरूर प्राप्त हुई, पर वह अस्थायी सिद्ध हुई। जाति पार्थक्य और प्रभुत्व की भावना से अनुप्राणित गोरों ने गाँधी-स्मट्स समझौते की अवहेलना करते हुए भारतीयों को सम्मानित सुखी जीवन की सुविधाओं से वंचित कर दिया। भारत स्वतन्त्र हुआ और उसकी स्वतन्त्रता में गाँधी जी के नेतृत्व का महत्वपूर्ण योगदान है। पर वे देशबन्धुत्व के सबल आधार पर भारतीय राष्ट्र का निर्माण नहीं कर पाये। साम्प्रदायिक भावनाओं ने संकुचित राष्ट्रीयता का रूप धारण कर देश को दो टुकड़ों में विभाजित कर दिया। देशबन्धुत्व पर आश्रित व्यापक राष्ट्रीय भावना के अभाव के कारण भारतीय संघ साम्प्रदायिकता, जातिवाद तथा क्षेत्रवाद की भावनाओं से ग्रसित है। उनके सपने को पूरा करने के लिए अभी बहुत कुछ करना बाकी है। इसके लिए उनके विचारों और आदेशों का अध्ययन आवश्यक है।

महात्मा गाँधी सत्य के उपासक थे। वे सत्य को ही पारमार्थिक सत्ता समझते थे। उनके विचार में सत्य ही ईश्वर है। वह सर्वव्यापी है, हम सब में है, हमारे चारों ओर है और हमसे परे है। सत्य की आराधना, उसका अनुगमन और प्रसार तथा उसकी प्रतिष्ठा मनुष्य का परम कर्तव्य है। सब क्रिया-कलापों को सत्य पर आधारित और केन्द्रित करना भी वह मनुष्य का कर्तव्य समझते थे। वह सत्य को उन्नति तथा शान्ति का आधार एवं सत्य के परित्याग को मानव और समाज के पतन का मूल कारण समझते थे। सत्य के बिना तो जीवन ही असम्भव है, सत्यविहीन उन्नति का विचार तो केवल विडम्बना है।

सत्य की खोज के लिए गाँधी जी शास्त्रों का अध्ययन कर सकते थे, पर वे अन्तःकरण की पुकार को शब्द प्रमाण से अधिक प्रामाणिक मानते थे और कहते थे कि यदि तर्क द्वारा सत्य का निर्णय न हो सके तो वही सत्य समझना चाहिए कि जिससे मानव के कल्याण की अभिवृद्धि हो। इस तरह उनकी दृष्टि में कल्याण ही सत्य की परख या कसौटी है।

गाँधीजी समाज की भौतिक शक्तियों की वृद्धि से कहीं अधिक मानव की मनोभावनाओं के उत्कर्ष पर जोर देते थे। वे जीवन की आन्तरिक शक्तियों को बाह्य शक्तियों से अधिक बलवती समझते थ। उनका निश्चित मत था कि साधन विहीन निहत्थी जनता भी दृढ़ मनोबल के द्वारा सर्व साधन सम्पन्न साम्राज्यवादी शक्ति से अपनी स्वतन्त्रता के लिए सफल संघर्ष कर सकती है, अपनी दीन-हीन परिस्थिति का परित्याग कर ऊँचा उठ सकती है। वे चाहते थे कि भारतीय दीन हीन भावनाओं का परित्याग कर आशा तथा साहस एवं उत्साह से अनुप्राणित हो राष्ट्रोत्थान का दृढ़ व्रत धारण कर सद्भावना, सद्गुण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

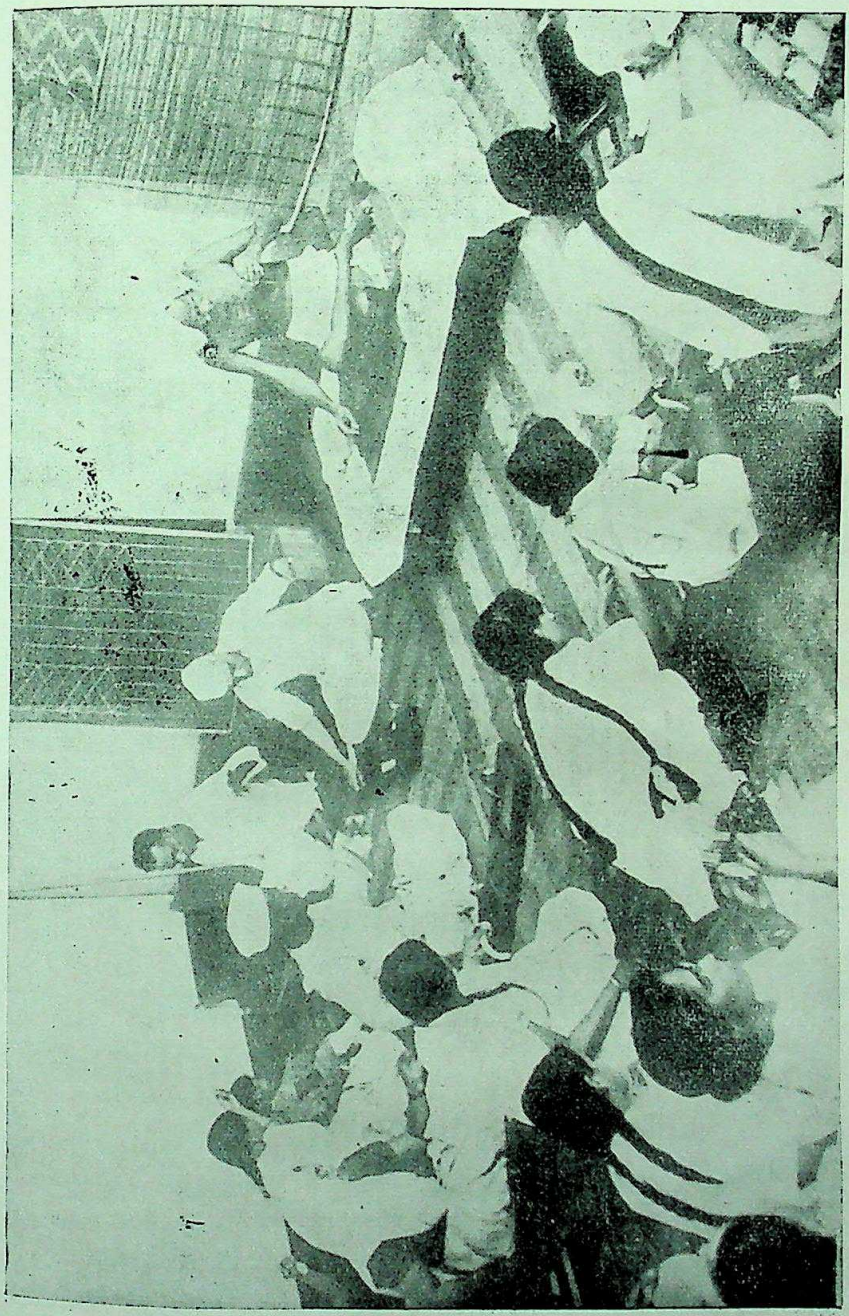

78 वीं वर्षगाँठ के अवसर पर नई दिल्ली स्थित भंगी बस्ती में सामूहिक 'कताई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और विवेक द्वारा स्वतन्त्र, सुखी और सुसंस्कृत समाज का सृजन करें। वे विवेक के महत्व को स्वीकार करते हुए सद्गुण तथा सद्भावना पर अधिक जोर देते थे। उनके सब काम सद्भावना से अनुप्राणित तथा सद्गुणों पर आधृत होते थे। सद्भावनाओं से मानव मात्र के जीवन को अनुप्राणित करना तथा उनमें सद्गुणों का संचार करना गाँधी जी के दो प्रमुख काम थे।

गाँधीजी नैतिक भावना को मानव के मनोबल का मूल आधार समझते थे। उनके विचार में नैतिक तत्व शाश्वत और निर्विकार है तथा उदात्त विकसित नैतिक भावना मानव का विशिष्ट गुण है। नैतिक जीवन ही उत्कृष्ट जीवन है। जीवन में नैतिक गुणों का संचार जीवनोत्कर्ष का साधन है। मानवता ही मानव जीवन का प्राण है। मानव मात्र के प्रति व्यापक सद्भावना उसकी अभिव्यक्ति है। आत्म नियंत्रित व्यक्ति ही सामाजिक क्रान्ति का अग्रदूत हो सकता है।

महात्मा गाँधी व्यक्ति और समाज के घनिष्ठ सम्बन्ध पर जोर देते थे। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक प्रेरणाएँ उसके स्वभाव का बहुमूल्य अंग हैं। समाज की सेवा मानव का परम कर्तव्य है। पर मानव केवल साधन ही नहीं, स्वयं साध्य है। उसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व और अधिकार है। उसके मान मर्यादा की रक्षा तथा उसके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता मानव-विकास के लिए परम आवश्यक है। व्यक्ति और समाज की मर्यादाओं का सामंजस्य तथा दोनों का सहयोगपूर्ण विकास मानव कल्याण के लिए आवश्यक है। गाँधी जी कहते थे कि "राष्ट्र के सम्बन्धित व्यक्तियों की प्रगति के बिना राष्ट्र की प्रगति असम्भव है," और" राष्ट्र की प्रगति के बिना व्यक्तियों की प्रगति भी असम्भव है।"

गाँधीजी का अहिंसा पर पूर्ण विश्वास था। वे सत्य और अहिंसा को एक सिक्के के दो पहलू समझते थे। उनके विचार में अहिंसा द्वारा ही सत्य की सिद्धि तथा जगत् में उसकी अभिवृद्धि सम्भव है। वे अहिंसा को पाशविक शक्ति से अधिक बलवती समझते थे। वे स्वीकार करते थे कि जगत् में हिंसा फैली हुई है, पर कहते थे कि विनाशकारी हिंसा के मध्य में जीवन का अस्तित्व बना है अतः अहिंसा का विधान हिंसा से ऊँचा है। वे अहिंसा को ही मानव स्वभाव तथा मानव जाति का आधारभूत नियम मानते थे और उसे मानव का परम कर्तव्य समझते थे। उनके विचार में अहिंसा पर आधृत निर्माण ही स्थायी हो सकता है।

गांधीजी साधन और साध्य के घनिष्ठ संबंध पर विश्वास करते थे। मानवोचित साधनों द्वारा ही शुभ साध्य की सिद्धि हो सकती है। अमानुषिक तथा अनैतिक उपायों द्वारा एक सुन्दर साध्य का सृजन नहीं हो सकता। उनके विचारों में साधनों की क्षमता तथा शुचिता पर ध्यान देना साध्य की चिन्ता से अधिक आवश्यक है।

गांधीजी का जीवन रचना तथा संघर्ष का अद्भुत समन्वय था। उनके विचार में वही संघर्ष सात्विक और सर्वोत्तम है जो न्याय से प्रेरित, सत्य और निष्ठा से विभूषित, मानवता की भावना से अनुप्राणित दम्भ-द्वेष से रहित, अहिंसा से संचालित हो तथा सत्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्रतिष्ठा ही जिसका लक्ष्य हो। वे उत्कर्ष और रचना को ही परिश्रम का उद्देश्य मानते थे, रचना से अनुप्राणित संघर्ष को ही समाज के सदुद्देश्य का साधन समझते थे तथा रचना की भावना से विहीन संघर्ष को विनाशकारी करार देते थे। दीनों के हितों की अभिवृद्धि उनकी दृष्टि में रचनात्मक कार्यों की परख थी। सबका उदय उनकी रचना का मूल मंत्र था।

इन उद्देश्यों की सिद्धि के लिए उन्होंने सत्याग्रह-अस्त्र का निर्माण किया। हर परिस्थिति में सत्य पर आग्रह उसका मूल मंत्र है, अहिंसा उसकी विशिष्ट शक्ति है, रचना और संघर्ष उनके दो उपकरण हैं, विरोधियों के प्रति भी प्रेम और सद्भावना उसकी विशिष्ट नैतिक भावनाएँ हैं। रचना और संघर्ष दोनों ही सत्याग्रह के अंग हैं। एक सच्चा सत्याग्रही इन दोनों में से किसी की भी उपेक्षा नहीं कर सकता।

गांधीजी राष्ट्रवादी थे। राष्ट्रीय स्वतंत्रता की उपलब्धि तथा भारतीय राष्ट्र का सुन्दर संगठन उनके जीवन के महान् लक्ष्य थे। गांधीजी धार्मिक पुरुष थे, धर्म के प्रति उनकी विशेष आस्था थी। पर वह धर्म या सम्प्रदाय को राष्ट्र का आधार नहीं मानते थे। वह भाषा, क्षेत्र तथा जातिवाद की संकुचित भावनाओं को भी राष्ट्रीय भावना की मान्यता प्रदान करने को तैयार नहीं थे। देशबन्धुत्व ही उनकी राष्ट्रीयता का आधार था। उनके विचार में राष्ट्र एक सांस्कृतिक समुदाय है, जिसमें विभिन्न भाषा, सम्प्रदाय तथा वंश एवं जाति से सम्बधित देशवासी देशबन्धुत्व की भावना से अनुप्राणित हो स्वतंत्र सामुदायिक जीवन व्यतीत करते हैं। स्वतंत्रता, देशबन्धुत्व की भावना, समता, न्याय, विभिन्न समुदायों में सद्भावना, देश-सेवा तथा सबके व्यक्तित्व, हितों और अधिकारों की निष्पक्ष मान्यता और रक्षा गांधी जी की राष्ट्रीयता के मूल सिद्धान्त थे। वे मानवता-विरोधी आक्रमणशील राष्ट्रीयता के भी विरोधी थे। उनकी राष्ट्रीयता व्यापक मानवीय भावना से अनुप्राणित थी। वे राष्ट्र को बृहद् मानव समाज का अंग मानते थे। मानव मात्र की सेवा प्रत्येक मानव का कर्तव्य समझते थे। उनका कहना था कि राष्ट्र की सेवा विश्व की सेवा का अंग है। इस तरह इस संबंध में गांधी जी के विचार जिन्ना, हिटलर, मुसोलिनी तथा स्टालिन के विचारों के विपरीत तथा मेजनी के विचारों से मिलते थे।

गांधीजी विकेन्द्रित आर्थिक व्यवस्था के समर्थक थे। वे उत्पादन के साधनों तथा राष्ट्र की सम्पत्ति एवं आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण के विरोधी थे। वे तो उत्पादन के साधनों का यथासम्भव ऐसा व्यापक वितरण चाहते थे जिससे पूँजीपतियों के शोषण और आधिपत्य के बिना श्रमिक जनता स्वतंत्र सहयोग के आधार पर जीवन की आवश्यकताओं का उत्पादन कर सके।

वे श्रम को मानव का स्वभाव और कर्तव्य समझते थे। संस्कृति और श्रम के समन्वय पर उनका दृढ़ विश्वास था। श्रमिकों को सांस्कृतिक उत्थान की सुविधाएँ प्राप्त हों, सांस्कृतिक कार्यों में संलग्न व्यक्ति भी समाजोपयोगी श्रम करें। तभी दोनों का पार्थक्य दूर हो सकता है, समाज में सौहार्द प्रतिष्ठित हो सकता है, मानव का सर्वांगीण विकास हो सकता है। वे मानव श्रम का आदर मानव व्यक्तित्व के आदर के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक समझते थे। समाज में अधिकांश जनता की सर्जनात्मक शक्ति की अभिव्यक्ति शारीरिक श्रम द्वारा ही होती है उनके श्रम का आदर करके ही उनके व्यक्तित्व का आदर हो सकता है। मानव श्रम को हीन समझने की बजाय उसे अधिक सृजनात्मक और कौशल सम्पन्न बनाने में ही मानव समाज का कल्याण है।

गांधीजी सर्जनात्मक शक्ति के विकास के लिए बड़ी-बड़ी मशीनों का प्रयोग जरूरी नहीं समझते थे। उनका विचार था कि इन मशीनों के द्वारा श्रम की बचत हो सकती है, थोड़े से श्रम से विपुल सम्पत्ति का उत्पादन किया जा सकता है, पर इनके द्वारा श्रमिकों की सृजनात्मक शक्ति का विकास नहीं होता, उनका जीवन मशीन का पुर्जा बन जाता है, उनके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं हो पाती। बड़े-बड़े कल-कारखानों द्वारा एक ओर आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण होता है और दूसरी ओर बेकारी की समस्या उठ खड़ी होती है। इसलिए बड़ी-बड़ी मशीनों द्वारा बड़े-बड़े कल-कारखानों को बनाने की बजाय लघु तथा मध्यम शिल्प विधियों द्वारा जीवनोपयोगी सामग्रियों का उत्पादन किया जाय। इन लघु और मध्यम उद्योगों को सुचारु रूप से चलाने के लिए सहकारिता के आधार पर उनका संगठन किया जाय तथा ऐसी शिल्प विधियों तथा यंत्रों का आविष्कार किया जाय, जिनसे इन उद्योगों की उत्पादन शक्ति की वृद्धि हो। इन उद्योगों में विद्युत शक्ति द्वारा संचालित शिल्प विधियों और यंत्रों का प्रयोग गाँधी जी उचित समझते थे। वे सहकारिता पर जोर देते थे। उनका विचार था कि सहकारिता के आधार पर ही इन उद्योगों का अच्छा संगठन हो सकता है। उत्पादक जनता बृहद् उद्योगों की बहुत-सी आर्थिक किफायतों से लाभान्वित हो सकती है। बिजली के कल-कारखानों द्वारा उत्पादकों का शोषण न हो, इसलिए वह इन कारखानों के समाजीकरण के पक्ष में थे। गाँधी जी स्वीकार करते थे कि आज के युग में बृहदाकार शिल्प विधियों और मशीनों का सर्वथा परित्याग नामुमकिन है। बहुत से सार्वजनिक उपयोगिता के उद्योगों को बड़ी-बड़ी मशीनों द्वारा संचालित करना होगा। वे इन उद्योगों के भी समाजीकरण के पक्ष में थे।

जब सन् १९३४ में कांग्रेस से संबंधित एक दल ने समाजवाद का नारा लगाया, तब गाँधी जी ने उसके विकल्प में ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। उन्होंने कहा कि यदि जमींदार और पूँजीपति अपने को बड़ी-बड़ी जमींदारियों और कल-कारखानों का मालिक समझने के बजाय किसानों तथा श्रमिकों के हित में उनका ट्रस्टी समझने लगें तो फिर समाजीकरण की कोई आवश्यकता नहीं है और वे समाजवाद का विरोध करने को तैयार हैं। पर जब जमींदार और पूँजीपति अपने मिलकियत के अधिकारों को ट्रस्टी अर्थात् संरक्षण के कर्तव्य में बदलने को तैयार नहीं हुए, तब उन्होंने सन् १९४२ में अमरीका के प्रसिद्ध पत्रकार लूई फिशर से कहा कि बिना मुआवज के जमींदारी का खत्म करना ही ठीक है तथा सन् १९४६ के बाद वे समाजवाद का समर्थन करने लगे। उनका यह भी कहना था कि समाजवाद सत्याग्रह जैसे शुद्ध तथा अहिंसात्मक उपकरण द्वारा ही प्रतिष्ठित हो सकता है और समाजवादियों को समाजवाद के सिद्धान्तों के आधार पर नये समाजवादी समाज के निर्माण का प्रयत्न करने के साथ-साथ उनके आधार पर अपने जीवन का भी नव-निर्माण करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाँधीजी की विचार सरणि में ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनका निश्चित मत था कि कोई भी सामाजिक या आर्थिक व्यवस्था जनता के लिए हितकारी नहीं हो सकती, जब तक कि उससे संबंधित व्यक्ति ट्रस्टीशिप की भावना से अनुप्राणित न हो।

गाँधीजी समान वितरण को आदर्श तथा सम्यक् वितरण को व्यावहारिक मानते थे। उनके विचार में जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति सबका समान अधिकार है। सबके लिए उसका प्रबन्ध समाज का प्राथमिक कर्तव्य है, उसकी पूर्ति के निमित्त श्रम की व्यवस्था राष्ट्र का उत्तरदायित्व है। दूसरी तरफ व्यक्तियों का भी कर्तव्य है कि वे अपने श्रम से शक्ति भर समाज के भंडार को परिपूर्ण करें, उसे समृद्ध करें। उनका कहना था कि जो व्यक्ति अपने इस श्रम सम्बन्धी कर्तव्य का पालन नहीं करता, उसके साथ समाज असहयोग कर सकता है। मौजूदा समाज की कृत्रिम असमानताओं को दूर करने के लिए गाँधी जी का सुझाव था कि सत्ताधारी वर्ग के विशेषाधिकारों और दावों को इस तरह कम किया जाय कि विभिन्न वर्ग और समुदाय समानता की अवस्था को प्राप्त कर सकें।

गाँधीजी वर्ग-विहीन तथा जाति-विहीन समाज के समर्थक थे। वह जातिवाद तथा ऊँच-नीच की भावनाओं को भारतीय समाज की प्रगति के लिए घातक समझते थे। उनके विचार में इन भावनाओं ने हिन्दु समाज को विषाक्त कर दिया है और उनका परित्याग करके ही हिन्दु समाज और भारतीय राष्ट्र को सबल और स्वस्थ बनाया जा सकता है। वह अस्पृश्यता की भावना तथा हरिजनों के प्रति अमानुषिक व्यवहार को एवं पार्थक्य की प्रथा को मानव के प्रति जघन्य अपराध समझते थे। उनकी सेवा द्वारा इस पाप का प्रायश्चित्त करते हुए समाज में उनका समान सम्मानित स्थान स्वीकार करना तथा जीवन के उत्कर्ष के निमित्त उनके लिए विशेष सुविधाओं का प्रबन्ध करना वे सुविधा सम्पन्न समुदाय का परम कर्तव्य समझते थे।

गाँधीजी राज्य-विहीन समाज के समर्थक थे और इस अर्थ में वे अराजकतावादी थे। पर उनकी अराजकता का हिंसा से परिपूर्ण उस ध्वंसात्मक अराजकता से कोई सम्बन्ध नहीं था, जिसका एकमात्र लक्ष्य येन केन प्रकारेण सब सामाजिक मान्यताओं और सम्बन्धों को नष्ट-भ्रष्ट करना ही है। वे अहंकार पर आश्रित अराजकतावाद के भी विरोधी थे। वे मनुष्य को सामाजिक प्राणी मानते थे, जीवन में सामाजिक सहकार के महत्व को स्वीकार करते थे, पारस्परिक सहकार की प्रवृत्ति को मानव प्रकृति का महत्वपूर्ण अंग मानते थे तथा स्वतन्त्र सहकार द्वारा मानव की सामाजिक प्रेरणाओं का विकास मानव व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक समझते थे। वे स्वतन्त्र सहयोग पर आश्रित सामाजिक अराजकता के पोषक थे। इन सब बातों में गाँधी जी के विचार बहुत कुछ प्रिंस क्रोपाटकिन के विचारों से मिलते थे। पर इन दोनों के दृष्टिकोण में कई मौलिक भेद थे। प्रिंस क्रोपाटकिन भौतिकवादी थे। वे राज्य के साथ-साथ ईश्वर के अधिकार को भी अस्वीकार करते थे, जब कि महात्मा गाँधी का दृष्टिकोण आध्यात्मिक था, उनकी धर्म पर निष्ठा थी, वे नित्य प्रातःकाल और सायंकाल ईश्वर की प्रार्थना तथा उपासना करते थे और दूसरे कामों में व्यस्त रहते हुए भी ईश्वर (राम) का स्मरण करते रहते थे, गो वे भी शास्त्रों के शब्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण से अन्तःकरण को अधिक प्रामाणिक मानते थे, बृहद् धार्मिक संस्थाओं और संस्कारों में उनकी कोई विशेष आस्था नहीं थी और वे उन सब प्रथाओं को नामंजूर करते थे, जो मानव के स्वतन्त्र सहकार और विकास में बाधक हों। इस सब बातों में उनके विचार लियो टालस्टाय से मिलते थे। जर्मनी के प्रसिद्ध मार्क्सवादी विद्वान् कार्लकाउट्स्की का विचार था कि राज्यविहीन समाज उस समय स्थापित होगा कि जब समाज की सामुदायिक शक्ति इतनी प्रबल हो जायगी कि राज्य की दमन शक्ति के बिना ही व्यक्ति समाज का अनुसरण करने लगेगा। पर गाँधीजी इस बात को नहीं मानते थे। उनके विचार में राज्यविहीन समाज तभी स्थापित हो सकेगा, जब मानव आत्म-नियंत्रित हो जायगा और उसकी प्राकृतिक सामाजिक प्रेरणाएँ इतनी पुष्ट और विकसित हो जायेंगी कि स्वतन्त्र सामाजिक सहकार और स्वस्थ सामाजिक व्यवहार उसका सहज स्वभाव बन जायगा। इस तरह वे राज्यविहीन समाज की स्थापना के लिए मानव की सहज सामाजिक प्रवृत्तियों के विकास तथा आत्मनियंत्रण की पुष्टि पर जोर देते थे। वे इसके लिए राजनीतिक स्वराज्य के साथ-साथ सामाजिक और आर्थिक स्वराज्य भी आवश्यक समझते थे। इसलिए उन्होंने राजनीतिक स्वतन्त्रता मिल जाने के बाद आर्थिक और सामाजिक स्वराज्य की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया, उनकी उपलब्धि के लिए सतत प्रयत्न करना हमारा कर्तव्य बताया। निःसंदेह राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्वतन्त्रता की परिस्थिति में सुदृढ़ आत्म-नियंत्रण तथा सुविकसित सहज सामाजिक प्रेरणाओं के आश्रय से स्वतन्त्रता, समता, मानव-बन्धुत्व और सहकार के आधार पर वे जातिविहीन, वर्गविहीन और राज्यविहीन समाज को प्रतिष्ठित करना चाहते थे।

जब तक ऐसा समाज प्रतिष्ठित नहीं होता, तब तक विकेन्द्रित लोकतांत्रिक राज्य को मान्यता प्रदान करते हुए, स्वस्थ लोकतांत्रिक मर्यादाओं और मान्यताओं को सार्वजनिक जीवन में पुष्ट करते हुए गाँधी जी स्वतन्त्र सहकारी प्रयत्नों द्वारा आर्थिक और सामाजिक स्वतन्त्रता की सीमाओं का विस्तार करते हुए अपने सामाजिक लक्ष्य की ओर बढ़ना चाहते थ।

सत्य, अहिंसा, आत्म-नियंत्रण, आत्मोत्कर्ष, आत्माभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, मानवमात्र की एकता और समता, देशबन्धुत्व पर आश्रित उदार राष्ट्रीयता, मानव व्यक्तित्व तथा मानव श्रम का आदर, श्रम और संस्कृति का सामंजस्य, जीविका का अधिकार तथा समाजोपयोगी श्रम का कर्तव्य, सर्वोदय की भावना से प्रेरित स्वतन्त्र सहकार पर आश्रित आर्थिक व्यवस्था, मुनाफे के बजाय जन-कल्याण और उपयोग के लिए उत्पादन, कर्तव्यपरायणता, लोक-सेवा, सबसे सौजन्य सौहार्दपूर्ण व्यवहार, सहज सामाजिक प्रेरणाओं पर आश्रित स्वतन्त्र सहकार द्वारा सब सार्वजनिक कार्यों का संचालन, दण्ड पर आश्रित राज्य का विलय गाँधी के मूल सामाजिक सिद्धान्त थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

MAHATMA GANDHI AS INCARNATION

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PREM SHANKAR DUBE,

Although now a days the matter of rebirth and incarnation is under debate and nothing can be said to exactness. However, my personal belief is that there is one supreme God who regulates us, and besides this, whenever the chances so demand. He comes to this earth to wipe out the evils crept in the society. It was perhaps this sort of thing when Rama, Krishna, Buddha took birth and lastly Gandhi came. Gandhi rid us of slavery from the hands of Britishers. Not only this, at that time in the country so many evils had crept in. Gandhiji observed them all and in order to free men from these troubles he took the help of ethics and the guiding principles of humanity and Hinduism, of not inflicting pain on others, in accordance with the teachings of Ishopanishad.

इशा वास्यं इदं सर्वम् यत् किञ्चजगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥—Ishopanishad-1.

and simply propagated the spirits of the sages for the benefit of the mankind. As it is usually happening or has happened that there was a vast difference in actions and statements, Gandhiji instead eliminated it and practised what he said.

Gandhiji was an inveterate experimenter of the truth and even at the cost of appearing to be inconsistent, would always say only that which appeared to him as the truth at a given moment. He made truth his life long companion and sole guide.

He claimed only to follow and represent the truth as he realised it. He made it clear times without number that he represented no new facts and truths and hence had no new beliefs to offer. All that he claimed was that he threw new light on many old facts and truth. And with that too he laid down necessary precondition, viz, that no one need follow it (my advice), unless it appeals to his head and heart. No one who has the honest inner call need be deterred from obeying it because of my advice. In other words, it appeals only to those who are not conscious of any inner call and who have faith in my riper experience and soundness of judgement.

He repudiated all suggestions that it was ever his intention to found a sect. In fact, he was against all sectarianism.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

He said, "Let no one say that he is a follower of Gandhi. It is enough that I should be my own follower. I know what an inadequate follower I am of myself, for I can not live up in the convictions, I stand for." He cautioned the workers of Gandhi Seva Sangh against the danger of their organisation deteriorating in to a sect. Fearing that they may, after his death, seek guidance from his writtings, he advised them to cremate his writings with his body, because he said, "What I have done will endure not what I have said and written." This accent on practice rather than precept breathes through all that Gandhiji said or did. He held that the best means of propogating what was called 'Gandhian Ideology' was not to preach it through books and newspapers, but to live according to the principles of truth and non-violence advocated by him.

He described those who agreed with his way of thinking and ideals his "fellow students, fellow pilgrims, fellow workers" and not as his followers. In fact, with his essential humility, he never arrogated any superiority to his persons. He said, "Cleave not to my name but cleave to the principles, measure every one of your activities by that standard and face fearlessly every problem that arises." Even to those who chose to follow his ideology, his advice was that the highest honour they could do him was to enforce in their lives the programme he stood for or to resist him to the utmost if they did not believe in it.

All his life, Gandhiji claimed to have been growing from truth to truth, and that is what he wanted those who had affinity of thought with him to do, not by reading what he had written, nor by hearing what he had said, but by actual experience. He never made a conscious effort to appear consistent, and never tried to blind down his followers to a set ideological pattern. He was against all isms and dogma, and wanted every one to work for his own salvation, according to his own lights, because he knew that the noblest ideal can survive only if it is sustained by the inner strength.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मनः गान्धिनोऽहिंसादर्शनम्

उदयचन्द्रो जैनः

प्राध्यापकः, प्राच्यविद्या एवं धर्मविज्ञानसंकायः, का० हि० वि० वि०

प्रत्येकस्मिन् भारतीयधर्मेऽहिंसाया उच्चस्थानमस्ति। संसारेऽस्मिन् यावन्तः महापुरुषाः संजातास्तैः सर्वैः स्वजीवने अहिंसायै सर्वाधिकं महत्त्वं प्रदत्तं तथा संसारस्य कल्याणाय अहिंसैव एको मार्गः ख्यापितः। यद्यस्मिन् संसारे सुखस्य शान्तेश्च साम्राज्यं स्थापितुं शक्यं स्यात्तर्हि अहिंसाद्वारैव तत्संभवति, न कदापि हिंसया। सार्वत्रिकसार्वकालिकसम्पूर्णसमस्यानामेकमात्रसमाधानमहिंसैव। प्रसंगेऽस्मिन् दृष्टव्यमिदमस्ति यद् गान्धिनोऽहिंसामार्गे का वा नवीनता प्रतिभाति। वयं पश्यामो यद्गान्धिमहोदयेन राजनैतिकक्षेत्रेऽहिंसामनुसृत्य विश्वस्मिन् चमत्कारः प्रदर्शितः। वस्तुतस्तेन महात्मना राजनैतिकक्षेत्रेऽहिंसायाः सफलतापूर्वकमुपयोगं कृत्वा संसारसमक्षमहिंसाया महती शक्तिरुद्घाटिता। तस्या हिंसाविषयकचिन्तनं गंभीरमासीत्, तस्य प्रयोगस्य विधिश्चापूर्वोऽभवत्। अस्मिन् युगे विश्वशान्त्यर्थमहिंसाया या चर्चा भवति तस्या मुख्यकारणं गान्धिनोऽहिंसादर्शनमेवास्ति।

अहिंसा असहयोगश्च

राजनैतिकविचारधारायामहिंसात्मकोऽसहयोगः गान्धिना प्रदत्तोऽस्ति। गान्धिनो मान्यताऽस्ति यत् पवित्रलक्ष्यमिव तत्प्राप्तिसाधनमपि पवित्रतमं स्यात्। यदा हि तेन अहिंसात्मकोऽसहयोगो घोषितस्तदा एतादृशस्यास्त्रस्य प्रयोगः कृतो यो देशवासिनां स्थितेः प्रकृतेश्चानुकूल आसीत्, येन च विरोधिनः किंकर्तव्यविमूढाः संजाताः। आसीद् गान्धिनो विश्वासो यदहिंसात्मकासहयोगेन मनुष्यो न्यायसंगतमुचितं च स्वलक्ष्यं प्राप्तुं प्रभवति। अहिंसात्मकासहयोगस्यैव द्वितीयं नाम सत्याग्रहो विद्यते। सत्याग्रहोऽहिंसात्मकः प्रतिरोधोऽस्ति। तेन हि महात्मना अहिंसात्मकः प्रतिरोधो नागरिकस्य मुख्याधिकारः स्वीकृतः। अहिंसा सत्याग्रहस्यावश्यकमङ्गमस्ति। सत्याग्रहस्योद्देश्यो विरोधिनो हृदयपरिवर्तनं तस्मिन् न्यायभावनायाः जागरणं च विज्ञेयम्। अत्रासहयोगादहिंसाया महत्त्वमधिकमस्ति। अहिंसां विना असहयोगः पापरूपो भविष्यति।

अहिंसा तथा हिंसा

हिंसाशक्तेस्त्यागो नाम अहिंसा। यस्मिन् हिंसाशक्तिर्नविद्यते सोऽहिंसको भवितुं नार्हति। 'न मारणमहिंसा' इत्यहिंसाया अर्थं यः प्रतिपादयति सोऽहिंसायाः प्रथमं पाठमपि न जानाति। अहिंसायां प्राणिघातेच्छा न जायते, तस्यानिष्टेच्छापि न भवति। अहिंसायां चित्तवृत्तीनां निरोधो भवति। तत्राद्वेषस्य समावेशः सुतरामेव समायाति। अहिंसा एका प्रचण्डशक्तिरस्ति। शास्त्रकारैरहिंसाया यः परिणामः प्रकटीकृतो यदि स सत्योऽस्ति तर्हि अहिंसायाः सान्निध्ये वैरमात्रं विलयं यातु। यथार्थरूपेणाहिंसकः कस्मिन्नपि क्रोधं न करिष्यति, द्वेषमपि न करिष्यति। कस्यापि घातस्य नाम हिंसा नास्ति। हिंसा सा भवति यत्र कंचनं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणिनं प्रति क्रोधः संजायते। तत्रापि च तस्यानिष्टभावना कृता स्यात्। असत्यवचनमपि हिंसैव। हिंसायाः योजना पाशविकयोजनास्ति। तस्यां पाशविकता निहिताऽस्ति। यदा कदा अहिंसापरिपालनाय घातस्याप्यावश्यकता भवति। अतः परिस्थित्यनुसारेण हिंसायामप्यसिंहा वरीवर्ति।

अहिंसा तथा युद्धम्

अहिंसायाः शिक्षा कस्मै प्रदातव्या। यो हिंसां न जानाति सोऽहिंसापालनं किं करिष्यति। मूको मौनव्रतस्य महत्त्वं किं ज्ञास्यति। अनेकवर्षेभ्योऽस्मासु युद्धस्य या शक्तिर्विनिर्गता, यदर्थमस्माकं ऋषयो मुनयश्च तपोऽकुर्वन्, शस्त्रास्त्रप्राप्त्यर्थं च गंभीराः प्रतिज्ञाः गृहीतवन्तः, वयमिच्छामो यत्सा शक्तिरस्मासु पुनरायातु। स्त्रीषु पुरुषेषु च मनुष्यता आगच्छतु, शौर्यं चायातु। मम विचारेऽहिंसापरिज्ञानार्थं शारीरिकशक्तेः पूर्णविकासोऽनिवार्योऽस्ति। यदाऽहं प्रत्येकभारतीयजनं प्रति सेनाप्रवेशार्थं कथयामि तदेदमपि प्रकटीकरोमि यद् ये सेनायां प्रविष्टा भवन्ति न ते रुधिरस्य पिपासां शान्त्यर्थं किन्तु मृत्योर्भयं न स्यादिति शिक्षार्थमेव। येन सम्यक्रूपेण मरणं विज्ञातं तेन स्वजीवनं सफलीकृतम्। येन मरणस्य कलाज्ञानं प्राप्तं तेन स्वतंत्रताज्ञानं लब्धम्। स एव च यथार्थमुक्तदशायां स्थातुं शक्नोति। अपवादस्वरूपपरिस्थित्यामवश्यकतानुसारं युद्धस्याश्रयणं स्वीक्रियते। किन्तु यदि हेतुः शुद्धोऽस्ति तर्हि युद्धमपि मानवजातेः कल्याणार्थं परिवर्तितुं शक्नुयात्। इदं स्पष्टं वर्तते यद् यस्मान्मारणशक्तिर्विनिर्गता सोऽहिंसाया आचरणं कर्तुं न शक्नोति। अस्माकं बालकैः शारीरिकदृष्ट्या बलवद्भिः भवितव्यम्। यदि ते हिंसावृत्तिं सर्वथा त्यक्तुमसमर्थाः स्युस्तर्हि हिंसां कारयित्वा युद्धस्य शक्तेरुपयोगद्वारा ते अहिंसका भवितुमर्हाः। तदुक्तं भर्तृहरिणा—"असत्ये वर्त्मनि स्थित्वा ततः सत्यं समीहते"। जीवनपर्यन्तमहं केनापि सह हिंसकं युद्धं नाकरवम्। अहमाङ्गलदेशीयैः सहापि हिंसकं युद्धं कर्तुं न शक्नोमि। अहिंसको भूत्वाहमनेकेषामाङ्गलदेशीयानां हृदयपरिवर्तनं कृतवान्।

अहिंसा तथा कायरता

अहिंसायाः कायरतायाश्च पृथक् पृथक् सत्ताऽस्ति। अहिंसायामुच्चप्रकारकः त्यागो निहितोऽस्ति। कापुरुषः त्यागस्येदं भव्यमाचरणं कर्तुं न क्षमो भवति। यथा मूषकविषये कथनमिदं न युक्तिसंगतं यत्तेन मार्जारमारणशक्तेस्त्यागो विहितः। कापुरुषोऽहिंसां कथमपि ज्ञातुं न शक्तः। कायरता कदापि धर्मो भवितुं नार्हति। संसारेऽस्मिन् असेः स्थानमवश्यमेव वर्तते किन्तु कायरतायाः स्थानं लेशमात्रमपि नास्ति। आत्मबलसमक्षमसिबलं तृणवत् विज्ञेयम्। अहिंसा आत्मनो बलमस्ति। असिः शरीरस्य बलं विद्यते। असेरुपयोगद्वारा आत्मा शरीरवद्भवति। अहिंसाया उपयोगद्वारा चात्मवद्भवति। शौर्यस्यात्यन्तिकताया एव द्वितीयं नाम अहिंसा वर्तते। निर्भयतायामेव चाहिंसा संभवति। योऽत्यन्तशूरः स एव निर्भयो भवितुमर्हति।

अहिंसा परमो धर्मः

अहिंसाया अध्ययनं कृत्वा मया योऽनुभवः प्राप्तस्तेनाहं वक्तुं शक्नोमि यदहिंसा सर्वश्रेष्ठा शक्तिरस्ति। सार्वजनिकं वैयक्तिकं वा किमपि क्षेत्रमेतादृशं नास्ति यत्राहिंसाशक्तेः प्रयोगो भवितुमशक्यः। अहिंसां विहायान्यः कोऽपि धर्मो प्रतीतो न भवति। ममेयं श्रद्धा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तते यदहिंसायाः सर्वदा विजयोऽस्ति। मम मान्यतानुसारेण भारतदेशः पाश्चात्यानहिंसां शिक्षयितुं प्रभविष्यति। सहिष्णुता अहिंसाया एव एको भागोऽस्ति। सहिष्णुतां विना जीवनमेकमपि दिनं चलितुं न शक्नोति। अहं वाञ्छामि यद् भवद्भिरयमुत्तमः औषधिः सेवितव्यः। अहिंसायां प्रेमापि विद्यते। अहिंसैव जीवनस्याधारोऽस्ति। अहिंसायाः परिणामं शक्तिं च कोऽपि न जानाति। प्रत्येकस्य मतस्य धर्मग्रन्थेषु अहिंसोपदेशः प्रचुरमात्रायां वर्तते। मया अहिंसाकार्यक्रमः देशसमक्षं प्रस्तुतः। अस्येदं कारणं विज्ञेयं यन्मया अहिंसा धर्मरूपेण स्वीकृता। अहिंसाधर्मः कथमस्तीतिज्ञानार्थं सृष्टिः दृष्टव्या। यदि सृष्टौ नाशकप्रवृत्तेरेव प्रधानता स्यात्तर्हि कोऽपि प्राणी जीवितो न भवेत्। सृष्टेः प्रवृत्तिः पोषकाऽस्ति पोषकप्रवृत्तेश्च मूलं शान्तिरहिंसा च वर्तते। नाशकप्रवृत्तिरपि सृष्टौ विद्यते किन्तु सा क्षणिकाऽस्ति। पोषकप्रवृत्तिरेव शाश्वतिका प्रतिभाति।

क्षमा वीरस्य भूषणम्

महाभारते कथितमस्ति—'क्षमा वीरस्य भूषणम्।' अहिंसा क्षमा वा वीरताया लक्षणं विज्ञेयम्। अहिंसाया उपदेशः क्षत्रियैः क्षत्रियेभ्यो दत्तः। अहिंसा निर्बलानां कापुरुषाणां वा धर्मो नास्ति, किन्तु वीराणामेव धर्मः। यत्राहिंसा वर्तते तत्र महद्बलं धैर्यं चास्ति। मया असकृदुक्तं यदहिंसा क्षमा वा वीरस्य लक्षणं भूषणं वा विज्ञेयम्।

अहिंसाया महत्त्वम्

ईदृशोऽमूल्योऽहिंसाधर्मो मया शब्दैः प्रतिपादितुमशक्यः। अस्यानुभवस्त्वाचरणद्वारैव प्राप्तुं शक्यः। मम विश्वासोऽस्ति यदहिंसामार्गे गच्छतो नरस्य सर्वैः प्रकारैः कुशलोऽस्ति। यद्येकोऽपि नरोऽहिंसामयं जीवनं पूर्णरूपेणावलम्बितुं प्रस्तुतो भवति तदा स संसारं वशीकर्तुं प्रभवति। अहिंसाया मूर्तेः समक्षं सर्पोऽपि स्तब्धो भवति। हिंसाकरणं त्वस्माकमन्तःकरणे निवसतः पशोः स्वभावोऽस्ति। अतः प्रत्येकेन नरेण हृदि निवसतः पशोरुपरि जयं कृत्वा आत्मनो जीवितार्थं प्रयत्नः करणीयः। यत्र दया नास्ति तत्राहिंसापि नास्ति। योऽहिंसायां कार्यसमाप्तिपर्यन्तं दृढो भवति सोऽवश्यमेव विजयी भविष्यति। अहिंसा एकं महाव्रतमस्ति। अहिंसायां मम महती श्रद्धा वर्तते।

इत्यवंप्रकारेण गान्धिसाहित्यस्याध्ययनं कृत्वा अत्र गान्धिनोऽहिंसाविषयककतिपय-विचाराः संकलिताः। आवश्यकमिदं यदस्माभिः गान्धिजन्मशताब्दीवर्षसन्दर्भे गान्धिनोऽहिंसा-दर्शनस्य चिन्तनं यथाशक्ति परिपालनं चावश्यमेव करणीयम्।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा गांधी : भारतीय क्रान्ति का परिवर्तित रूप

महेन्द्र प्रताप सिंह

निःसन्देह भगवान् बुद्ध के बाद महात्मा गांधी का स्थान इतिहास में सुरक्षित है। ढाई हजार वर्षों के बीच दो महापुरुषों का आविर्भाव भारतीय इतिहास की दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं बहुचर्चित घटनायें हैं। बुद्ध के समान गांधी ने भी अपने युग को एक नयी दिशा प्रदान की। अपने बहुमुखी क्रिया-कलापों से उन्होंने अपने समय को इतना अधिक प्रभावित किया कि उसका नामकरण उन्हीं के नाम पर 'गांधी-युग' चल पड़ा। बुद्ध अवतरण एवं उनका सन्देश अपने में एक क्रान्ति है। गांधी का दलित मानव की स्वतंत्रता के लिए 'सत्याग्रह' एक प्रतिक्रान्ति है। बुद्ध ने जहाँ मनुष्य मात्र को बौद्धिक एवं चिन्तन की स्वतंत्रता प्रदान की, वहीं गांधी ने साम्राज्यवादी दासता से कोटिशः मानवों को मुक्ति का सन्देश दिया। बुद्ध के पहले भी औपनिषदिक चिन्तन विचारों में क्रान्ति का निदर्शन कर रहे थे; परन्तु उसे संसार के सम्मुख वैज्ञानिक आधार प्रदान करने का कार्य बुद्ध ने ही किया। इसी तरह गांधी से पूर्व भारतीय स्वतंत्रता के लिए प्रयास किए जा चुके थे और राष्ट्रीय नेता ब्रिटिश दासता से मुक्ति के लिए प्रयत्नशील थे। परन्तु उनके प्रयास को सार्वदेशिक नहीं कहा जा सकता है। उनका संघर्ष बौद्धिक असन्तोष के रूप में व्यक्त होकर मध्यमवर्गीय प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व कर रहा था। उनकी शक्ति का आधार जातीय एवं प्रान्तीय सीमा तक ही सीमित था। परन्तु गांधी के आगमन के साथ ही भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम जन-जागरण में परिणत होकर पूर्णतः राष्ट्रीय रूप में व्यक्त हुआ। इसका स्वरूप एकपक्षीय न होकर बहुपक्षीय था। इसकी यही प्रकृति इसे पूर्व प्रयासों से सर्वथा अलग कर देती है। विश्व राजनीतिक आदर्शों के लिए गांधी की ओर उन्मुख हुआ। यह सही है कि गांधीवादी पद्धति संसार के लिए सर्वथा नवीन नहीं थी; परन्तु उसे कार्य-रूप देने का श्रेय तो महात्मा गांधी को देना ही होगा।

मानव-स्वातंत्र्य के लिए गांधी का क्रान्तिकारी जीवन दक्षिणी अफ्रीका में शुरू हुआ। इसका प्रारंभिक स्वरूप सामाजिक न्याय और समानता प्राप्ति के लिए संघर्ष के रूप में प्रकट हुआ। यहाँ सफलता मिलने के बाद उन्होंने ब्रिटिश-शासन से भारत को मुक्त करने के हेतु नवीन विधि—सत्याग्रह का सहारा लिया, जिसे इतिहास की अन्यतम पद्धति कहा जा सकता है। लाखों भारतीयों का अहिंसक बल एक अजस्र धारा के रूप में फूट पड़ा; और जिसने संसार की विशालतम साम्राज्यवादी शक्ति को धराशायी कर दिया। गांधी की यह सफलता मुक्ति के प्रयास में रत अनेक देशों के लिए प्रेरणा-स्रोत बन चुकी है। यह कहा जा सकता है कि कम से कम तीन दृष्टियों से महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय संघर्ष को नवीन रूप प्रदान किया।

पहली बात तो यह है कि उन्होंने अहिंसा, असहयोग और सत्याग्रह की तीन विधियों का संचालन कर स्वातंत्र्य-क्रान्ति को सार्वदेशिक बनाया। इस सन्दर्भ में यह स्मरणीय है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि उन्होंने अहिंसा को एकमात्र साधन नहीं माना, वरन् उसे एक 'महाव्रत' माना, जिसका सिद्धान्त रूप में जीवन के हर क्षेत्र में प्रयोग हो सकता था। इसका पालन उच्चतम क्षत्रिय धर्म था। इसमें विवशता का भाव आना उनकी दृष्टि में कायरता थी। मृत्यु के प्रति अभय इसका मूल था। इसकी सक्रिय शक्ति में विश्वास रख कर अन्त तक संघर्ष में डटे रहने पर विजय सुनिश्चित थी। असहयोग उनका कल्प-वृक्ष था। उनके जीवन सिद्धान्त का एक महत्वपूर्ण अंग था। उसका व्यावहारिक रूप अंग्रेजों एवं पश्चिम की भौतिक संस्कृति से असहयोग न होकर वरन् उनकी कार्यपद्धति एवं नैतिकता से था। गांधी ने इसे राष्ट्रीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के साथ ही साथ राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के लिए एक शक्तिशाली अस्त्र के रूप में ग्रहण किया। उन्होंने सत्याग्रह को नागरिक का जन्म सिद्ध अधिकार माना। इसकी शक्तिहीनता में अविश्वास व्यक्त कर इसे सीधी कार्रवाई के अत्यन्त बलशाली उपायों में से एक स्वीकार किया। उनके विचार में यह सत्ता प्राप्ति का साधन नहीं था, अपितु सत्ता को शुद्ध करने और उसके सदुपयोग से था। अन्यथा यह दुराग्रह मात्र होता। विनय, निर्भयता और अहिंसा का पूर्ण प्रयोग ही इसकी सबसे बड़ी शक्ति थी। एसमें प्रेम और आत्मबल पर जोर था। उनके विचार में किसी विरोधी को बलप्रयोग की अपेक्षा प्रेम, धैर्य और सहानुभूति द्वारा, विजय की अपेक्षा हृदय परिवर्तन द्वारा अधिक सुनिश्चित ढंग से जीता जा सकता है। इस दृष्टि से अहिंसात्मक असहयोग शारीरिक प्रतिरोध का विरोधी है। यह प्रेम और बुद्धिमानी के साथ अपने शत्रु की भावनाओं और विश्वासों को बदलने का अनुशासित प्रयास है। इस प्रकार अहिंसा, असहयोग एवं सत्याग्रह के आध्यात्मिक साधनों को, राजनीतिक क्रान्ति में रूपान्तरित कर, भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष का आधार बनाया।

दूसरी बात यह है कि उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद को पाश्चात्य शिक्षा-प्राप्त विशिष्ट वर्ग द्वारा समर्थित आन्दोलन नहीं रहने दिया। वे इसमें कोटि-कोटि अशिक्षित भारतीयों का समर्थन दिलाने में समर्थ हुए। स्वातंत्र्य का सन्देश ग्रामों तक पहुँचा कर उसे जन-संघर्ष का रूप प्रदान कर भारतीय बनाया। इसका प्रमाण यही है कि भारतीय ग्रामीणों ने गांधी का नेतृत्व निर्द्वन्द्व भाव से स्वीकार किया और कन्धे से कन्धा मिलाकर मातृभूमि की मुक्ति के लिए चल पड़े। इस परिवर्तन का एक स्पष्ट परिणाम तो यह हुआ कि गाँधी के अनुगामी प्रथम बार ग्रामों में भी स्वातंत्र्य-संघर्ष को संगठनात्मक रूप देने में सफल हुए। इसका दूसरा परिणाम ग्रामोत्थान के रूप में प्रकट हुआ। गाँधी ने स्पष्टतः स्वीकार किया कि उनका स्थान गाँवों में है। उन्हें गाँवों में ही जाना चाहिए। इस परिवर्तित मनोवृत्ति के फल-स्वरूप गाँवों की सफाई, शिक्षा और आर्थिक निर्भरता के कार्यक्रमों को बल प्रदान किया गया। निःसन्देह इस नवीन जागृति ने भारतीय क्रान्ति को एक नयी, किन्तु सर्वथा सुनिश्चित दिशा प्रदान की।

तीसरी बात यह है कि गांधी न राष्ट्रीय आन्दोलन में सामाजिक न्याय, समानता तथा अन्यान्य आदर्शों की अवधारणा कर उसके स्वरूप को बहुत व्यापक बना दिया। उनके विचार में केवल मात्र अंग्रेजी शासन से मुक्ति ही स्वतंत्रता नहीं थी। वे 'पूर्ण स्वराज्य' के हिमायती थे। उस स्वराज्य के, जिसमें जाति या धर्म के भेदों के लिए कोई स्थान नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। उस पर शिक्षितों एवं श्रीमानों का आधिपत्य उनको गवारा नहीं था। उनका स्वराज्य सबके लिए और सबके कल्याण के लिए था। वस्तुतः उनके सपनों का स्वराज्य गरीबों का स्वराज्य था। उसका स्वरूप द्विविध था—विदेशी नियंत्रण से मुक्ति और पूर्ण आर्थिक स्वतंत्रता एक ओर तथा दूसरी ओर नैतिक एवं सामाजिक उद्देश्यों के साथ धर्म की सर्वोच्च अभीष्टि और साम्प्रदायिक एकता का निर्माण। धर्महीन राजनीति आत्मा विहीन शरीर है। वे धर्मविहीन राजनीति की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। उन्होंने धर्म को बड़े व्यापक अर्थ में ग्रहण किया। धर्म उनकी दृष्टि में विश्व की एक नैतिक सुव्यवस्था थी। धर्म एक संकुचित सम्प्रदाय नहीं है। उसे साम्प्रदायिक एकता का सेतु बनना चाहिए। कोई भी धर्म संसार के सर्वमान्य सिद्धान्तों का विरोधी नहीं हो सकता है। इसीलिए राष्ट्रीय संघर्ष के समय गाँधी ने सर्वधर्म समन्वय पर बल दिया। धर्मनिष्ठा या ईश्वर में आस्था सत्याग्रही का आवश्यक गुण था। अन्यथा हिंसक शक्ति के विरुद्ध अहिंसक क्रांति कैसे सम्पन्न होती ?

इसके साथ ही साथ उन्होंने हरिजनोद्धार, अस्पृश्यता निवारण, महिला कल्याण और मद्यनिषेध को भी जन-आन्दोलन का अंग बनाया। इन बुराइयों के रहते स्वतंत्रता का रूप नकारात्मक ही होता, क्योंकि राजनीतिक एकता और स्वतन्त्रता शस्त्र बल से भी प्राप्त की जा सकती है। परन्तु सामाजिक न्याय और समानता, साम्प्रदायिक एकता और सद्भाव बिना हृदय परिवर्तन के स्थापित नहीं किए जा सकते। हीन से हीन लोगों की आजादी ही स्वराज्य का मूल है। उनके विचार में जन्मना कोई अछूत नहीं था। इस व्यवस्था एवं मान्यता ने हिन्दुओं की एक बहुत बड़ी संख्या को पशुओं से भी अधिक अधम बना दिया था। उसे उन्होंने राष्ट्र का अभिशाप, हिन्दुत्व का कलंक और एक असत्य के रूप में देखा। सत्य के उपासक को यह असत्य सह्य नहीं था और वे इसका समर्थन कदापि न कर सके। उन्होंने इस अविवेकपूर्ण परम्परा को हिन्दू समाज के लिए आत्मप्रवंचना ही माना। ब्रिटिश दासता की अपेक्षा इस अविवेकपूर्ण दासता को समाप्त करना अधिक आवश्यक था। यही कारण है कि अस्पृश्यता रूपी दैत्य से वे सदैव संघर्ष करते रहे और लोगों का इसके निर्मूलन के लिए आह्वान किया। सत्याग्रहाश्रम को हरिजन सेवा और अछूतोद्धार के कार्यक्रमों को संचालित करने के लिए अर्पित कर दिया। यही नहीं आत्मशुद्धि के लिए भी हरिजन सेवा को अपने कार्यक्रम का एक अंग बना लिया। महिला कल्याण के कार्यों पर अत्यधिक बल देकर उन्होंने नारी जगत् के प्रति सबकी सहानुभूति को जाग्रत किया। उनकी दृष्टि में नारी अहिंसा की मूर्ति थी। इस मूर्ति का विकृत रूप उन्हें अभिप्रेय नहीं था। बाल-विधवा विवाहों को मान्यता न देकर जहाँ उन्होंने हिन्दू दृष्टि-कोण में परिवर्तन लाने का प्रयास किया, वहीं उसे सामाजिक सुधार का अंग बनाया। मद्यनिषेध पर जोर देते हुए उसे एक सामाजिक आवश्यकता बतलाया। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए मधुशालाओं को तत्काल बन्द करने के लिए वे एक घण्टे के लिए तानाशाह बनना भी पसन्द करते। इस प्रकार उनकी क्रान्ति का स्वरूप जहाँ राजनीतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति थी, वहीं उन्होंने सामाजिक सुधार को आवश्यक मानकर उसे नैतिक आधार प्रदान किया। जब अन्य लोगों ने या तो राजनीतिक स्वतंत्रता या समाज-सुधार को अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य-क्रम का अंग बनाया, वहीं महात्मा गांधी ने सम्पूर्ण देश की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता को एक दूसरे का पूरक मानकर सभी दिशाओं में एक साथ पूरी शक्ति से कार्य किया। यही पद्धति उन्हें अन्य लोगों से सर्वथा अलग कर देती है।

असहयोग आन्दोलन एक नकारात्मक सिद्धान्त मात्र नहीं था। उसका रचनात्मक पहलू कहीं अधिक व्यापक था। सरकारी स्कूलों और कालेजों को छोड़ने वाले शिक्षकों और विद्यार्थियों से राष्ट्रीय विद्यापीठों में सम्मिलित होने के लिए कहा गया। शिक्षा को राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने के लिए प्रयास किया गया। ज्ञान केवल पश्चिम से आता है गांधी जी इसे कभी स्वीकार न कर सके। उनके विचार में विदेशी शासन द्वारा संचालित शिक्षा ऊपरी होती है और वह लोगों के विचारों में पराधीनता की भावना भर देती है। इस शिक्षा से देश के लिए वीर नागरिक तैयार नहीं किये जा सकते। राष्ट्रीय शिक्षा का आधार जन शक्ति है। इस प्रकार स्वातंत्र्य संघर्ष के लिए कर्मठ, वीर और देशभक्त सैनिकों के निर्माण के लिए ही उन्होंने राष्ट्रीय विद्यापीठों की स्थापना एवं बुनियादी शिक्षा पद्धति के कार्यान्वय पर अधिकाधिक बल देकर उसे राष्ट्रीय क्रान्ति का अंग बनाया। विदेशी दासता से मुक्त विचार वाले लोगों को इस प्रकार संगठित कर गांधी ने देश के भीतर एक ऐसी जागृति भर दी, जिसकी मिसाल अन्यत्र मिलना कठिन है। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और स्वदेशी का उपयोग जहाँ आर्थिक निर्भरता के लिए आवश्यक था, वहीं स्वदेशाभिमान को जागृत करने के लिए एक सफल साधन भी था। मानसिक दासता एवं हीनता से मुक्त होने के लिए यह एक अमोघ अस्त्र था। चरखा और खादी का नियोजन इसी भावना के अनुरूप किया था। स्वराज्य के समान ही चरखा और खादी को राष्ट्रीय जीवन के लिए आवश्यक बतलाया गया था। खादी त्याग का प्रतीक और राष्ट्रीय पोशाक बन गई। सरकारी अदालतों का बहिष्कार भी इसी असहयोग का अंग था। वकील और मुवक्किलों दोनों से कहा गया कि वे अपने मुकदमों को सरकारी अदालतों से उठाकर पंचायतों में निर्णय के लिए ले जाँय। गाँधी ने पंचायतों को पूर्ण गणतंत्र के रूप में देखा। इसकी व्यवस्था ग्रामों के स्वावलम्बन, स्वतंत्रता एवं जन-कल्याण के लिए आवश्यक मानी गई।

असहयोग आन्दोलन एवं स्वातंत्र्य सन्देश की भाषा क्या हो? इसके लिए एक जन-सम्पर्क की भाषा की जरूरत महसूस की गई। गाँधी ने जहाँ भारतीय राष्ट्र के लिए साम्प्रदायिक एकता, धार्मिक स्वतंत्रता, सामाजिक समानता और खादी की अनिवार्यता पर बल दिया, वहीं उन्होंने एक सामान्य भाषा की आवश्यकता को भी स्वीकार किया। यही एक ऐसा माध्यम था, जिसके द्वारा क्रान्ति के प्रयासों को जनता तक पहुँचाया जा सकता था। स्पष्ट है कि उन्होंने देश की भाषा की सर्वोपरिता को मान्यता प्रदान किया। इसके लिए उन्होंने हिन्दी के अधिकाधिक प्रयोग को आवश्यक बतलाया। उनके विचार में हिन्दी का प्रचार और प्रसार सरल था। इसका राष्ट्र-भाषा का रूप बहुत व्यापक था। स्वतंत्रता के लिए भाषा की उपयोगिता पर पहली बार इतनी गहराई से विचार किया गया था। निःसन्देह क्रान्ति को वाणी प्रदान करने का गांधी का प्रयास उन्हें जनमानस के निकट लाने में पूर्णतः सफल रहा। अहिन्दी भाषियों द्वारा इसका प्रयोग, प्रचार और प्रसार जितना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी युग में हुआ, वैसा पुनः देखने में नहीं आया। क्या यह अपने में स्वयं एक क्रान्ति नहीं थी ?

अन्त में हमें गांधीवादी क्रान्ति के साधनों एवं उनकी नैतिकता के ऊपर भी विचार करना चाहिए। गाँधी के विचार में साध्य और साधन पर्यायवाची हैं। दोनों एक दूसरे का स्थान ले सकते है। साध्य की सिद्धि हेतु उन्होंने साधन की सर्वोपरिता को स्वीकार किया। उनकी दृष्टि में जैसे साधन होंगे, वैसा ही साध्य होगा। साध्य की सिद्धि ठीक साधनों की सिद्धि के अनुपात में होती है। सत्य एवं अहिंसा उद्देश्य पूर्ति के साध्य और साधन हैं। आत्मशुद्धि इसी का एक अंग है। यह क्रान्ति का एक अत्यन्त शक्तिशाली साधन हैं। गाँधी से पूर्व अपने उद्देश्यों में एकनिष्ठ व्यक्तियों ने साधनों को उतना महत्व नहीं दिया, जितना गाँधी युग में दिया गया था। यदि वे अपने साध्य और साधन की गरिमा की रक्षा में तत्पर रहे तो कहना होगा कि उसे व्यापक स्तर पर सक्रिय ढंग से कार्यान्वित नहीं कर सके। अनेक विचारों के लोग क्रान्ति के कार्य-क्रमों में लगे रहे। उनके अनुयायियों और सहधर्मियों की संख्या भी पर्याप्त थी, परन्तु गाँधी के आगमन के साथ ही सम्पूर्ण देश ने उनका नेतृत्व सहज ही स्वीकार कर लिया। उनके विरोधी भी उनके ध्येय और साधन के कायल हो उठे। उनकी यह सफलता उनके साधनों की नैतिकता के कारण ही संभव हो सकी थी। सामान्यतया कार्य का उद्देश्य और उसकी करने की पद्धति ही वह कसौटी है, जो साध्य और साधन के औचित्य और अनौचित्य का निर्णय करती है। उद्देश्यों में उचित कार्य भी साधनों की पवित्रता के अभाव में अनैतिक रूप धारण कर सकता है। वस्तुतः नैतिकता का सर्वोच्च स्तर ही कार्य की सोद्देश्यता की परिणति है। इस उच्च नैतिकता की स्थापना बिना अनुशासन और आत्म संयम के संभव नहीं है। सविनय अवज्ञा की सफलता अनुशासित ढंग से कार्य करने की पद्धति पर ही निर्भर थी। गांधी के विचार में अनुशासन के अभाव में राष्ट्र का स्वरूप ही विकृत हो जाता है। राष्ट्र की गरिमा का परिचय उसके अनुशासनबद्ध नागरिकों से ही मिलता है। इसी दृष्टिकोण से उन्होंने अनुशासित क्रान्ति-सैनिकों के निर्माण के लिए अपने आश्रमों के नियमों को कभी भी शिथिल होने नहीं दिया। अनुशासनहीन क्रांति के प्रायश्चित हेतु उन्होंने समय-समय पर अनशन का मार्ग भी अपनाया, जो अनुशासन का ही एक अंग था। इस पद्धति से सम्पूर्ण देश की चेतना को उन्होंने जहाँ जाग्रत किया, वहीं क्रान्ति का मार्ग भी प्रशस्त हुआ। उनकी दृष्टि में अनुशासन के अभाव में संचालित क्रान्ति से अराजकता और अनियंत्रित स्वच्छन्दता उत्पन्न होती है। अन्ततोगत्वा इससे क्रान्ति असफल ही होती है। अहिंसा इस अनुशासन की चरम परिणति है। यह सत्याग्रह का प्राण है।

महात्मा गाँधी भारतीय स्वातंत्र्य आन्दोलन के प्रतीक थे। इतिहास में उनका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। स्वयं इतिहास के निर्माता—उसे एक निश्चित मोड़ देने वाले युग पुरुष थे। मूलतः वे एक धार्मिक महापुरुष थे। उनकी राजनीति आध्यात्मिक मूल्यों का व्यावहारिक रूप थी। जीवन का प्रत्येक पक्ष किसी-न-किसी रूप में उनकी राजनीति को स्पर्श करता है। उन्होंने भारतीय क्रान्ति को एक नयी दिशा, एक नया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्देश, एक नया मार्ग प्रदान किया। विश्व उनकी सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह के प्रति अजेय निष्ठा से अभिभूत हो उठा। उनकी इस सफलता का रहस्य उनके विचारों और कार्यपद्धति के अद्भुत सामंजस्य में है। व्यक्तिगत स्वार्थ और सुख को उन्होंने मानव मात्र के हित से कभी भी अधिक महत्व नहीं दिया। सामाजिक एवं साम्प्रदायिक एकता के निर्माण के लिए समता, सहिष्णुता, नैतिकता और विश्वबन्धुत्व का आदर्श देश के सम्मुख रखा। उन्होंने अपने साध्य को साधन की शुद्धता के माध्यम से पूरा करने का व्रत लिया था। यही कारण है कि वे अनीतिजन्य सफलता को कभी भी स्वीकार न कर सके और सदा उन्होंने नीतियुक्त मार्ग का ही अनुसरण किया। परम्पराओं की अपेक्षा विवेक और अनुभूति को महत्व देकर देश और विश्व को नयी चेतना से अनुप्राणित किया। मात्र भारतीय राष्ट्र निर्माता के रूप में उनका मूल्यांकन उचित नहीं है। उनका व्यक्तित्व कालातीत नहीं, अपितु शाश्वत है। उनके कार्य का क्षेत्र असीम एवं त्रैकालिक है। यदि दलित मानव समाज की मुक्ति गाँधीवाद में निहित है तो आने वाला विश्व ही उनका सही मूल्यांकन कर सकेगा।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

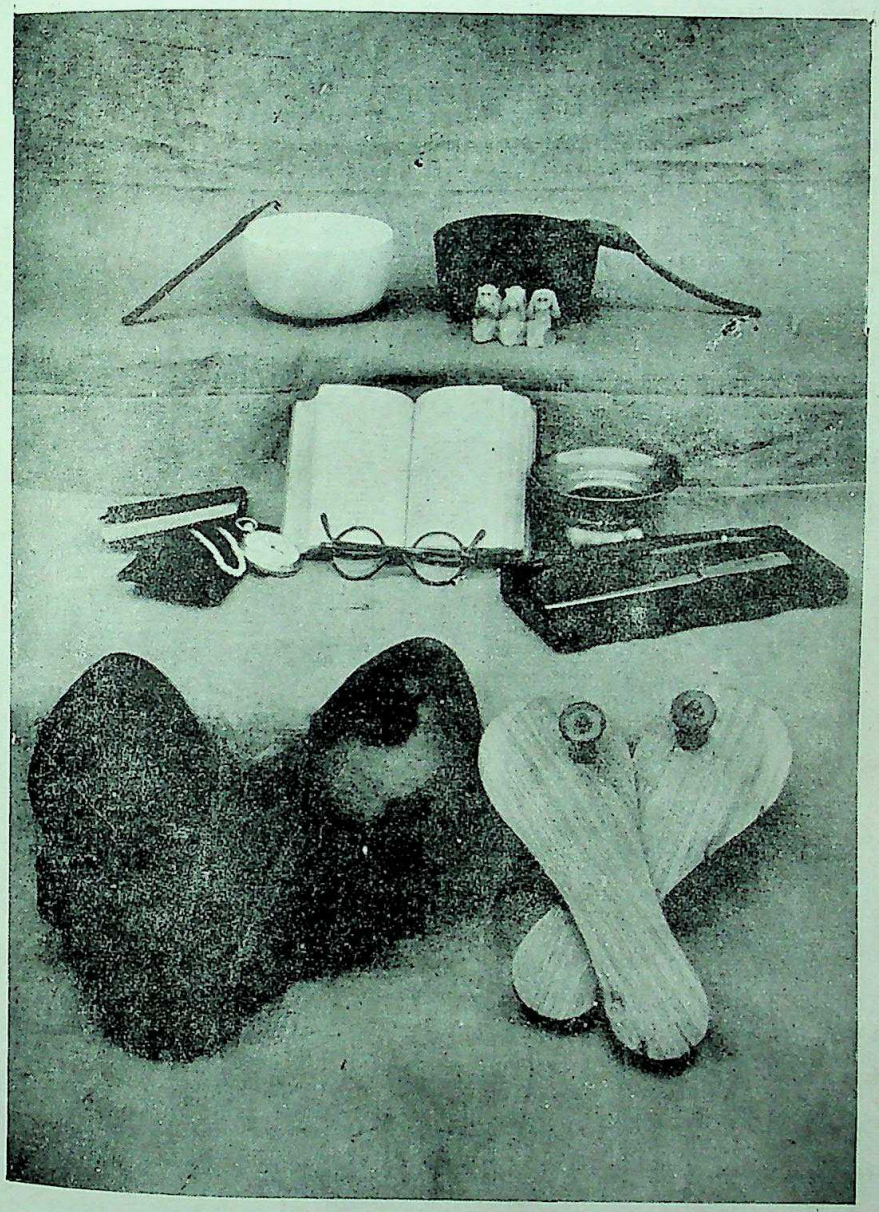

शष स्मृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SOCIO-RELIGIOUS BASIS OF GANDHIAN SOCIAL ORDER

KANHAIYA LALL SRIVASTAVA,
Lecturer in History, B.H.U.

Mahatma Gandhi had implicit faith in God. He used to say God's ways are beyond the comprehension of man.[1] He was opposed to any social and political set-up that denied the existence of God.[2] He emphasised that Love, Truth and Non-violence are the fundamental ingredients of a society. He believed in the essential goodness of human nature.[3] He used to say that man is gifted with the faculty and intelligence of distinguishing between good and evil.[4]

---

[1] D. G. Tendulkar, *Mahatma*, vol. III, p. 175 ; vol. V, p. 182, vol. VI, p. 371.

[2] On communism Mahatma Gandhi remarked : "I am yet ignorant of what exactly Bolshevism is.....But I do know that, in so far as it is based on violence and denial of God, it repels me."

(*Bhavan's Journal*, Bombay, March 4, 1962, Article 'Gandhi and Marx' by Chandra Shankar Shukla, p. 49 ; See also *Bhavan's Journal*, dated December 19, 1954, pp. 24-25).

[3] Mahatma Gandhi writes :

"Only Truth quenches untruth. Love quenches anger. Self-Suffering quenches violence. This external rule is a rule not for Saints only, but for all".

(Ibid, November 26, 1961, p. 11).

[4] Mahatma Gandhi was very much influenced by a Gujarati stanza as given below. He writes : "Its precept-return good for evil—became my guiding principle."

"For a bowl of water, give a goodly meal ;
For a kindly greeting, bow thou down with zeal ;
For a simple penny, pay thou back with gold ;
If thy life the rescued, life do not withhold.
Thus the words and actions of the wise regard ;
Every little service ten-fold they reward
But the truly noble know all men as one
And return with gladness good for evil done."

(Ibid.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The judicious use of this faculty makes one divine and on the contrary, if it is misused he becomes a source of evil.[1] The society which provides equal opportunities for advancement for all is, according to Mahatma Gandhi, an ideal and true society.[2] 'Faithful performance of duty or discharge of social obligations in such a system will constitute its own reward.'[3] He forcefully expresses his views regarding the utmost control of baser instincts of oneself and all sorts of passions and prejudices. 'All external controls on individual life are a form of violence.'[4] Mahatma Gandhi's views regarding the free will of the individual have been incorporated in the following observation of Dr. V.P.S. Raghuvanshi : "Gandhism[5] thus offers full scope for

---

[1] D. G. Tendulkar, op. cit., vol. VI, p. 371
Mahatma Gandhi remarks :

"There is no worship purer or more pleasing to God than selfless service of the poor. The rich in their arrogance and intellectual pride often forget God and even question His existence. But God dwells among the poor..... To serve the poor is, therefore, to serve Him."

(Quoted from *Bhavan's Journal*, Bombay, September 2, 1962, p. 23).

"If I could presuade myself that I should find him in a Himalayan cave I would proceed there immediately. But I know that I cannot find him apart from Humanity."

(*Harijan*, August, 29, 1936).

[2] D. G. Tendulkar, op cit., vol. IV, pp. 15-16.

In this connection the observation of Shri Lal Bahadur Shastri, Ex-Prime Minister of India, may be noted.

"Gandhiji believed in a simple life and a less complicated society, whereas the modern world wants to make life more easy and confortable..... For him the spirit was more important than physical comfort and luxury."

(Taken from the *Illustrated weekly of India* Bombay, January 31, 1965, Mahatma Gandhi Memorial Number, p. 21).

[3] V.P.S. Raghuvanshi, *Indian Nationalist Movement and Thought*, Agra, 2nd ed., 1959, p. 311.

[4] Ibid.

[5] Acharya Kripalani does not agree with the term 'Gandhism'. He writes : "All 'isms' come into existence not at the initiative of those in whose names they are preached and promulgated, but on the result of limitations imposed upon the original ideas by the followers.....There is no such thing as Gandhism, but only a Gandhian way and outlook which is neither rigid nor formal nor final. It merely indicates the direction without trying to fill in the details finally or for all time to come".

(Acharya J. B. Kripalani, *The Gandhian way*, Bombay, 1945, p. 149).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

the exercise of individual will but the idea of God introduces a certain determinism which interferes with this free-will. There may be situations in which man's reason may fail him and he may have to fall on faith to preserve in right course."[1] Mahatma Gandhi felt that the use of machinery at a large scale[2] and multiplication of wants as a result of scientific and technical advancement leads to the debasement of "the inner-being in us."[3] As such he recommended social control of the use of heavy machinery.[4]

While he was in London (1888), Mahatma Gandhi was very much influenced by the *Bhagwad Gita*.[5] He felt that he could get salvation only in Hinduism.[6] He did not consider that religious books were important regarding one's faith.[7] He

---

[1] V. P. S. Raghuvanshi, op. cit. ,p. 312.

[2] "But Gandhiji did not condemn all machinery, he approved of the sewing machine and the printing press. But these machines, for their construction presuppose heavy industry.....The argument that machinery will bring leisure did not appeal to him"....."

(H. S. L. Polak, H.N. Brailsford and Lord Pethic Lawrence, *Mahatma Gandhi*, Bombay, 1962, Chapter On Village Life by H. N. Brailsford, p. 253).

[3] Tendulkar, op. cit. vil. V, p. 215.

Mahatma Gandhi writes:

"Today, machinery merely helps a few to ride on the back of millions. The impetus behind it all is not the philosophy to save labour but greed. It is against this constitution of things that I am fighting with all my might".

(Quoted from *The Illustrated Weekly of India*, Bombay, January 31, 1965, p. 26.)

[4] R. K. Prabhu, *The Mind of Mahatma Gandhi*, 1945, pp. 119-20; Tendulkar, op. cit., vol. III, pp. 168-169.

[5] R. Rolland, *Mahatma Gandhi*, p. 11.

[6] Ibid.

[7](a) Mahatma Gandhi writes:

"It is not the Hindu religion which I certainly prize above all other religions, but the religion, which transcends Hinduism, which changes one's very nature, which binds one indissolubly to the truth within and which ever purifies. The Hindu system of philosophy regards all religions as containing elements of truth in them and enjoins an attitude of respect and reverence towards them all. This of course presupposes

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

regarded religion as a personal affair.[1] He observes : "Divine knowledge is not borrowed from books. It has to be realised in oneself. Books are at best an aid, often, even a hindrance."[2] According to him, religion should be based on morality[3] and reason. It leads to the conclusion that he was opposed to the organised religious institutions. He wanted that "the religious spirit should be rescued from the monopolists and system makers of all religions and set free to eastablish its contacts with the Eternal through ever increasing knowledge."[4]

---

regard for one's own religion. Study and appreciation of other religions need not cause a weakening of that regard it should mean extension of that regard to other religions.

(*Young India*, dated December 6, 1928, p. 406).

(b) K. C. Vyas, *The Social Renaissance in India*, Bombay, 1957, p. 171. Mahatma Gandhi observes :

"Religion is a very personal matter. We should by living the life according to our lights share the best with one another, thus adding to the sum total of human effort to reach God."

(The *Harijan*, Dated November 28, 1936, p. 330).

[1] Ibid. K. C. Vyas, op. cit., p. 171.

[2] *Young India*, dated July 17, 1924, p. 238.

[3] Mahatma Gandhi remarks :

"Morality is an essential ingredient in all the faiths of the world, but apart from religion our common sense indicates the necessity of observing the Moral Law."

(Quoted from *Bhavan's Journal* Bombay, dated September 30, 1962, p. 18).

"God is Omnipotent. He is the embodiment of perfection. None Can set limit to His Justice and His Mercy. How, then, can we who call ourselves His devotes, dare to infringe the obligation of morality ?"

(Quoted from *Bhavan's Journal*, dated October 29, 1961).

"I reject any religious doctrine that does not appeal to reason and is in conflict with morality. I tolerate unreasonable religious sentiments when it is not immoral."

(*Young India*, 21-7-1920, p. 173.)

K. M. Munshi writes :

"And as experience of ages has taught us that the Law of Moral Causation is inexorable, never a policy. And in teaching us this law Gandhiji has only extended the scope and efficiency of the basic values of Indian culture."

(K. M. Munshi, *Akhand Hindustan*, Bombay, 1942, p. 203.)

[4] S. K. George, *Gandhi's Challenge to Christianity*, p. 67.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Mahatma Gandhi wanted to make religion practical.[1] According to him, religion should help one to lead better worldly life. He writes : "Religion which takes no account[2] of practical affairs and does not help to solve them, is no religion."[3] His religion was a search for truth.[4] He observes : "Indeed religion should pervade every one of our actions. Here religion does not mean sectarianism. It means a belief in ordered moral

---

[1] "The Bhagwat Gita was his (Mahatma Gandhi's) constant yardstick of reference..... He was an ascetic with a passion for selfrealisation..... He personified and practised the '*Sadhana*' that Great men like Vivekanand, Aurobindo and Tilak were expounding the need for a man of religion to identify himself with the sorrow and misery and travail of society around".

(N. K. Bose & P. H. Patwardhan, *Gandhi in Indian Politics*, Bombay, 1967, p. 58).

[2] "The purpose of life is undoubtedly to know oneself. We cannot do it unless we learn to identify ourselves with all lives. The sum total of that life is God..... The instrument of this knowledge is boundless, selfless service."

—Mahatma Gandhi.

(Quoted from *Bhavan's Journal* dated September 3, 1961, p. 15)

[3] *Young India*, dated 7-5-1925, p. 164.

[4] "In the spirit of Hindu Religion he looked upon the Divine not only as a transcendental Absolute but as a personal God. He was truly a *bhakta* with an unflinching faith in God."

(S. Radhakrishnan, ed., *Mahatma Gandhi : 100 years*, New Delhi, 1968, Introduction, p. 3).

"Truth is God. Devotion to this Truth is the sole justification for our existence.....There should be Truth in thought, Truth in speech and Truth in action."

—Mahatma Gandhi

(Quoted from *Bhavan's Journal*, dated January 21 1962, p. 16).

"When his account with God is settled on one page, he opens a fresh one on the next."

"Gandhiji has often called himself a Scientific experimenter. It is not his fault if his tools and Chemicals happen to be human. Unfortunately, they feel and suffer and the operator himself is as tender-hearted as any Sister of Mercy. But the laboratory knows no pity and needs no rest. The truth or *Satya* must be found."

(*Bhavan's Journal*, Bombay, dated October 1, 1961, Article-Gandhi by Rt Hon. V. S. Srinivasasastri, pp. 19-20).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

government of the universe."[1] He laid great emphasis on prayers. According to him one should be humble enough for offering prayers. He cited the example of Lord Buddha who "could not have ruled the lives of millions of men that he did and does today if he was not humble enough to pray."[2] He regarded Buddhism, Christianity, Islam and Hinduism as identical and closely knit together.[3] He was critical of the

---

[1] *Harijan.*, dated 10-2-1940, p. 445.

[2] *Harijan*, dated, 19-8-1938.

"It is better in prayer to have a heart without words than words without a heart." —Mahatma Gandhi

(Quoted from *Bhavan's Journal*, Bombay, dated, October 4, 1959, p. 17).

Mahatma Gandhi writes :

"You are not going to know the meaning of God or prayers unless you reduce yourself to a cipher. You must be humble enough to see that in spite of your greatness and gigantic intellect you are but a speck in the universe.....It is the spiritual conception which eludes the intellect and which alone can give one satisfaction."

(*Harijan*, 19-8-1939)

Regarding *Japa* he writes : ".....each repetition, or *Japa*, as it is called, has a new meaning, each repetition carries you nearer and nearer to God."

(Quoted from *Bhavan's Journal*, dated April, 15, 1962).

[3] Mahatma Gandhi observes :

"I believe in absolute oneness of God and therefore also of humanity.....The rays of the Sun are many through refraction. But they have the same source." ('*Young India*, 25-9-1249.)

"Buddha never rejected Hinduism, but he broadened its base. He gave it a new life and a new interrpretation."

"I have heard it contended times without number.....that Buddha did not believe in God. In my opinion such a belief contradicts the very fact of Buddha's teaching.....His whole soul rose in mighty indignation against the belief that a being called God required for His satisfaction the living blood of animals in order that He might be pleased..... He reinstated God in the right place and dethroned the usurper who for the time being seemed to occupy that White Throne."

(Quoted from *Bhavan's Journal*, dated May 20, 1956, p. 18)

"I have regarded Jesus of Nazareth as one amongst the mighty teachers that the world has had .....I shall say to the Hindus that your lives will be incomplete unless you reverently study the teachings of Jesus"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

western civilization because it was irreligious and so it was not suited to Indians.[1] He was against social uplift on the lines of materialistic concept of western civilization.[2] He wanted that the social reforms and the struggle for independence should be carried on simultaneously.[3]

Mahatma Gandhi worked ceaselessly to reform the society.[4] His writng in the journals—*Young India*, the *Harijan* and the

---

(Quoted from *Bhavan's Journal*, Bombay, dated January 7, 1962, p. 15).

"Islam means peace. That peace cannot be confined to the Muslims. It must mean peace for the whole world."

(*Harijan*, dated 22-9-1940)

"My whole soul rebels against the idea that Hinduism and Islam represent two antagonistic cultures and doctrines.....For I believe with my whole soul that the God of the Quran is also the God of Gita..... I must rebel against the idea that millions of Indians who were Hindus the other day changed their nationality on adopting Islam as their religion." (*Harijan*, dated 13-4-1940)

[1] M. K. Gandhi, *Hind Swaraj*, p. 26, quoted in K.C. Vyas, op. cit., p. 173.

[2] K. M. Munshi remarks :

"In the name of toleration we have let the social system grow nerveless. Castes cannot stabilise social life now. Joint family can not provide social insurance. Hoary traditions which saved us from the shocks of time have lost their protective values. We ape the West, we have learnt to bend our knee to the foreigner, without being conscious of the indignity involved. In our helpness we shout, beg and curse, but know not, how to consolidate our forces. And we are facing the greatest crisis in the world's history."

(*Akhand Hindustan*, Bombay, 1942, p. 41)

[3] "His leadership was a religious leadership, carrying the charismatic mark of austerity and holiness. He took congress to villages by breaking its concentration on middle class, urban affairs .....He saw India's future in terms of reviving the dying culture of village life."

(Barbara Ward, *India And The West*, Delhi, 1961 pp. 112-113).

[4] ".....he (Mahatma Gandhi) is a great Scientist in the realm of social truth.....His greatness as a social inventor is shown by the close adaptation of his methods to the culture and modes of thought and feeling of the people and to their economic and technological resources."

(S. Radhakrishnan, (ed.), *Mahatma Gandhi*, Bombay 2nd ed., 1957—Essay. 'Gandhiji As a Social Scientist And Social Inventor' by Richard B. Gregg, p. 65).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Navajivan, gave a new turn to the religious and social reformation in the country. He was against the multiplicity of caste divisions in the society. He favoured four main divisions in the society based on the *'Chaturvarna'* system of ancient India. His ideas regarding the reorganisation of society on the ancient traditions were somewhat confused and therefore unpracticable.[1] His scheme of social reforms was all pervading. He identified himself with the poor and downtrodden section of the society.[2] His greatest contribution was in the eradication of untouchability from the hindu society.[3] Earlier efforts were made by Mahadev Govind Ranade for the uplift of the depressed classes. Organizations like Ram Krishna Mission and Arya Samaj and social reformers like V. R. Shinde and A. V. Thakkar of the servants of India Society had rendered valuable services in starting a literacy drive amongst the depressed classes. But Mahatma Gandhi roused the consciousness of the caste Hindus against the principle of untouchability.[4] He worked hard to

---

[1] K. C. Vyas, op. cit., p. 177.

Mahatma Gandhi writes :

"I regard 'Varnashrama' as a healthy division of work based on birth. The present ideas of caste are a perversion of the original."

(*Young India*, quoted in K. C. Vyas, op. cit., p. 177).

[2] "In this land where naked poverty contrasts with purple wealth, he has ranked himself with the lowest. He will wear no garment and eat no food that might divide him from the outcastes of the village."

(H. N. Brailsford, *Rebel India*, London, 1931, p. 19).

[3] "India honours Gandhiji today chiefly because he led the fight for independence. Humanity owes him an even heavier debt because he opened the road of the untouchables to freedom."

(H. S. L. Polak, H. N. Brailsford and Lord Pethic Lawrence, *Mahatma Gandhi*, Bombay, 1962, Chapter on 'The Harijan's by H. N. Brailsford, p. 247)

[4] Louis Fischer observes :

"In attempting to eradicate untouchability Gandhi was tugging at roots several thousand years long. They originated in the prehistoric Aryan invasion of India and grew into the hearts, superstitions and social habits of hundred of millions of people. Many western nations have their 'untouchables', but the stubborn Hindu phenomenon of untouchability stems from peculiar historic and economic circumstances which are tied together into an ugly bundle by the sanction of religion."

(*The Life of Mahatma Gandhi*, Bombay, 1955, Part. I, p. 171)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

improve the lot of the untouchables through his papers—the *Young India*, the *Navajivan* and the *Harijan*.[1] He was pained when Dr. B. R. Ambedkar the leader of the depressed classes, demanded a separate electorate for themselves at the Second Round Table Conference. He was ready to sacrifice his life rather than to accept the depressed classes as a separate community.[2] When Mr. Ramsay Macdonald's Award was announced (August, 17, 1931), he began his fast unto death (September 20, 1932) to get the award annulled.[3] Subsequently he broke his fast (September 26, 1932) as a result of the Poona Pact. Since then he began calling the members of the depressed classes as Harijans (People of God).[4] Soon after the Poona

---

[1] Pt. Jawaharlal Nehru writes:

".....his (Mahatma Gandhi's) latest Harijan activities have gently but irresistibly undermined orthodox Hindusim and shaken it to its foundations. The whole tribe of the orthodox have ranged themselves against him, and consider him their most dangerous enemy, although be continues to treat them with all gentleness and courtesy. In his own peculiar way he has a knack of releasing powerful forces which spread out, like ripples on the waters' surface, and affect millions."

(*An Autobiography*, London, 1947, p. 406).

[2] B. Pattabhi Sitaramayya, *History of the Indian National Congress*, I, p. 897.

[3] Pt. Nehru did not like the idea of Mahatma Gandhi in taking extreme step of fasts and sacrifice. He writes: "I felt angry with him at his religious and sentimental approach to a political question and his frequent references to God in connection with it. He even seemed to suggest that God had indicated the very date of the fast. What a terrible example to set?"

(*An Autobiography*, p. 370)

Pt. Nehru further remarks:

"To go on laying great stress on the communal Award defeats the very purpose we aim at for it prevents people from thinking of other issues."

(*Eighteen Months In India*, 1936-1937, Allahabad, 1938, p. 149)

[4] Regarding the Bihar Earthquake (January, 1934) Mahatma Gandhi remarked:

"It is an ennobling thing for me to guess that the Bihar disturbance is due to the sin of untouchability."

(Quoted from Polak, Brailsford & Lawrence, op. cit., p. 245)

"He regarded untouchability as an 'excrescence; a perversion of Hinduism."

(Louis Fischer, op. cit., Part I, p. 181) (See also Rabindranath Tagore, *Mahatmaji and the Depressed Humanity*, p. 30).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Pact a conference of devout Hindus and social workers was held under the chairmanship of Pt. Madan Mohan Malaviya and a resolution was passed for the removal of untouchability.[1] Subsequently an organization known as *Harijan Sevak Sangh* was established with Mr. Ghanshyam Das Birla as President and Mr. Thakkar as Secretary. He made an extensive tour of the country in 1934-35 and roused the people against untouchability.[2] As a result of his efforts, the caste Hindus became liberal in their outlook and concessions were given to the Harijans.[3] He formulated the schemes for improving the condition of the *Harijans* in one of the meetings of the *Harijans Sevak Sangh*, held at Sewagram (August 14, 1945). He was convinced that in due course of time the attitude of caste Hindus would change and reconciliation between the two sections of the community would be possible.[4]

Mahatma Gandhi was shocked at the treatment of womenfolk in the Hindu Society. When it was pointed out to him that

---

[1] Pt. Nehru writes :

"Then came news of tremendous upheaval all over the country, a magic wave of enthusiasm running through Hindu Society, and untouchability appeared to be doomed. What a magician, I thought was this little man sitting in Yeravda Prison, and how well he knew how to pull the strings that move people's hearts !"

(*Autobiography*, p. 371)

[2] When Dr. Ambedkar pointed out that untouchability is permissible in the religious scripture, Mahatma Gandhi remarked : "Nothing can be accepted as word of God which cannot be tested by reason or be capable of being spiritually experienced."

(*Harijan*, July, 11, 1936)

[3] The Indian national congress championed the cause of untouchables on a national level. The congress government in Madras (1937) passed the Civil Disabilities Removal Act which laid down that "no untouchable shall, by reason merely of his being such, be prevented or disabled from holding a public appointment having access to any public stream, river, well, tank, pathway, sanitary convenience or means of transport or any secular institution which the general public have right to enjoy or have access to."

(H. C. Mookerjee—*Congress and the Masses*, p. 40)

[4] Swami Sundarananda, *Hinduism and Untouchability*, pp. 119-120.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

even the Laws of Manu support the degradation of women, he proposed that some experts should make necessary amendments and modifications in the religious texts.[1] He laboured hard for the uplift of women.[2] He thought that the country was unable to progress unless the status of womenfolk was elevated.[3] He did not like child marriages. He was deeply grieved to think about the miserable plight of child widows and forced widowhood. He did not recognise child-widows and advised their parents to get them 'married' and not 'remarried.' He favoured remarriage of the widows[4] and was of the view that the widows should act independently in the matter if their parents refused to give their consent.[5] He hated '*purdah*' system and declared that women were free and no one had the right to impose *purdah* on them. He condemned dowry system and thought that this evil could not be removed so long as the society functioned on caste system.[6] He was not opposed to divorce. He regarded

[1] *Harijan*, dated November 28, 1936.

[2] "With his masterly pen and from every plat-form he (Mahatma Gandhi) has, throughout his long life of service preached against the wrongs done to women in the name of law, tradition and even religion."

(M. K. Gandhi, *Women and Social Injustice*, Navajivan Pub. House, Ahmedabad, 4th ed., 1954, Foreword by Amrit Kaur, pp. iii-iv).

[3] *Harijan*, 27-6-1936, p. 153.

"By sheer force of a vicious custom even the most ignorant and worth less men have been enjoying superiority over women which they do not deserve and ought not to have. Many of our movements stop half way because of the condition of our women. Much of our work does not yield appropriate results, our lot is like that of the pennywise and pound foolish trader who does not invest enough capital in his business."

(Mahatma Gandhi's Presidential address delivered in Gujarati at the annual gathering of the *Bombay Bhagini Samaj* (February 20, 1918). The English version of his address is quoted from *Women & Social Injustice*, p.5).

[4] K. C. Vyas, op. cit., p. 175.

[5] Ibid.

[6] Mahatma Gandhi remarks about dowry:

"The system has to go. Marriage must cease to be a matter of arrangements made by parents for money. The system is intimately connected with caste so long as the choice is restricted to a few hundred men or young women of a particular caste, the system will presist, no matter, what is said against it." (*Harijan*, 23-5-1936, p. 117)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

marriage as a solemn union which helped both the partners to progress in life. If one of the partners in marriage felt that the other partner was a hindrance in his or her moral progress then the marriage could be dissolved.[1] He did not like womenfolk to suffer any social and legal disability. He declared "Man and woman are equal in status."[2] He detested the term 'weaker sex' being used for women and roused the consciousness of the people to work for the emancipation of womenfolk.[3] It was his contribution to the awakening of women that they came out "in their hundreds from sheltered homes to stand the furnace of a fiery trial without flinching", in the struggle against British imperialism.[4] He voiced his strong feelings against the custom of dedicating girls, to the temples. He writes, "By calling them *devadasis*' we insult God Himself in the name of religion, and we commit a double crime in that we use these sisters of ours to serve our lust and take in the same breath the name of God."[5] He was distressed to note that women in Hindu society are always busy in performing domestic work.[6] He wanted them to be

---

[1] K. C. Vyas, op. cit., p. 175.

[2] *Women and Social Injustice*, Foreword, p. iv.

Mahatma Gandhi writes :

"I am uncompromising in the matter of women's rights..... I should treat daughters and sons on a footing of perfect equality" (Ibid.)

[3] Mahatma Gandhi addressing a gathering of women in Paris in 1932 remarked, "If only women will forget that they belong to the weaker sex, I have no doubt that they can do infinitely more than men against war..." (Ibid., p.v.)

[4] Ibid., p. vi

[5] *Young India*, 22-2-1927.

"Let the Hindus who are in any way whatsoever connected with these things purge society of this pest."

Mahatma Gandhi
(From a description of his visit to Mayavaram (Tamil Nad)—Ibid.)

[6] Mahatma Gandhi writes :

"To me this domestic slavery of woman is a symbol of our barbarism. In my opinion the slavery of the kitchens is a remnant of barbarism mainly. It is high time that our womankind was freed from this incubus. Domestc work ought not to take the whole of a woman's time".

(*Harijan*, 8-6-1940)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

freed from this drudgery. He also did not like womenfolk adorning themselves with jewellery. He considered that they are like slaves to their menfolk who provide them valuable jewellery and ornaments.[1] He wanted the womenfolk of our country to rise to the occasion and rid themselves of the bondage of their menfolk by refusing to put on jewellery.[2] He was against the *purdah* system which is prevalent mostly in northern India. He considered this system as a hindrance for the progress and prosperity not only of the womenfolk but of the Hindu society as a whole.[3] He wanted to make the women bold and fearless. His efforts to break the social barriers for the uplift of women succeeded to a great extent.

Mahatma Gandhi gave a new dimension to the devotion and worship of God. He laid emphasis on the purity of heart.

---

[1] Mahatma Gandhi observes:

"A woman in India has rarely any cash which she can call her own. But the jewellery she wears does belong to her though even that she will not, dare not, give away, without the consent of her lord and master".

—(*Harijan*, December 22, 1933)

[2] Mahatma Gandhi remarks:

"Refuse to be slaves of your own whims and fancies and the slaves of men. Refuse to decorate yourselves, don't go in for scents and lavender waters. If you want to give out the proper scent it must come out of your heart and then you will captivate not man but humanity".

—(*Young India*, 8-12-1927)

"In my opinion, the wearing of expensive jewellery is a distinct loss to the country. It is so much capital locked up or worse still, allowed to wear away."

—(*Harijan*, December 22, 1933)

"There is no salvation for India unless you strip yourselves of the Jewellery and hold it in trust for your countrymen in India."

(S. Radhakrishnan, ed., *Mahatma Gandhi:* 100 years., New Delhi, 1968, p. 289).

[3] "Men to be men, must be able to trust their womenfolk even as the latter are compelled to trust them. Let us not live with one limb .....completely or partially paralysed..... It (*purdah*) partly accounts for our own weakness, indecision, narrowness and helplessness. Let us then tear down the *purdah* with one mighty effort".

(*Yong India*, 3-2-1927)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

According to him, the best way of worshipping God is to serve humanity. All rituals and external show in offering prayers are not necessary. These, sometimes, prove hindrance in the religious prayers. His sermons on religious matters were based on moral and ethical grounds. His belief in God and the ideals which he practised had a tremendous impact on the minds of the people. He roused the people to rid themselves of the superstitions, meaningless religious ceremonies and monopolistic hold of the priestly class in offering prayers to God. He treated all religions on the basis of equality and thus paved the way for different religious groups to live in amity. He declared that one, who shows disrespect to other religions, is not true to his religion. It was on account of his efforts that conservative section in Hindu religious society received a set-back and a trend towards liberalism was noticed. His sermons on religious harmony captivated the hearts of our countrymen. The devotional songs sung by him went a long way in wiping out the traces of bitterness among different communities. Not only this, he aimed to transform the society by his faith in religion.[1]

Mahatma Gandhi contributed a great deal in making the Hindu society dynamic. He worked for the downtrodden section of the community. The backward and the untouchables were brought on foating of equality. By his precepts and new ideas, the masses were aroused and the affluent and advanced section of the society became conscious of their duties towards their fellowmen. He regarded the caste system as the root cause of all evils in the society. His efforts in the abolition of caste system did not bear fruit. He was conscious of the advantages of the ancient mode of life in the Hindu society.[2] So

[1] "Gandhiji was essentially a religious person. By the practice of spiritual exercises, by fasts and prayers he aimed at the production of a new type of human being, fearless, greedless and hateless."

—(S. Radhakrishnan, ed., *Mahatma Gandhi : 100 years*, p. 3)

[2] Arnold Toynbee observes :

"Mahatma Gandhi's social ethics are in line with the past spiritual experience of the human race at all times and places and for this reason, I believe that they are 'the wave of the future."

(Quoted from *Illustrated weekly of India*, Bombay, dated January 31, 1965, p. 35)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

he wanted the society to be remodelled on the ancient system of '*Chaturvarna*' which is not feasible under the present set-up. He did not spell out his mind elaborately as to how the transformation of the society on the lines of ancient structure was to be made. He laid great emphasis on the equality of status in the society. Although he wanted some encouragement to be given to the intellectuals, to enable them to have initiative and drive in the fulfilment of their mission, by allowing them a little more earning than the commoner, he was against the exploitation of one class of the society by the other.[1] He was optimistic about the future of our society, if all its members earned their livelihood by the sweat of their brow.[2]

His mighty efforts towards the emancipation of the womenfolk are commendable. Some of his ideas, such as discarding the use of jewellery by women, did not find favour with the people. The craze to wear costly ornaments remained with the womenfolk which, according to him, was the main cause of the subjection of women by men. Even the poorer section of the society, who could ill afford to purchase jewellery, go out of their means to possess it and thereby suffer privations and hardships in life. His movement against the social evils like dowry, *purdah* and widowhood gained momentum. People felt the necessity of the removal of such degrading customs and steps

---

[1] Mahatma Gandhi writes :

"My idea of society is that while we are born equal, meaning that we have a right to equal opportunity, all have not the same capacity..... I would allow a man of intellect to earn more, I would not cramp his talent. But the bulk of his greater earnings must be used for the good of the state, just as the income of all the earning sons of the father go to the common family fund."

(Ibid, p. 45)

[2] "If all laboured for their bread and no more, then there would be enough food and leisure for all. Then there would be no cry of overpopulation, no disease and no such misery as we see around. Such labour will be the highest form of sacrifice .....There will then be no rich and no poor, none high and none low, no touchable and no untouchable."

(Ibid.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

were taken to liberate the women folk from the domestic bondage. Mahatma Gandhi's name will ever be enshrined in the hearts of millions of people for his belief in human values[1] and his magnificient services to the cause of Religion, Society and Nation.

---

[1] "So long as my faith burns bright as I hope it will even if I stand alone, I shall be alive in the grave and what is more, speaking form it."

(*Mahatma Gandhi*)

(Quoted from *Mahatma Gandhi : 100 years*, p. 289)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SELECT BIBLIOGRAPHY ON GANDHIAN THOUGHT*

S. K. PANDEYA AND BADRI PRASAD

1. ARUNACHALAM, K. ... The experiments of Mahatma Gandhi (study hand book for 1961-62). Madras Tamilnad Gandhi Smarak Nidhi. 1960.
2. AVINASHILINGAM, T. S. ... Gandhiji's experiments in education. Delhi, Manager of Publications, 1960. 87 p.
3. BAJAJ, Jamnalal ... Bapu-smaran. Ed by Rama Krishna Bajaj. Wardha, Jamanlal Bajaj Seva Trust, 1963. 334 p.
4. BANDYOPADHYAYA, Anu. ... Bahurroopee Gandhi. Popular Prakashan Books, 1964. 171 p.
5. BHATTACHARYA, Sailendranath ... Mahatma Gandhi, the journalist. Bombay, Asia, 1965, 195 p.
6. BHAVSAR, Somabhai ... Amar Gandhiji. Ed4, Anand Charotar Education Society, 1960. 20 p.
7. BIPIN BIHARI ... Gandhian economic philosophy. Bombay, Vora and Co., 1963. 157 p.
8. BONDURANT, Joan Valeri ... Conquest of violence : the Gandhian philosophy of conflict. Sanfrancisco Univerwsity of California Press, 1965.
9. BYLES, MARIE B. ... The lotus and the spinning wheel. London, George Allen & Unwin, 1963. 259 p.
10. DATTA, Hemachandra ... Mahatma Gandhi. Shillong, Chapala Book-Stall, 1962. 324 p.
11. DESAI, Mahadev ... The gospel of selfless action or the Gita according to Gandhi. Tr of the original in Gujarati. Ahemadabad, Navjivan Publishing House, 1964. 392 p.
12. DESAI, Morarji Ranachodji ... Gandhiji jivandrishti. Tr from Gujarati by Nirmala Parlikar Ahmedabad, Gujarat Vidyapith. 1965. 37 p.
13. DHEBAR, U. N. ... Gandhian thought (series of 3 lectures delivered at Kurukshetra University, 29-31 August, 1961). Kurukshetra University 1961. 41 p.

*Contains material published by and on Mahatma Gandhi between 1960-1968.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

14. DIWAKAR, R. R. ... Gandhi : A practical pholosopher. Bombay, Bharatiya Vidya Bhawan, 1965. 51 p.

15. ,, ... Gandhiji's basic ideas and same modern problems. Bombay, Bharatiya Vidya Bhavan, 1963. 56 p.

16. ,, ... Gandhiji's life, thought and philosophy. Bombay, Bharatiya Vidya Bhawan, 1963. 64 p.

17. ,, ... Gandhi, the spiritual seeker. Bombay, Bharatiya Vidya Bhavan, 1964. 99 p.

18. ,, ... Is not Gandhi the answer ? Bombay, Bharatiya Vidya Bhavan, 1966. 53 p.

19. DOKE, Joseph J. ... Aphrika mem Gandhi. Tr from English by Baij Nath. Varanasi, Akhil Bharat Serva Seva Sangh. 1960. 125 p. (Previously published as "An Indian Patriot in South Africa.")

20. GANDHI, Manubahen Jaysukhlal ... Bapu ke jivan mem prem aur sraddha. Tr from Gujarati by Kashi Nath Trivedi. Ed2. Varanasi, Akhil Bharat Sarva Seva Sangh, 1962. 36 pl.

21. ,, ... Bapu ke jivan prasang. Tr from Gujarati by Somesvar Purohit. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1960. 50 p.

22. ,, ... Last glimpses of Bapu. Agra, Shivalal Agrawala & Co., 1962. 348 p.

23. ,, ... The lonely pilgrim : Gandhiji's Noakhali pilgrimage. Tr from Gujarati. Ahhedabad, Navajivan Publishing House, 1964. 273 p.

24. ,, ... My memorable moments with Bapu. Tr from Gujarati by Arvind Seth. Ahhedabad, Navajivan Publishing House, 1960. 56 p.

25. ,, ... My varnashrama dharma. Ed by Anand T. Hingorani. Bombay, Bharatiya Vidya Bhavan, 1965. 131 p.

26. ,, ... None high none low. Ed by Anand T. Hingorani. Bombay, Bharatiya Vidya Bhawan, 1965. 135 p.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

27. GANDHI, M. K. ... All are equal in the eyes of God. Delhi, Publiscations Division (I & P) Govt. of India. 1964. 95 p.

28. ,, ... All men are brothers : Life and thoughts of Mahatma Gandhi as told in his own words. Comp. and Ed. by Krishna Kripalani. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1960, (previously published by UNESCO). 253 p.

29. ,, ... All religions are true. Ed by Anand T. Hingorani. Bombay, Pearl Publications, 1962. 253 p.

30. ,, ... The Art of living. Ed by Anand T. Hingorani. Bombay, Bharatiya Vidya Bhavan, 1961. 232 p.

31. ,, ... Bachan-muktavali. Comp. and Ed. by Rajabahadura Sinha. Tr from Hindi by Rajendra Nath Barua. Galaghat, 1963. 100 p.

32. ,, ... Bapu ki grh madhuri. Comp. Manubahen Jayasukhlal Gandhi and Tr. from Gujarati by Kashi Nath Trivedi. Varanasi, Akhil Bharat Serva Seva Sangh, 1960. 38 p.

33. ,, ... Bapu ki ye baten. Comp by Manubahen Jaysukhlal Gandhi. Tr from Gujarati by Kashi Nath Trivedi. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1963. 100 p.

34. ,, ... Birth control. Ed by Anand T. Hingorani. Bombay, Bharatiya Vidya Bhavan, 1962. 198 p.

35. ,, ... Bread labour. Comp by Ravindra Keleker. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1960. 39 p.

36. ,, ... Caste must go and sin of untouchability. comp. by R. K. Prabhu. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1964. 108 p.

37. ,, ... Collected works. Delhi, Publications Division, 1966. 604 p.
(Vol. 19. Nov. 1920-April 1921)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

38. GANDHI, M. K. ... Congress and its future. Comp by R. K. Prabhu. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1960. 48 p.

39. ,, ... Co-operation. Comp by H M. Vyas. Ahmedabad, Navajivan Publishin House, 1963. 68 p.

40. ,, ... Democracy real and deceptive. Comp by R. K. Prabhu. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1961. 84 p.

41. ,, ... Discourses on the Gita. Tr from Gujarati by Valji Govindji Desai. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1960. ... 67 p.

42. ,, ... The end of an epoch. Tr from Gujarati by Gopal Krishna Gandhi. Ahmedabad Navajivan Publishing House, 1962. 78 p.

43. ,, ... The essential Gandhi : His life, work and ideas : an anthology. Ed by Louis Fischer. New York, Random House, 1963. 377 p.

44. ,, ... Fasting in satyagraha : Its use and abuse. Comp by R. K. Prabhu and Ravindra Kelekar. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1965. 77 p.

45. ,, ... Gandhiji expects (what the Father of the Nation expected of People's Representatives). Comp by H. M. Vyas. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1965. 190 p.

46. ,, ... Gandhi reader. Comp by Maidayal Jain. New Delhi, Sasta Sahitya andal, 1963. 268 p. (Gandhi Sahitya. 10).

47. ,, ... Gita my mother. Ed. by Anand T. Hingorani. Bombay, Bharatiya Vidya Bhavan, 1965. 207 p.

48. ,, ... Glorious thoughts of Gandhi, being a treasury of about ten thousand valuable and inspiring thoughts of Mahatma Gandhi. Ed by N. B. Sen. New Delhi, New Book Society of India, 1965. 307 p.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

49. GANDHI, M. K. ... The gospel of renunciation. Comp by R. K. Prabhu. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1961. 32 p.

50. ,, ... The great trial (being report of Mahatma Gandhi's trial). Ahmedabad Navajivan Publishing House, 1965. 46 p.

51. ,, ... Hamari Prema bahen Kantak ke nam (28-2-29 se 16-1-48 tak). Tr from Gujarati by Ramanarayana Chaudhary. Ed by Kala Kalelkar. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1961. 416 p.

52. ,, ... Ham sab ek pita ke balak. Tr from English Ed by Krishna Kripalani. Ahmedabad, Navajivan, 1964. 260 p.

53. ,, ... India's food problem. Comp by R. K. Prabhu. Ahmedabad, Navajivan Publishing House,1960. 60 p.

54. ,, ... Industrialize and perish. Comp by R. K. Prabhu. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1966. 120 p.

55. ,, ... In search of supreme. Comp and Ed by V. B. Kher. Ahmedabad, Navajivan, Publishing House, 1961-62. Vol. 1-3 388 p. 344, 356 p.

56. ,, ... Jawaharlal Nehru—the jewel of India. Ed by Anand T. Hingorani. Bombay, Pearl Publ, 1960, 218 p.

57. ,, ... Kusum Bahen Desai ke nam (22-7-27 se 23-10-46 tak). Ed by Kaka Kalekar. Tr from Gujarati by Ramanarayana Chaudhari. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1960. 108 p.

58. ,, ... The law and the lawyers. Comp and Ed by S. B. Kher. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1962. 246 p.

59. ,, ... The law of coutinence : brahmacharya. Ed by Anand T. Hingorani. Bombay, Bharatiya Vidya Bhawan, 1964. 103 p.

60. ,, ... Letters to Mani Bahen Patel. Tr by V. G. Desai. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1963. 100 p.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

61. GANDHI, M. K. ... Letters to Raj Kumari Amrit Kaur. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1961. 248 p.

62. ,, ... Mani Bahen Patel ke nam. Ed by Mani Bahen Patel. Tr from Gujarati by Ramanarayana Chaudhari. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1960. 168 p.

63. ,, ... Mere jel ke anubhav. Tr from Gujarati by Anandilal Tiwari. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1962. 91 p.

64. ,, ... The message of jesus christ. Ed by Anand T Hingorani. Bombay, Vidya Bhavan, 1963. 111 p.

65. ,, ... My god. Comp. by R. K. Prabhu. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1962. 57 p.

66. ,, ... My non-violence. Comp. and Ed by Sailesh Kumar Bandyopadhyaya. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1960. 373 p.

67. ,, ... My philosophy of life. Ed by Anand T. Hingorani. Bombay, Pearl Publications, 1961. 271 p.

68. ,, ... My picture of free India. Ed by Anand T. Hingorani. Bombay, Bharatiya Vidya Bhavan, 1965. 230 p.

69. ,, ... The nature cure. Ed by Anand T. Hingorani. Bombay, Bharatiya Vidya Bhavan, 1966. 258 p.

70. ,, ... Nature cure. Ed by Bharaten Kumarappa, with a foreword by Morarji R Desai. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1964. 84 p.

71. ,, ... The new Indian states. Comp. by R. K. Prabhu. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1960. 40 p.

72. ,, ... The problem of education. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1962. 316 p.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

73. GANDHI, M. K. ... Probibition at any cost. Comp. by R. K. Prabhu. Ahmedagad, Navajivan Publishing House, 1960. 24 0p.

74. ,, ... Reorientation of khadi : Talks and discussions with the trustees at sevagram in 1944. Thanjavur, Sarvodaya Prachuralaya, 1964. 77 p.

75. ,, ... The role of women. Ed by Anand T. Hingorani. Bombay, Bharatiya Vidya Bhavan, 1964 120 p.

76. ,, ... Selected letters. Comp and Tr from Gujarati by Valji Govindji Desai. Ahmedabad, Navajivan, 1962. 58 p.

77. ,, ... Stonewalls donot a prison make. Comp and Ed by V. B. Kher. Ahmedabad, Navajivan, 1964. 231 p.

78. ,, ... Strikes. Comp by Ravindra Kelekar. Ahmedabad, Navajivan, 1961. 32 p.

79. ,, ... The supreme power. Ed by Anand T. Hingorani. Bombay, Bharatiya Vidya Bhavan, 1963. 225 p.

80. ,, ... The task before Indian students. Comp by R. K. Prabhu. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1961. 78 p.

81. ,, ... The teaching of the Gita. Ed by Anand T. Hingorani. Bombay, Bharatiya Vidya Bhavan, 1962. 103 p.

82. ,, ... The thought of Mahatma Gandhi : A digest. Comp by Mira Behn. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1962. 32 p.

83. ,, ... Through self-control. Ed by Anand T. Hingorani. Bombay, Bharatiya Vidya Bhavan, 1964. 108 p.

84. ,, ... Trial, Ed. by V. R. Seth. Ahmedabad, High Court, 1965, 330 p.

85. ,, ... True education. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1962. 267 p.

86. ,, ... Varnashramadharma. Comp by R. K. Prabhu. Ahmedabad, Nav ajivan Publishing House, 1962. 48 p.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

87. GANDHI, M. K. ... Village industries. Comp by R. K. Prabhu. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1960. 39 p.

88. ,, ... Village swaraj. Comp by H. M. Vyas. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1962. 268 p.

89. ,, ... Voluntary poverty. Comp. by Ravindra Kelekar. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1961. 30 p.

90. ,, ... The way to communal hermony. Comp and Ed by V. R. Rao, with a foreward by H Kabir and introduction by Rajendra Prasad. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1963. 522 p.

91. ,, ... Wit and widsom of Mahatma Gandhi etc. Ed by N. B. Sen. New Delhi, New Book Society of India, 1960. 248 p.

92. ,, ... Writings and speeches of Mahatma Gandhi relating to Bihar, 1917-1947. Ed by K. K. Datta. Patna, 1960. 231 p.

93. GANGULI, S. C. ... The Gandhian way to world peace. Bombay, Vora and Co., 1960. 159 p.

94. GHOSH, P. C. ... Mahatma Gandhi as I saw him. New Delhi, S. Chand, 1968. 236 p.

95. GHOSH, SUDHIR ... Gandhi's emissary. Bombay, Rupa & Co., 1967. 357 p.

96. GOYAL, O. P. ... Studies in modern Indian political thought: Gandhian interpretation. Allahabad, Kitab Mahal, 1964. 100 p.

97. GREGG, Richard B. ... The power of non-violence. ED2 Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1960. 228 p.

98. GUPTA, Manmohan, *Ed.* ... Honhar balak Gandhi. Allahabad, Indian Press, 1963. 62 p.

99. INDIA External Affairs (Ministry of—) ... Mahatma Gandhi and one world. Delhi, 1966. 44 p.

100. JOSHI, Sripad ... Gandhiji ek jhalak. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1962. 72 p.

101. KALARTHI, MUKULBHAI ... Anecdotes from Bapu's life. Tr from Gujarati by H. M. Vyas. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1960. 47 p.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

102. KALELKAR D. B. (Kaka), *Ed.* ... Gandhi vyaktitva vicar aur prabhav. New Delhi, Sasta Sahitya Mandal, 1966. 600 p.

103. ,, ... A glimpse of Gandhi. Ed2 Rajghat, Sarva Seva Sangh, 1963.

104. ,, ... Stray glimpses of Bapu. Ed2 Ahmedabad : Navajivan Publishing House, 1960. 166 p.

105. KAUSHIK, P. D. ... The congress ideology and programme, 1920-1947. Idealogical foundations of Nationalism during the Gandhi era. Bombay, Allied Publishers, 1964. 405 p.

106. KHOSLA, P. D. ... The murder of the Mahatma and other cases from a judge's notebook. London, Chatto & Windus, 1963. 245 p.

107. KOCHUKOSHY, C. K. ... Philosophy of Mahatma Gandhi. Delhi, International Cultural, 1961. 61 p.

108. KRIPALANI, J. B. ... Gandhian thought. Bombay : Orient Lagmans for Gandhi Smarak Nidhi, 1961. 281 p.

109. ,, ... Gandhian thought. Chandigarh, Rajasthan University Publication Bureau, 1964. 71 p.

110. KUMARAPPA, J. C. ... Gandihan economic thought. Varanasi, Sarva Seva Sangh, 1962. 94 p.

111. LEWIS, Martin ... Gandhi : makes of modern India ? New York, D. C. Heath, 1966. 112 p.

112. LOHIA, Rammanohar ... Marx, Gandhi and Socialism. Hyderabad, Navahim, 1963. 550 p.

113. MAJUMDAR, A. M. ... Social welfare in India : Mahatma Gandhi's contributions, with a foreward by H. T. Muzumdar. Bombay, Asia Publications. 1964. 179 p.

114. MAJUMDAR, Haridas T. ... Mahatma Gandhi : a prophetic voice. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1963. 194 p.

115. MAJUMDAR, S. K. ... Jinna and Gandhi : their role in India's quest for freedom. Calculatta, Firma K. L. Mukhopadhyay, 1966. 310 p.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

116. MANI, R. S. ... Educational ideas and ideals of Gandhi and Tagore, a comperative study with relevance to modern India. New Delhi, New Book Society of India, 1961. 208 p.

117. MASANI, Sakuntala ... The Story of Bapu. Ed2 for School Children. Madras, O.U.P., 1960. 99 p.

118. MIRABAHEN ... New and old gleanings. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1964. 50 p.

119. ,, ... Pseud (i.e. Madeleine slade). The madeleine sltde). the spirit's pilgrimage. London, Longmans, Green, 1960. 310 p.

120. MORARJI, Santi Kumar Narottam ... Gandhiji ke samsamarana. Tr from Gujarati by Kashinath Trivedi. Varanasi, Akhil Bharat Sarva Seva Sangh, 1964. 267 p.

121. MORTON, Eleanor ... Pseud (i e. Elizabeth Gertuade Stern) : Women behind Mahatma Gandhi. Bombay, Jaico. 1961. 311 p.

122. MUKHERJEE, Hiren ... Gandhiji : a study. 2nd rev. Ed. New Delhi. Peoples Publishing House, 1960. 225 p.

123. MUNSHI, K. M. ... Gandhiji's philosophy in life and action. Bombay, Bharatiya Vidya Bhawzan, 1966. 40 p.

124. NAIYYAR, Sushila ... Bapu ke karavas-kahani : Agakhan mahal ke bandi jivan ka aitihasik vivarana. New Delhi, Sasta Sahitya Mandal, 1960. 402 p.

125. NARAYANA, K. L. ... Gandhi in the eyes of the world. Tevali, K L Narayana's Research Institute, 1964. 74 p.

126. NEHRU, Jawaharlal ... Freedom from fear, reflections on the personality and teachings of Gandhi. selected and ed by T. K. Mahadevan from his speaches and writings. Bombay, Bharatiya Vidya Bhawan for Gandhi Smarak Nidhi, 1960. 74 p.

127. ,, ... Gandhi. Bombay, Asia Publishing House, 1966. 171 p.

128. NIKAM, N. A. ... Gandhi's discovery of religion : a philosophical study. Bombay, Bharatiya Vidya Bhawan, 1963. 78 p.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

129. PARULEKAR, N. B. ... The science of sant force or Mahatma Gandhi's doctrine of truth and non-violence. Bombay, Hind Kitabs, 1962. 107 p.

130. PAWAR, P. F. ... Gandhi and world affairs : a survey of Gandian influence as international and intercultural relations. Bombay press. London : George Allen. 1961. 166 p.

131. POTAK, H. S. L. etc. ... Mahatma Gandhi. Bombay, Jaico. 1963. 368 p.

132. PRABHU, P. K. and RAO ... Mind of Mahatma Gandhi. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1967. 589 p.

133. PRASAD, Rajendra ... At the feet of Mahatma Gandhi. London, Asia Pub. House, 1961, 335 p.

134. PUROHIT, Somesvara ... Mahamana ke vividh roop. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1965. 64 p.

135. PYARELAL ... Mahatma Gandhi ,the last phase. Ahmedabad, Navajivan, Publishing House, 1966.

136. RAJAGOPALACHARI, C. ... Gandhiji's teachings and philosophy. Bombay, Bharatiya Vidya Bhavan, 1963. 34 p.

137. RAMACHANDRAN, G. ... Gandhi : his relevance for our times, a volume of contemporary studies in Gandhian themes presented to R. R. Diwakar and his 70th birthday by the workers of Gandihi-Smarak-Nidhi. Bombay, Bharatiya Vidya Bhawan, 1964. 355 p.

138. RAU, M. Chalapathi ... Gandhi and Nehru. Delhi, Allied Publ. 1967. 152 p.

139. REYNOLDS, Reginald ... The true story of Gandhi, man of peace. Chicago, Childre Press, 1964. 141 p.

140. ROTHERMUND, Indira ... The philosophy of restrant : Mahatma Gandhi's strategy Indian politics. Bompay, Popular Prakashan, 1963. 195 p.

111485

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

141. SAMOIS, Eleni ... Pyare Bapu. Tr from French by Sarala Bahen. Ed2. Wardha, Akhil Bharat Sarva Seva Sangh, Pt. I, 1960 : Bachpan aur siksan, 88 p. pt II, 1960 : Ahinsak asahayog ki 70 p. pt. III, 1960 : Svarajya ji 70 p.

142. SESHACHARI, Candadai ... Gandhi and the American scene : An intellectual history and enquiry. 1964, University of Utah, Thesis, 1964 (I C W A).

143. SHAHANI, Rnjee (Gurdarsing) ... Mr. Gandhi. New York, London, Macmillan 1961, 211 p.

144. SHAH, C. G. ... Marxism, Gandism, stabinism. Bombay, Popular Prakashan, 1963. 360 p.

145. SHARP, Gene ... Gandhi faces the storm. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1961. 71 p.

146. ,, ... Gandhi wields the weapon of moral power (Three case histories). Ahmedabad, Navajivan Publising House, 1960. 316 p.

147. SINGH, Satindra ... Mahatma in the Marxist Mirror. Delhi, Siddhartha Publications, 1962. 35 p.

148. SINHA, Balavant ... Under the shelter of Bapu. Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1962. 227 p.

149. TAHTINEN, Unto ... Non-violence as an ethical principle, with special reference to the views of Mahatma Gandhi. Turku (Finland), 1964. 192 p.

150. TAYYEBULLA, M. ... Between the symbol and the idol at last. New Delhi, Allied Publisher, 1964. 228 p.

151. TENDULKAR, D. G. ... Mahatma : Life of Mohandas Karam Chand Gandhi. New rev. ed. Delhi : publication Division, 1962. V7. 1945-47. Oct. 1962, 426 p.

152. ZINKIN, Taya ... The story of Gandhi. London : Methuan & Co., 1965. 190 p.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Printed by
R. K. BERRY
at the
BANARAS HINDU UNIVERSITY PRESS,
VARANASI—5.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वविद्यालय के उद्देश्य

१. अखिल जगत् की सर्वसाधारण जनता के एवं मुख्यतः हिन्दुओं के लाभार्थ हिन्दू शास्त्र तथा संस्कृत साहित्य की शिक्षा का प्रसार करना, जिससे प्राचीन भारत की संस्कृति और उसके विचार-रत्नों की रक्षा हो सके, तथा प्राचीन भारत की सभ्यता में जो कुछ महान् तथा गौरवपूर्ण था, उसका निदर्शन हो।

२. साधारणतः कला तथा विज्ञान की समस्त शाखाओं में शिक्षा तथा अन्वेषण के कार्य की सर्वतोमुखी उन्नति करना।

३. भारतीय घरेलू धन्धों की उन्नति और भारत की द्रव्य-संपदा के विकास में सहायक आवश्यक व्यावहारिक ज्ञान से युक्त वैज्ञानिक, तकनीकी तथा व्यावसायिक शिल्प-कलादि संबंधी ज्ञान का प्रचार और प्रसार करना।

४. धर्म तथा नीति को शिक्षा का आवश्यक अंग मानकर नवयुवकों में सुन्दर चरित्र का गठन करना।

111485

OBJECTS OF THE UNIVERSITY

1. To promote the study of the Hindu Shastras and of Samskrit Literature generally as a means of preserving and popularizing for the benefit of the Hindus in particular and of the world at large in general, the best thought and culture of the Hindus, and all that was good and great in the ancient civilization of India,

2. To promote learning and research generally in Arts and Sciences in all branches,

3. To advance and diffuse such scientific, technical and professional knowledge combined with the necessary practical training as is best calculated to help in promoting indigenous industries and in developing the material resources of the country: and

4. To promote the building up of character in youth by religion and ethics as an integral part of education.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri